वैदिक धर्म का वास्तविक स्वरूप

सभी सज्जनों एवं विद्यार्थियों द्वारा अवश्य पठनीय

विधुशेखर त्रिवेदी

वैदिक धर्म की रक्षा हेतु

श्रीमती चम्पा देवी वैदिक संस्थान एवं

पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ,

6B वृन्दावन लखनऊ, 226029

द्वारा प्रकाशित

मुद्रक श्री विनायक प्रेस, लखनऊ

2024 प्रथम संस्करण , 1000 प्रतियाँ

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य 180.00

विधुशेखर त्रिवेदी I.A.S

(अ.प्रा)

ओ३म्

पूज्य पिता

स्व. पं. उमादत्त जी त्रिवेदी

एवं

स्नेहमयी पूज्या माँ

स्व. श्रीमती चम्पादेवी त्रिवेदो

तथा

प्राणों के समान प्रिय अपनी

धर्म पत्नी

स्व. श्रीमती प्रेमा त्रिवेदी

की

पावन स्मृति

में

सादर समर्पित

विधुशेखर त्रिवेदी

अपनी असीम अनुकम्पा से प्रकट होने वाली माँ वैष्णव देवी जी

माता गुरुतरा भूमेः पिता उच्चतरश्च खात्।

माता भूमि से भी महान होती है तथा पिता आकाश से भी ऊचाँ होता है।

स्व. पं. उमादत्त जी त्रिवेदी

एवं

स्व. श्रीमती चम्पादेवी त्रिवेदी

श्री विधुशेखर त्रिवेदी

एवं

स्व. श्रीमती प्रेमा त्रिवेदी

विषय सूची

क्र. सं.	विषय	पृ. सं.
1	माँ वैष्णव देवी जी की कृपा तथा उनकी स्वयंभू मूर्ति का प्रकट होना	1 – 8
2	धर्म	9 – 12
3	वेद	12 – 15
4	शुक्ल यजुर्वेद में की गयी मिलावट का विवरण	16 –57
5	भ्रामक वाक्य	57 – 69
6	कतिपय असत्य बातें	69 – 87
7	दैनिक प्रार्थना एवं स्तुति के मन्त्र	88 – 115
8	ब्रह्म	116 –144
9	ओ३म	145 – 154
10	जीवात्मा का वर्णन	155 – 164
11	वैदिक जीवन के मुख्य सिद्धान्त	165 – 170
12	कामनायें	171 – 173
13	आकूतिः (संकल्प शक्ति)	174
14	तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु	175 –177
15	काम क्रोध तथा लोभ	178 – 180
16	माता – पिता तथा पुत्र	181 – 182
17	परिवार	183 – 185
18	प्राणायाम	186 – 189
19	यम –नियम	190
20	ब्रह्म प्राप्ति	191 – 203
21	योग	204 – 210
22	मन	211 – 213
23	गायत्री मन्त्र	214 – 217
24	गायत्री उपासना से ब्रह्म प्राप्ति	218 – 219
25	उपासना	219 – 227
26	इन्द्र	228 – 235
27	विष्णु	236 – 241
28	सरस्वती	241 – 242

29	शिव तथा रुद्र	242 – 247
30	सत्य	248 – 258
31	ऋत	259 – 260
32	श्रद्धा	260 – 262
33	स्वस्ति वाचन	263 – 275
34	शान्तिपाठ	276 – 288
35	ब्रह्मचर्य	289 – 295
36	विवाह	296 – 302
37	पत्नी	303
38	देवता	304 – 307
39	भगवान पिता हैं, मित्र हैं	308 – 312
40	मनुष्य शरीर में देवता	313 – 321
41	मनुष्य शरीर में सप्तर्षि	322 – 324
42	प्राण	325 – 332
43	वेदवाणी	333 – 339
44	मधुमय जीवन	340 – 342
45	अग्निहोत्र	343 – 347
46	सूर्य	348 – 355
47	सूर्य की किरणों से रोग नाश	356 – 357
48	सूर्योदय से पहले उठने का लाभ	358
49	दक्षिणा	359 – 361
50	दान	361 – 365
51	अन्न का दान	366 – 368
52	निष्पाप जीवन	369 – 371
53	सप्त मर्यादायें	371 – 372
54	अपवित्र लक्ष्मी को हटाना तथा श्रेष्ठ धन की प्रार्थना	373
55	ऋण रहित होना	374
56	पराक्रम तेज एवं विजय	375 – 381
57	वरुण के दूत	381 – 382

58	दुष्टों का नाश	383 – 389
59	दीर्घ जीवन	390 – 395
60	उषा	396 – 398
61	आत्मिक यज्ञ	399 – 400
62	ब्राह्मणों का राष्ट्र के प्रति कतर्व्य	401 – 405
63	यश	406
64	शिर में ज्ञान तथा यश	407
65	अतिथि	408 – 411
66	सोम	412
67	यज्ञ से स्वर्ग प्राप्ति	413
68	यज्ञ से उन्नति तथा कामनाओं की पूर्ति	414 – 422
69	अग्नि देव की स्तुति एवं प्रार्थना	423 – 429
70	उन्नति के लिये आशीर्वाद तथा मार्ग दर्शन	430 – 439
71	महायज्ञ	440
72	दैवी संपदा	441 – 442
73	आसुरी संपदा	442 – 443
74	राष्ट्रीय जीवन	444 – 445
75	राष्ट्रीय प्रार्थना	446
76	अन्तिम सत्य	447

विनम्र निवेदन

सर्वप्रथम माँ वैष्णव देवी जी को प्रणाम करके उनकी असीम कृपा का उल्लेख कर रहा हूँ।

माँ वैष्णव जी की मेरे तथा मेरे परिवार के ऊपर असीम कृपा है। इसका श्रेय मेरे जन्म स्थान राजा का रामपुर जिला एटा में मेरे घर के समीप रहने वाले हमारे मास्टर साहब ठाकुर हुक्म सिंह जी राठौर, जो बचपन में मुझे अंग्रेज़ी पढाते थे, के भतीजे, जिन्हें मै प्यार से मुन्ना कहता हूँ, को जाता है।

श्री मुन्ना पर माँ वैष्णव देवी जी की अनोखी कृपा है । उनके द्वारा भेजे गये पत्रों का उचित उत्तर देवी जी की ओर से उनकी योगिनी जी द्वारा तुरन्त दिया जाता है। इस प्रकार के पत्रों द्वारा मैने कई बार अपनी कठिनाईयों के विषय में माँ का मार्गदर्शन और आशीर्वाद प्राप्त किया है। मेरे द्वारा बताये जाने पर अनेक वरिष्ठ अधिकारियों ने भी इसका लाभ उठाया है। एक सीनियर आई.ए.एस अधिकारी तो उनको अपना गुरू मानते हैं।
इसी प्रकार के मेरे एक पत्र के उत्तर में माँ ने सूचित किया था कि मेरे पूज्य माता पिता दोनां वैकुण्ठ धाम में हैं ।

लगभग 17 वर्ष पूर्व मेरे एक अत्यन्त प्रिय व्यक्ति का अपहरण हो गया था जिसे हम लोग नहीं खोज पा रहे थे। जब मैनें देवी माँ को अपना दुःख बताया तो उनकी

योगिनी जी ने मुझसे फोन पर कहा "बेटा तुम परेशान न हो म कल स्वयं आकर उसकी खोज करूँगीं । दूसरे दिन योगिनी जी स्वयं आयीं और उसका पता लगाकर उसे अपहर्ताओं से मुक्त कराकर मेरे पास भेज दिया। माँ को इससे बडी कृपा क्या हो सकती है

माँ की इस महान कृपा के कारण जीवन के अन्तिम समय, 94 वर्ष की आयु में मेरी यह तीव्र इच्छा हुयी कि माँ वैष्णव देवी जी के मन्दिर का निर्माण करवाऊँ ताकि सभी लोग उनकी कृपा प्राप्त कर सकें। इसी लिये मैने अपने पूज्य पिता की स्मृति में स्थापित पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ में एक छोटे से सुन्दर मन्दिर का निर्माण करवाया।

माँ वैष्णव देवी जी के नाम से कोई मूर्ति उपलब्ध न होने के कारण मैने श्री मुन्ना जी से इस विषय में स्वयं देवी जी से पूछकर बताने को कहा। तब माँ ने अपने पत्र में मुझे लिखकर भेजा "प्रिय विघुशेखर आशीर्वाद। मेरी मूर्ति 10 तारीख दिन बुधवार विराजमान स्थापित करना। आगे चलकर माँ की कृपा रहेगी। शुभ्रम (मेरे पौत्र) का भविष्य अच्छा है। नाम रोशन करेगा। प्रेमा (मेरी स्व. धर्मपत्नी) को वैकुण्ठ धाम मिल गया है। जब मूर्ति स्थापित करना उस दिन कन्या खिलाना। शेर का मुँह बन्द होना चाहिए। मूर्ति अष्ट भुजा होनी चाहिए।

(जय माता दी)
जय वैष्णव देवी कटरा, तारा योगिनी

माँ के इस स्पष्ट आदेश के बाद मैने 38 हजार रुपये मूल्य की एक मूर्ति पसन्द कर ली और 5 सौ रुपया एडवांस दे दिया किन्तु दूसरे दिन 22 मार्च 2024 को देवी जी की कृपा से श्री मुन्ना जी हमारे यहाँ आ गये और मुझसे कहा कि भइया! मूर्ति मत खरीदना, देवी जी स्वयं प्रकट हो जायेंगी। वह बाजार से एक बड़ा बक्स खरीद लाये और उसमें एक लाल कपड़ा रख दिया तथा मुझसे कहा कि एक पत्र माता जी को लिख दीजिये।

मैनै उनके कथनानुसार देवी माँ को पत्र में लिखा कि कृपया आप अपने मन्दिर में स्वयं प्रकट हो जायं ताकि आपके आदेशानुसार आपकी मूर्ति की स्थापना की जा सके। इसके बाद बक्स को बन्द कर दिया गया और दोनों समय की आरती के साथ साथ श्रद्धा एवं विश्वास से निरन्तर प्रार्थना की गयी, जिसके फलस्वरूप सदा की भाँति माँ ने मेरे ऊपर असीम कृपा की और अपने द्वारा पूर्व निर्धारित तिथि पर रात्रि के 2 बजकर 15 मिनट पर उक्त बक्स में प्रकट हो गयीं, जिसकी शुभ सूचना मुझे श्री मुन्ना जी ने फोन द्वारा दिनाँक 10.4.24 को प्रातः काल दी। तब मैने अपने अनेक परिचित व्यक्तियों को फोन करके बुलाया और लगभग 9 बजे सब लोगों की सहायता से उनकी भव्य एवं सुन्दर मूर्ति को निकालकर विधि विधान से स्थापित कर दिया ।

अब मेरा प्रयास है कि सभी लोग इस दैवी चमत्कार को आकर देखें और माँ का दर्शन करके अपनी मनोकामनायें

पूर्ण करें। इस पवित्र कार्य में सब के सहयोग की अपेक्षा है।

देवी जी की शक्ति तथा उनकी अद्भुत कृपा का उक्त वर्णन निम्नकिंत मन्त्रों से सत्य प्रमाणित होता है।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।।

अथर्व. ४।३०।१, ऋग्.१०।१२५।१

(अहं रुद्रेभिः, वसुभिः, आदित्यैः उत विश्वदेवैः चरामि) मैं (परमात्म शक्ति) रुद्रों के, वसुओं, आदित्यों तथा विश्वदेवों के साथ चलती हूँ। (अहं मित्रावरुणा उभा बिभर्मि) मैं मित्र और वरुण दोनों को धारण करती हूँ तथा (अहं इन्द्राग्नी उभा अश्विना अहम्) मैं ही इन्द्र, अग्नि और दोनों अश्विनी देवों को धारण करती हूँ।

आठ वसु-

अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्चनक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदꣳसर्वꣳहितमिति तस्माद् वसव इति। बृहदारण्यक उपनिषद्,३।९।३

अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, द्युलोक, आदित्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्र, ये सब को वसाते हैं, जीवित रखते हैं, इसलिये इन सबको वसु कहा जाता है।

रुद्र- दश प्राण तथा आत्मा को भी रुद्र कहा जाता है क्योंकि जब ये शरीर से निकलते हैं तो प्रेम करने वालों को रुलाते हैं।

आदित्य- संवत्सर के बारह मासों को भी आदित्य कहा जाता है क्योंकि ये मनुष्य की आयु लेते हुये जाते हैं।

मित्र वरुण- दिन और रात तथा सूर्य और चन्द्रमा को भी मित्रावरुणौ कहा जाता है।

अश्विनौ- दिन और रात तथा द्युलोक और पृथिवी को भी अश्विनौ कहा जाता है।

मित्रावरुणौ- सूर्य तथा चन्द्रमा। दिन तथा रात्रि

अश्विनौ- अहो रात्रौ (निरु. १२।१।१) सूर्य तथा चन्द्रमा।

अहं सोमंमाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये३ यजमानाय सुन्वते।।
अथर्व.४।३०।६, ऋग्.१०।१२५।२

(अहं आहनसं सोमं बिभर्मि) मैं रात्रि के अन्धकार रूपी शत्रु का हनन करने वाले सोम अर्थात् चन्द्रमा, (अहं त्वष्टारं उत पूषणं भगम्) मैं त्वष्टा और पूषा तथा भग को धारण करती हूँ। (अहं हविष्मते सुन्वते यजमानाय) मैं अन्न आदि हविष्य पदार्थों की उत्तम हवियों से देवों को तृप्त करने वाले तथा सोमयज्ञ करने वाले यजमान को (सुप्राव्ये द्रविणं दधामि) उत्तम प्रकार से रक्षा करने वाला धन प्रदान करती हूँ।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।
अथर्व.४।३०।२, ऋग्.१०।१२५।३

(अहं राष्ट्री वसूनां संगमनी) मैं समस्त जगत् की तथा समस्त सम्पत्तियों की स्वामिनी हूँ और धन प्रदान करने वाली हूँ। (यज्ञियानां प्रथमा चिकितुषी) मैं ज्ञानवती हूँ तथा यज्ञों में पूजनीय देवों में प्रथम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हूँ। (तां भूरिस्थात्रां भूरि आवेशयन्ती) उस अनेक रूपों में विद्यमान तथा सबका भरण पोषण करने वाली मुझ को ही (देवाः पुरुषा वि अदधुः) देव अनेक प्रकार से प्रतिपादित करते हैं, वर्णित करते हैं।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि।।
अथर्व.४।३०।४, ऋग्.१०।१२५।४

(सः यः अन्नं अत्ति) वह जो अन्न खाता है, (यः विपश्यति) जो देखता है, (यः प्राणिति) जो प्राण धारण करता है, (यः ईं श्रृणोति) जो इस कथन को श्रवण करता है, (मया) वह सब मेरी सहायता से करता है। (मां अमन्तवः ते उपक्षियन्ति) जो मुझे नहीं मानते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं, नीचे गिर जाते हैं, दुःख एवं कष्ट को प्राप्त होते हैं। (श्रुत श्रुधि) हे प्राज्ञ मित्र! तुम सुनो (ते श्रद्धिवं वदामि) तुम्हें मैं श्रद्धेय ज्ञान को कहती हूँ, उपदेश करती हूँ।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।
अथर्व.४।३०।३, ऋग्.१०।१२५।५

(अहं) मैं स्वयं ही (देवानाम् उत मानुषाणाम्) देवों तथा मनुष्यों के लिये (जुष्टम्) हितकारी (इदम् वदामि) यह बात कहती हूँ कि (यं कामये) मैं जिसकी कामना करती हूँ, जिसे अच्छा तथा कृपापात्र समझती हूँ, (तम् उग्रं) उसी को तेजस्वी तथा श्रेष्ठ बनाती हूँ, (तं ब्रह्माणं) उसी को ब्रह्मा अर्थात् वेदों का ज्ञाता, (तम् ऋषिं) उसी को ऋषि (तम् सुमेधाम्) तथा उसी को उत्तम मेधा वाला (कृणोमि) बनाती हूँ।

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानिन विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यै तावती महिना सं बभूव।।

अथर्व.४।३०।८, ऋग्.१०।१२५।८

(विश्वा भुवनानि आरभमाणा) सब भुवनों का निर्माण करती हुयी, (अहमेव वातः इव प्रवामि) मैं ही वायु के समान प्रवाहित हो रही हूँ, (दिवा परः) द्युलोक (एना पृथिव्यै परः) तथा इस पृथिवी से श्रेष्ठ मैं (एतावती महिना सं बभूव) अपनी इतनी बड़ी महिमा से, अपने महान् सामर्थ्य से प्रकट हुयी हूँ।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

शंखचक्रगदा शाङ्र्ग गृहीत परमायुधे।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तुते।।

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

धर्म

ऋषियों ने धर्म की व्याख्या निम्न प्रकार की है।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।।

वैशेषिक दर्शन. १।२

जिससे सब प्रकार का अभ्युदय तथा परम कल्याण हो, वही धर्म है।

हमारे आदि पुरुष भगवान् मनु द्वारा धर्म के लक्षण निम्न प्रकार बताये गये हैं –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणं ।।

मनुस्मृति ६।९२

धैर्य, दृढ़ता, क्षमा, मन का संयम, चोरी न करना, शरीर मन एवं बुद्धि की पवित्रता, इन्द्रियों का निग्रह, सद्बुद्धि, विद्या, सत्य तथा अकारण क्रोध न करना, ये धर्म के दश लक्षण हैं।

इन लक्षणों के अनुरूप आचरण करना धर्म है, किसी प्रकार का दिखावा अथवा ढोंग धर्म नहीं है।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणं ।।

मनु. २।१२

वेद, स्मृति, सदाचार, सत्पुरुषों का आचरण और अपने आत्मा

को प्रसन्न तथा सन्तुष्ट करने वाला, अन्तरात्मा के अनुसार किया गया श्रेष्ठ आचरण, ये चार धर्म के साक्षात् लक्षण कहे जाते हैं।

समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ।।

मनु. ६।६६

समस्त प्राणियों में समत्व का भाव रखना, सबसे समता का व्यवहार करना धर्म है, माला, तिलक आदि दिखावटी चिह्न धर्म का कारण नहीं हैं।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत्।। मनु. ८।१५

नष्ट हुआ धर्म ही मारता है अर्थात् धर्म का पालन न करने से मनुष्य पतन की ओर चला जाता है, दुःख एवं कष्टों को प्राप्त करता है जब कि रक्षा किया हुआ धर्म उन्नति की ओर ले जाता है। अतः अधर्म कहीं हमें नष्ट न कर दे यह विचार करके धर्म की रक्षा करना चाहिये, धर्म का पालन करना चाहिये।

यशः सत्यं दमः शौचमार्जवं ह्रीरचापलम् ।
दानं तपो ब्रह्मचर्यमित्येतास्तनवो मम ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९८।७

धर्म ने महाराज युधिष्ठिर से कहा कि यश, सत्य, इन्द्रिय संयम, पवित्रता, सरलता, लज्जा, धैर्य, दान, तप और ब्रह्मचर्य यह सब मेरे शरीर के अंग हैं।

अहिंसा समता शान्तिस्तपः शौचममत्सरः ।
द्वाराण्येतानि मे विद्धि प्रियो ह्यसि सदा मम।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९८।८

अहिंसा, समता, शान्ति, तप, शौच तथा प्रमादरहित होना यह मेरी प्राप्ति के द्वार हैं यह जानो। हे युधिष्ठिर! तुम सदा से मुझे प्रिय हो।

दाक्ष्यमेकपदं धर्म्यं दानमेकपदं यशः ।
सत्यमेकपदं स्वर्ग्यं शीलमेकपदं सुखम्।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।४९

दक्षता ही धर्म का एक मात्र स्थान अर्थात् साधन है, दान ही यश का एक मात्र साधन है, सत्य स्वर्ग का एकमात्र साधन है तथा शील ही सुख का एक मात्र उपाय है।

वास्तव में दक्षता से कार्य करने से ही धर्म का आचरण होता है।

ऋषियों के उक्त कथन से स्पष्ट है कि धर्म में असत्य, दिखावा, ढ.ांग तथा दुराचार आदि का कोई स्थान नहीं है। मनुस्मृति में कहा गया है **'वेदोंखिलो धर्म मूलम्'** वेद ही हमारे धर्म का आधार है अतः वेद विरुद्ध आचरण धर्म नहीं हो सकता ।

वेद भगवान के द्वारा उत्पन्न किये गये है, भगवान की वाणी है तथा अपौरुषेय है इसीलिये उनका सर्वोच्च स्थान है।

वेद

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्सर्व॑हुत ऋ॒चः सामा॑नि जज्ञिरे ।
छन्दा॑ꣳसि जज्ञिरे॒ तस्मा॒द्यजु॒स्तस्मा॑दजायत ॥

ऋग्. १०।९०।९, यजु. ३१।७
कृष्ण यजु. ३५।१०, अथर्व. १९।६।१३

सभी आहुतियाँ जिसके लिये दी जाती हैं, उस सर्वपूज्य, सर्वोपास्य, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ परब्रह्म से ऋग्वेद तथा सामवेद उत्पन्न हुये, उससे अथर्ववेद उत्पन्न हुआ तथा उसी से यजुर्वेद उत्पन्न हुआ।

अर्थ कामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥

मनु. २।१३

जो धन सम्पत्ति के लोभ तथा काम अर्थात् विषय वासना के भोगों में लिप्त नहीं होता, उसी को धर्म का ज्ञान होता है। धर्म को जानने की इच्छा करने वालों के लिये वेद ही परम प्रमाण हैं।

योऽवन्मन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ।।

मनु. २।११

जो मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्त ग्रन्थ का अपमान करे, उसको श्रेष्ठ लोगों द्वारा बहिष्कृत कर दिया जाना चाहिये। वेद की निन्दा करने वाला नास्तिक होता है।

विभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम्।।

मनु. १२।९९

सनातन वेदशास्त्र ज्ञान एवं कर्म आदि के द्वारा समस्त प्राणियों को धारण करने वाला है अस्तु इसे प्राणियों के कल्याण के लिये सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है।

कितना दुःखद है कि इस समय सनातन धर्म, जोकि वास्तव में वैदिक धर्म का विकृत रूप है, के नाम पर तरह तरह की असत्य निराधार एवं भ्रामक बातों पर विश्वास किया जा रहा है और वैदिक ज्ञान को पूर्णतया विस्मृत कर दिया गया है। जिन नवयुवकों को वेद पढ़ाया भी जा रहा है उन्हें वेद मन्त्रा का कोई अर्थ नहीं बताया जाता है। वह यही नहीं जान पाते कि वेदां में क्या लिखा है और वह क्या पढ़ रहें है। वेदों की ऐसी शिक्षा से क्या लाभ ?

दुर्गति यहाँ तक है कि गत लगभग 2500 वर्षों में धूर्तो द्वारा जो फर्ज़ी मन्त्र मिला दिये गये है, जिनमें गाय, बैल, भेड़, बकरे आदि को काटकर उनके रक्त, मांस, वपा, तथा मदिरा से यज्ञो में आहुति देने का उल्लेख है, उनको हटाने के लिय कोई तैयार नहीं है। अकेले शुक्ल यजुर्वेद में ही 75 फर्ज़ी वेद मन्त्र हैं, जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है

इसो प्रकार कतिपय प्रचलित भ्रामक एवं असत्य बातों का उल्लेख किया जा रहा है ताकि युवा वर्ग को वस्तु स्थिति का ज्ञान हो सके और वह बुराईयों के प्रति उदासीन होने के बजाय उन्हें हटाने का द्रढ़ संकल्प ले सकें।

इस पुस्तक को दो भागो में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में शुक्ल यजुर्वेद में मिलाये गये 75 फर्ज़ी निकृष्ट मन्त्रों का, 7 भ्रामक वाक्यों का तथा पुराणों में उल्लिखित कुछ असत्य अथवा अश्लील प्रकरणों का उल्लेख किया गया है जबकि दूसरे भाग में लगभग 400 महत्वपूर्ण मन्त्र अर्थ सहित दिये गये है जिन्हें जानना प्रत्येक धार्मिक व्यक्ति के लिये आवश्यक है।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जिन दो महान विद्वानों स्वामी दयानन्द जी सरस्वती तथा पद्म भूषण श्री पाद दामोदर सातवलेकर जी, जिनका एक दो स्थानों पर आलोचनात्मक उल्लेख किया गया है, के प्रति मेरा अगाध सम्मान है क्योंकि मैंने उनसे वेदों के विषय में बहुत कुछ सीखा है और वह मेरे लिये श्रद्धा एवं आदर के पात्र हैं। सनातन धर्म के महान विद्वानों तथा सन्त महात्माओं के प्रति भी मेरा अत्यन्त आदर का भाव है। मेरी उनसे केवल यही प्रर्थना है कि वह वर्तमान में व्याप्त

बुराइयों को हटाकर सनातन धर्म में वैदिक ज्ञान को और अधिक सम्मिलित करने का पयास करने की कृपा करें।

इस पुस्तक की कम्प्यूटर टाइपिंग तथा कम्पोज़िंग आदि का प्रशंसनीय कार्य मेरे प्रिय शिष्य श्री कुलदीप दीक्षित ने अपने अध्ययन से समय निकाल कर पूर्ण मनोयोग से किया है जिसके लिये उसको अनेकानेक आशीर्वाद। भगवान से प्रार्थना है कि वह अपने जोवन में सुख, समृद्धि एवं सफलता प्राप्त करे।

इस पवित्र कार्य में मेरे प्रिय पौत्र डॉ. श्री आदित्य प्रियम त्रिवेदी असिस्टेंट प्रोफेसर, लखनऊ विश्वविद्यालय ने श्री कुलदीप का पूर्ण सहयोग एवं मार्ग दर्शन किया है। भगवान से प्रार्थना है कि वह अपने जीवन में उत्तरोत्तर प्रगति, ऐश्वर्य, सुख, एवं सम्पन्नता प्राप्त करें।

अक्षय तृतीया

दिनांक 10.5.2024 विधुशेखर त्रिवेदी

शुक्ल यजुर्वेद संहिता में की गयी गम्भीर मिलावट का तथ्यात्मक विवरण

शौनक ऋषि ने लगभग 2800 वर्ष पूर्व चरणव्यूह में लिखा था कि शुक्ल यजुर्वेद में 1900 मन्त्र हैं जबकि इस समय इसमें 1975 मन्त्र हैं।

इसके लगभग 400 वर्ष पश्चात् कात्यायन मुनि ने यजुर्वेद सर्वानुक्रमणी के प्रारम्भ में ही लिखा है **"माध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्नाये सर्वे सखिले सशुकिय ऋषिदैवतछन्दाꣳ स्यानुक्रमिष्यामः'** अर्थात् खिल और शुक्रिय मंत्रो के सहित माध्यन्दिनी यजुर्वेद के ऋषि देवता और छन्दो की अनुक्रमणी बनाता हूँ।

खिल का अर्थ है बाद में मिलाये गये मन्त्र।

इससे स्पष्ट है कि सर्वानुक्रमणी लिखे जाने के पूर्व ही यज्ञों में मेद–मांस मदिरा की आहुतियाँ दिये जाने आदि से संम्बन्धित 75 फ़र्जी मन्त्र मिलाये जा चुके थे। इसी काल में शतपथ ब्राह्मण, मनुस्मृति, तथा गृह्य सूत्रों आदि में भी गम्भीर मिलावट की गयी, जिसका हम लोगों की अकर्मण्यता उदासीनता तथा बुराइयों को मौन सहमति देने एवं यथास्थित बनाये रखने के स्वभाव के कारण आजतक निराकरण नहीं हो सका है।
उवट का भाष्य 11वीं शताब्दी का 'अर्थात् चरणव्यूह के लगभग 1700 वर्ष बाद का है तथा महीधर का भाष्य 16वीं शताब्दी का है।

उपरोक्त 75 मिलावटी, मन्त्र, गाय, बैल, भेड़, बकरे तथा घोड़े आदि की वपा अर्थात चर्बी और माँस तथा मदिरा से

यज्ञ में आहुति देने और उनका भक्षण करने एवं अश्वमेध यज्ञ में अश्लीलता से सम्बन्धित हैं, जब कि यजुर्वेद में अन्यत्र कहीं इस प्रकार के घृणित कर्मों का उल्लेख नहीं हैं।

वेद के सभी मन्त्र सत्य, सदाचार, पराक्रम, प्राणिमात्र से प्रेम, हिंसा रहित यज्ञ, ईश्वरोपासना तथा ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देते हैं जिससे स्पष्ट है कि ये 75 मन्त्र वेद में बाद में धूर्तों द्वारा मिलाये गये हैं – जैसा कि महाभारत के शान्ति पर्व में कहा गया है –

सुरां मत्स्यान्मधुमांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे नैतद्वेदेषु कल्पितम्।
मानान्मोहाच्च लोभाच्च लौल्यमेतत्प्रकल्पितम्।

महा.शा.264/9–10

यज्ञों में मद्य, माँस आदि का प्रचार तो लोभी, लोलुप और धूर्तों ने किया है, इसका वेदों में कोई उल्लेख नहीं है

इससे स्पष्ट है कि माँस मदिरा तथा पशुवध से संबन्धित मन्त्र बाद में मिलाये गये हैं, जिन्हें वेदों से हटाया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

इन मिलावटी मन्त्रों का विवरण निम्न प्रकार है –

<u>यजुर्वेद अध्याय 21</u>

मन्त्र सं. 41 –

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेताꣳ हविर्होतर्यज।
होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषताꣳ हविर्होतर्यज।
होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषताꣳ हविर्होतर्यज।। 41

इसका सीधा अर्थ है –

1. होता ने अश्विनी कुमारों के लिये बकरे की चर्बी और माँस से यज्ञ किया। हे होता! तुम भी उसी प्रकार यजन करो। अश्विनौ बकरे की वपा और मेद का आस्वादन करें

2. होता ने सरस्वती का मेढ़े की वपा और माँस से यजन किया, हे होता! तुम भी उसी प्रकार यजन करो। सरस्वती वपा और मेद का सेवन करें।

3. होता ने बैल की वपा और माँस से इन्द्र का यजन किया, हे होता! तुम भी उसी प्रकार यजन करो। इन्द्र बैल की वपा और मेद का आस्वादन करें।

कृपया काशी से प्रकाशित उवट तथा महीधर का भाष्य देखने का कष्ट करें।

हलायुध कोष के अनुसार वपा मेदः वसा (माँस प्रभव धातु विशेषः)। शुद्ध माँसस्य यः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता – इति सुश्रुतः। माँस रोहिणी।

मेदः– यन्मासं स्वाग्निना पक्वं तन्मेद इति कथ्यते।

मेदो हि सर्व भूतानामुदरेष्वस्थिषु स्थितम्–

इति भाव प्रकाशः।

वपा अथवा वसा माँस से उत्पन्न होती है। शुद्ध माँस की जो चिकनाई होती है, उसे वसा कहा जाता है।
शरीर की अपनी अग्नि से पका हुआ जो माँस होता है उसे मेद कहते हैं। यह प्राणियों के उदर में स्थित रहता है।

आर्य समाज द्वारा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के नाम से जो भाष्य प्रकाशित किया गया है, उसमें इस मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार दिया गया है, 'जो मनुष्य पशुओं की संख्या और बल को बढ़ाते हैं, वे आप भी बलवान होते हैं और जो पशुओं से उत्पन्न हुये दूध और उससे उत्पन्न हुये घी का सेवन करते हैं, वे कोमल स्वभाव वाले होते हैं।

इस भावार्थ का मन्त्र में प्रयोग किये गये शब्दों से कोई सम्बन्ध नहीं है और यह मन्त्र के वास्तविक अर्थ से सर्वथा विपरीत है। श्री सातवलेकर जी ने इस मन्त्र की पहली पंक्ति के अर्थ में तो बकरों की वपा से आहुति का उल्लेख किया है किन्तु दूसरी पंक्ति के अर्थ में, वपा का अर्थ बीज बढ़ाने की क्रिया तथा चिकने घृत आदि पदार्थ किया है तथा तीसरी पंक्ति के अर्थ में वपा का अर्थ बैल के बढ़ाने वाले भाग से किया है, जो स्पष्ट रूप से गलत है।

ऐसा केवल इसलिये किया गया है कि किसी को यह पता न चले कि वेदों में दुष्टों द्वारा मिलावट करके माँस और मदिरा का प्रयोग यज्ञों में किये जाने का उल्लेख किया गया है।

संभवतः इन विद्वानों का विचार यह रहा होगा कि यदि वह धूर्तों द्वारा मिलायी गयी पशु वध, क्रूरता तथा अश्लीलता की बातों को उल्लेख कर देगें तो इससे वेदों का अपमान होगा। विचारणीय है कि क्या इतने बड़े विद्वानों द्वारा इस प्रकार सत्य को छिपाना उचित था।

इसी अध्याय के मं. सं. 40 में कहा गया है 'मेदसां पृथक् स्वाहा'। होता विभिन्न पशुओं की चर्बियों से पृथक् पृथक् स्वाहा कहकर आहुति दे। अश्विनौ के लिये छाग अर्थात् बकरे की, सरस्वती के लिये मेष अर्थात् भेड़ की तथा इन्द्र के लिये ऋृषभ अर्थात् बैल की वपा से आहुति दे।

मं. सं. 42 में कहा गया है कि अश्विनौ छाग के माँस का भक्षण करें। मोटे ताजे अंगों के पास से निकाले गये तथा बगल और योनि आदि से खोद तथा काट कर निकाले गये और अग्नि के द्वारा परिपक्व किये गये इन माँस–वपा खण्डों का भक्षण करके अश्विनौ, सरस्वती तथा इन्द्र तृप्त हों। मं. सं. 43 में उपरोक्त बात अश्विनौ के लिये बकरे के माँस के सम्बन्ध में कही गयी है।

मं. सं. 44 में उपरोक्त बात ही सरस्वती के लिये मेष के माँस के सम्बन्ध मे कही गयी है

मन्त्रं सं. 45 में यही बात इन्द्र के लिये ऋषभ के माँस के सम्बन्ध में कही गयी है।

मं. सं. 46 तथा 47 मे भी छाग, मेष तथा ऋषभ के माँस की आहुतियाँ दिये जाने का उल्लेख है।

मं. सं. 59 में पुरोडाशों को पकाने तथा अश्विनौ के लिये बकरे को, सरस्वती के लिये मेष को तथा इन्द्र के लिये बैल को काटने के लिये यूप में बाँधने का उल्लेख किया गया है।

मं. सं. 60 में कहा गया है कि अश्विनौ, सरस्वती तथा इन्द्र ने क्रमशः बकरे, मेष तथा बैल के मेद से प्रारम्भ करके शेष अंगों से पकाये गये पुरोडाशों का भक्षण किया और सुरा तथा सोम का पान करके वृद्धि को प्राप्त किया। इस अध्याय के मं. सं. 29 से लेकर 40 तक सभी मन्त्रों में सोम, मधु आदि के साथ 'परिश्रुता' शब्द, जिसका अर्थ मदिरा होता है, से आहुति देने का प्रविधान किया गया है किन्तु आर्य समाज द्वारा स्वामी दयानन्द जी के नाम से प्रकाशित हिन्दी भाष्य तथा सातवलेकर जी द्वारा किये गय भाष्य में परिश्रुता का अर्थ 'सब ओर से प्राप्त रस किया गया है', जो स्पष्ट रूप से गलत है।

अध्याय 22

इस अध्याय के मं. सं. 7 में अश्व के हिंकार करने के लिये स्वाहा, उसके बैठने के लिये स्वाहा, उसके सोने के लिये स्वाहा, उसके जागने के लिये स्वाहा आदि निरर्थक बाते लिखी गयी हैं जिनसे यज्ञ और स्वाहाकार का अपमान होता है।

मं. सं. 8 की भी यही स्थिति है। इसमे कहा गया है कि अश्व के खाने के लिये स्वाहा, पीने के लिये स्वाहा, **'यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा'** जो मूत्र करता है उसके लिये स्वाहा आदि।

अध्याय 19

इस अध्याय के मं. सं. 14 तथा 15 में सुरा बनाये जाने काउल्लेख है।

मं. सं. 16 में उत्तर वेदी का उल्लेख है। इस उत्तर वेदी में ही पशुवध किया जाता था। मन्त्र में उत्तर वेदी में सुरा धानी अर्थात् सुरा रखने के पात्र का भी उल्लेख है।

उत्तर वेदी में ही पशुओं को पकाते हैं। –

शतपथ ब्राह्मण 12।9।3।11

मं. सं. 31 में कहा गया है कि सौत्रामणी यज्ञ में सुरा सोम अभिषुत होने पर यजमान सोम यज्ञ के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

मं. सं. 32 में सौत्रामणी यज्ञ को **सुरावन्तं बर्हिषदम** कहा गया है।

सुरावान्वा एष बर्हिषद्यज्ञो यत्सौत्रामणी। शतपथ 12। 8।1। 2

यह जो सौत्रामणी यज्ञ है वह 'सुरावान् बर्हिषद्' है।

यह सौत्रामणी यज्ञ सुरा से किया जाता है। शतपथ 12।9।1।1

मं. सं. 33 में कहा गया है कि हे सुरे! ओषधियों में वर्तमान जो तुम्हारा रस एकत्र किया गया है और सुरा के साथ अभिषुत सोम का जो बल है, उस मदकर रस से तुम यजमान, अश्विनौ, इन्द्र और अग्नि को तृप्त करो।

मं. सं. 35 में भी सुरा के कुछ अंश के साथ मिले हुये सोम का पान करने का उल्लेख है।

अध्याय 6

अध्याय 6 में पशुबध का वीमत्स वर्णन है।

मं. सं. 7 के सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण 3/7/3/3 में कहा गया है कि पशु को लाकर तथा अग्नि को मथकर पशु को यूप से बांधते हैं। मन्त्र में कहा है 'उपावीरसि .....' दैवी लोग देवो के पास आये हैं।' ये जो पशु हैं वे दैवी लोग हैं। जब वह 'उपदेवान्' कहता है तो उसका तात्पर्य है कि पशु देवों के वश में आ गया है । **'देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम्।** हे पशो! तुम्हारे हविर्भूत माँस आदि का देव आस्वादन करें।

मं. सं. 8 में पहले कहा गया है कि हे धन देने वाली गायो! तुम यजमान के घर में सुख से रहो। फिर कहा गया है कि हे देवहविः अर्थात् देवों के हवि रूप पशो! मैं तुम्हें (ऋतस्य) यज्ञ के बन्धन से बाँन्धता हूँ।

(अर्थ में आगे लिखा है कि मन्त्र पढ़कर पशु की सीगों में रस्सी बाँन्धना और उससे कहना कि अब शमिता अर्थात् काटने वाला तुम्हें अपने वश में करे। <u>यहाँ स्पष्ट रूप से वध के लिये गाय को काटे जाने के लिये बाँधने का उल्लेख है।</u>

मं. सं. 9 में कहा गया है (मन्त्र पढ़कर पशु को खम्भे से बाँधना और दर्भो से पशु पर जल छिड़कना।) **अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि।** हे पशो ! मैं तुम्हें

अग्नि और सोम की स्वादिष्ट तथा प्रिय हवि बनाने के लिये दिव्य जल से पोक्षित करता हूँ।

मं. सं. 10 में कहा गया है कि पशु के उदर आदि निम्न भागों का प्रोक्षण करना और मन्त्र पढ़कर पशु के ऊपर सर्वत्र जल छिड़कना। **'आपो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित् सद् देव हविः'** दिव्य जल तुझको सच्ची **देव हवि** के लिये स्वादिष्ट बनायें। हे पशो! तुम्हारा प्राण बाह्य प्राण से संगत हो अर्थात् वायु में मिल जाय और तुम्हारें अंग प्रत्यंग यजनीय देव से संगत हों।

मं. सं. 11 में कहा है कि पशु को मारने के लिये नियुक्त व्यक्ति के हाथ से पशु को काटने की असि और स्वर को हाथ में लेकर उन दोनों को घृत से आलिप्त करके कहे कि हे असे! और स्वरो! तुम इस काटे जाने वाले पशु की रक्षा करो। (काटने वाले औज़ारों से ही कहा जा रहा है कि तुम काटे जाने वाले पशु की रक्षा करो। क्रूरता, निकृष्टता तथा संवेदनहीनता की पराकाष्ठा है यह।)

शतपथ 3/8/1/16 में लिखा है कि जब वे इसको पकड़ कर नीचे गिरा देते है तो गला घोटने से पहले आहुति देते है 'स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा'। इस प्रकार सब देवों को प्रसन्न करते हैं।

फिर घड़े में रखे हुये जल से कहा जाता है कि तुम इस पशु को शुद्ध कर दो ताकि इसे देवों द्वारा प्राप्त किया जा सके।

मं. सं. 14 के अनुसार यजमान की पत्नी जल से पशु के शिश्न, गुदा आदि सब अंगो को धोकर पवित्र करती है।

मं. सं. 15 के अनुसार तीन दर्भों को पशु की छाती पर रखा जाता है और यजमान पशु की त्वचा उधेड़ने के लिये तलवार हाथ में लेकर तलवार से कहता है कि तुम इस पशु की आत्मा

को दुखी मत करना। (फिर उसी प्रकार की क्रूरता तथा संवेदन हीनता)

मन्त्र सं. 16–शतपथ में लिखा है कि जहाँ पशु का चमड़ा उधेड़ा जाय या रक्त निकले वहाँ, दोनों ओर से इसके नीचे के भाग में **रक्षसां भागोऽसि** मन्त्र से रुधिर लगा देता है। पशु की त्वचा उधेड़ने के बाद उसकी छाती पर रखे तृणों के टुकड़ों को अध्वर्यु पशु के खून में भिगो दे और मिट्टी के ढ़ेर पर फेंक दे तथा पशु के उदर से निकाली गयी मेद को, मेद निकालने वाली दोनों लकड़ियों में आलिप्त करके उन दोनों लकड़ियों को आहवनीय अग्नि में होम कर दे।

मं. सं. 17 में जल से प्रार्थना की जाती है कि जो पाप मैंने किया है उस पाप से मुझे मुक्त कर दो।

मं. सं. 18 में कहा गया है कि पहले पशु के हृदय को छौंके, फिर शेष सर्वांग माँस को छौंके और कहे कि हे पशो! तुम्हारा मन और प्राण देवों के मन और प्राण से संगत हो। इस प्रकार वसा होम के द्वारा दुर्भाग्य दूर हुआ। (इसके बाद घृत और वसा को तलवार से मिश्रित करके वसाज्य बनाना)।

मं. सं. 19 में कहा गया है (घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः) – कि वसा पीने वाले पितरो तुम वसा का पान करो। हे वसाज्य! तुम देवों एवं पितरों की हवि हो। यह अग्नि में आहुति है **'दिग्भ्यः स्वाहा।** वसा होम रस है इस रस को सब दिशाओं में पहुँचाता है।

मं. सं. 20 में कहा गया है, हे त्वष्टा देव! तुम्हारी शक्ति से इस पशु के अंग अंग यथा पूर्व संधित हो जायँ और पशु से

कहा गया है कि तुम्हारे सखा और माता पिता तुम्हारे देव लोक को जाने से प्रसन्न हों (कैसी Hypocrisy है यह)

मं. सं. 21 में कहा गया है कि वध्य पशु की पकाकर रखी हुई गुदा के एक तिहाई भाग को तिरछा काटकर ग्यारह टुकड़े करले और मन्त्र में आये हुये विभिन्न शब्दों जैसे **'समुद्रं गच्छ स्वाहा'** आदि से एक एक करके टुकड़ों की आहुति दे।

मं. सं. 22, इसमें वरुण से प्रार्थना की गयी है कि न मारने योग्य गौ आदि पशुओं को मार कर जो हमने पाप किया है उससे हमे छुड़ाओ **'सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु'** जल तथा ओषधियाँ हमारी सुमित्र हों।

अध्याय सं. 8

मन्त्र सं. 28 – 'एजतु दशमास्यो गर्भः'..... शतपथ ब्राह्मण 4/5/1/5 में कहा गया है कि अब मित्र और वरुण के लिये अनुबन्ध्या गाय को मारते हैं । यदि बन्ध्या गाय न मिले तो बैल ही सही। 4/5/1/9

वे वशा का आलभन करते है और उसे मारते है। मारने के बाद कहते हैं वपा को निकालो और गर्भ को खोजो। जब गर्भ निकल आवे तो इस मन्त्र को पढ़े **' एजतु दशमास्यो गर्भः'**। इसके पश्चात् वशा गाय को काटने और पकाने का उल्लेख है। **मन्त्र सं. 29 'यस्ये ते यज्ञियो गभा ..... से तथा मन्त्र सं. 30 'पुरुदस्मो विषुरूप' से** आहुतियाँ दिये जाने का उल्लेख है।

अध्याय सं. 25

मन्त्र सं. 32 – इसमें कहा गया है कि अश्वमेध के अश्व के माँस का जो भाग मक्खी ने खा लिया है, जो यूप अथवा तलवार में लगा रह गया है या कसाई के हाथ में लगा रह गया है, वह सब देवो को प्राप्त हो।

मन्त्र सं. 33 में कहा गया है मांस को ठीक से पकावे, न गला दे, न कच्चा छोड़ दे।

मन्त्र सं. 34 – मांस का कोई भाग पृथ्वी पर न गिर जाये और न तृण आदि में लिपट जाये, सब देवताओं को प्राप्त हो ।

मन्त्र सं. 35 – जो अश्व को परिपक्व होता हुआ देखकर कहते है कि अच्छी सुगन्ध आ रही है अच्छा अब ले आओ. उससे हम प्रोत्साहित हों

मन्त्र सं. 36 – मांस पकाने वाली बटलोई को बार बार देखा जाना और जो अश्व को काटने की तलवार आदि है, वह सब अश्व को सुशोभित करते हैं ।

मन्त्र सं. 37 – इसमें कहा गया है कि हे अश्व! तुम्हें पकाते समय खद–खद की आवाज न आवे, तुम्हारे वषट्कृत मांस को देवता ग्रहण करें।

मन्त्र सं. 38 – हे अश्व! तुम्हारा निकलना, बैठना, जल पीना ,घास खाना, आदि सब देव को प्राप्त हो।

मन्त्र सं. 39 – अश्व को जो वस्त्र उढ़ाते हैं उसके सिर में जो बान्धते हैं उसके साथ जो स्वर्ण मोहरें बान्धते हैं, ये सब कर्म घोड़े को देवों को प्राप्त होने का साधन हैं।

मन्त्र सं. 40 – हे अश्व! घुड़ सवार ने सवारी के समय एड़ी या चाबुक से जो तुम्हें पीड़ा दी है उस सबको स्रुवा के द्वारा यज्ञों में हवि के समान मन्त्र के द्वारा दूर करता हूँ

मन्त्र सं. 41 – वेगवान् और देव प्रिय अश्व की चौंतीस वक्रियों को तलवार पार करती है। हे ऋत्विजों ! तुम एक एक अंग की घोषणा करके इसके अंग अंग को अच्छिद्र बनाओ और काटो ।

मन्त्र सं. 42 – इसमें कहा गया है कि हे अश्व! तुम्हारें जिन जिन अंगों को मैं, अध्वर्यु काटकर अलग करता हूँ, उन उन माँस पिण्डों को मैं अग्नि में होम कर देता हूँ , अपने काम में नहीं लाता हूँ।

मन्त्र सं. 43 – इसमें कहा गया है कि हे अश्व! स्वर्ग में जाते हुये तुम्हें तुम्हारा प्रिय शरीर तुम्हें दुखी न करे और यह तलवार तुम्हारे शरीर का कोई भाग न छोड़े, सभी अंगों को काटकर देवों को समर्पित कर दे।

मन्त्र सं. 44 – इसमें कहा गया है हे अश्व! काटे जाकर भी तुम न मरोगे न नष्ट होगे। यहाँ से तुम देवयान मार्ग से सीधे देवों को प्राप्त होगे । यही बात अध्याय सं. 23 के मन्त्र सं. 16 में कही गयी है

अध्याय सं. 28

इसके मन्त्र सं. 11 में मेद की आहुति देने का उल्लेख है

मन्त्र सं. 23 तथा 46 में इन्द्र के लिये बकरे का मांस पकाने तथा भक्षण करने का उल्लेख है। यह भी कहा गया है कि अश्विनौ आदि देवों ने यजमान के द्वारा प्रदत्त पशुओं की मेद से प्रारम्भ करके सर्वांग तक का भक्षण किया और बचे हुये

शेष अवयवों का भी भक्षण किया ।उपरोक्त दोनों मन्त्र एक समान हैं।

अध्याय सं. 29

इसके मन्त्र संख्या 10, 20, 23, 24 तथा 35 में अश्व आदि का उल्लेख देवों की हवि अर्थात् ऐसे पशु जिनके माँस की आहुति दी जाय, के रूप में किया गया है।

अध्याय सं. 23

इसके मन्त्र सं. 16 में कहा गया है कि ' हे अश्व! जो तुम हमारे द्वारा काटे तथा मारे जा रहे हो, वह तुम न मरोगे न नष्ट होगे। तुम सुगम देवयान मार्ग से देवों को प्राप्त होगे।

इसके मन्त्र सं. 18 से 31 तक में उव्वट द्वारा किये गये अर्थों में अश्वमेध यज्ञ का अश्लील वर्णन है। (किन्तु यह कहना आवश्यक है कि इनमें मन्त्र सं. 19 **'गणानां त्वा गणपतिं'** का अर्थ स्पष्ट रूप से गलत है) इन मन्त्रों तथा उनके अर्थों की फोटो प्रतिलिपि आगे दी जा रही है।

यह भी उल्लेखनीय है कि इसी प्रकार के अर्थ शतपथ में भी दिये गये है, और शतपथ के 13/2/11/2 और 13/ 3 में कहा गया है कि अश्वमेध यज्ञ में वपा की आहुतियाँ दी जाती हैं।

इनमें से मन्त्र सं. 28 तथा 29 अथर्ववेद काण्ड 20 के कुन्ताप सूक्त , जो कि खिल सूक्त माना जाता है, में 20/136/1 तथा 20/136/4 के रूप में आये हैं, ।इस

अध्याय में अश्वमेध यज्ञ, जिसे सब लोग अत्यन्त श्रेष्ठ समझते हैं, का वर्णन अत्यन्त निन्दनीय एवं अश्लील है। स्वामी दयानन्द जी ने सन्यार्थप्रकाश मे लिखा है–

कि इसमे वर्णित निकृष्ट एवं अविश्वसनीय दुष्कर्म के फल स्वरूप गोरखपुर के एक राजा की रानी की मृत्यु हो गयी थी।

इस विषय में यह उल्लेखनीय है कि नीचे दिये गये मन्त्रों के जो अर्थ उवट तथा महीधर द्वारा किये गये हैं, उनसे सर्वथा विपरीत अर्थ स्वामी दयानन्द जी तथा सातवलेकर जी द्वारा किये गये हैं किन्तु उनका उद्देश्य केवल अश्लीलता को छिपाना है जब कि शतपथ ब्राह्मण में उवट तथा महीधर के समान ही अर्थ दिये गये हैं। अतः उन्ही के द्वारा किये गये अर्थों की फोटों प्रतिलिपि आगे दी जा रही है।

अश्वमेध यज्ञ, अध्याय 23, मन्त्र सं. 18 से 31 ।

प्राणाय॒ स्वाहा॑ अपा॒नाय॒ स्वाहा॑ व्या॒नाय॒ स्वाहा॑ । अम्बे॒ अम्बि॒केऽम्बा॑लिके॒ न मा॑ नयति॒ कश्च॒न । ससस्त्यश्व॒कः सु॒भद्रि॑कां काम्पील॒वासि॑नीम् ॥ १८ ॥

[अम्बे । अम्बिके । अम्बालिके । न । मा । नयति । कं । चन ॥ ससस्ति । अश्वकः । सुभद्रिकामितिसु भद्रिकाम् । काम्पीलवासिनीमितिकाम्पील वासिनीम्॥१८॥

प्राण-अपान-व्यान के लिए यह आहुति है । (महिषी, वावाता और रखैल अश्व के निकट जाती हैं ।) हे अम्बे-अम्बिके-अम्बालिके (=माँ) ! कोई भी पुरुष मुझे अश्व के पास शीघ्र नहीं पहुँचाता (मेरे शीघ्र न पहुँचने के कारण ही) यह दुष्ट अश्व उस काम्पील-वासिनी सुभद्रिका को लेकर सो रहा है ॥ १८ ॥

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ १९ ॥

(पत्नियाँ पहुँच कर अश्व की नौ प्रदक्षिणाएँ करती हैं ।) गणों में श्रेष्ठ तुझ गणपति को हम याचित करती हैं । प्रियों में प्रियपति हम तुम्हें याचित करती हैं । सुखनिधियों में श्रेष्ठ सुख के निधिपति तुम्हें हम याचित करती हैं । हे वसुरूप अश्व ! तुम्हीं हमारे पति होओ । (महिषी अश्व के पास लेटती है ।) हे अश्व ! गर्भधारक तुम्हारा तेज मैं खींच कर स्वयोनि में धारण करती हूँ । तुम उस गर्भधारक स्वतेज को खींच कर मेरी योनि में डालते हो ॥ १९ ॥

ता उभौ चतुरः पदः संप्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २० ॥

हे अश्व ! आओ हम-तुम दोनों अपने चार पैर फैलावें । (अध्वर्यु—) हे अश्वमहिषी ! तुम दोनों इस स्वर्गीय यज्ञभूमि में स्वयं को चादर से ढँक लो । (महिषी घोड़े के लिङ्ग को खींचकर अपनी योनि घुसेड़ती है ।) वीर्यवान् अश्व, वीर्य को धारण कराने वाला मुझमें स्ववीर्य को धारण करे ॥ २० ॥

उत्सक्थ्या अवगुदं धेहि समञ्जि चारया वृषन् । यः स्त्रीणां जीवभोजनः ॥ २१ ॥

(यजमान घोड़े से कहता है—) हे सेचक अश्व ! उठी जंघाओं वाली इस महिषी की योनि में अपना लिङ्ग डालो—उसे आगे-पीछे चलाओ । यह लिङ्ग ही स्त्रियों का जीवन और भोजन है ॥ २१ ॥

यकाऽसकौ शकुन्तिकाऽऽहलगिति वक्षति । आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥ २२ ॥

(कुमारी कन्या से अध्वर्यु चूत की ओर अंगुली दिखाकर—) यह (चूत) कौन-सी छोटी फुदकी 'आहलग्' शब्द कर रही है ? जब भग में शिश्न को मारते (=धक्के लगाते) हैं, तब योनि लिङ्ग को मानो निगल लेती है ॥ २२ ॥

यकोऽसकौ शकुन्तक आहलगिति वक्षति । विवक्षत इव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभिभाषथाः ॥ २३ ॥

(कुमारी शिश्न की ओर अंगुली दिखाकर—) हे अध्वर्यो ! यह कौन-सा पक्षि तेरे आगे 'आहलग्' शब्द करता हुआ रेंग रहा है ? यह तो कुछ कहता हुआ तेरा मुख-सा लगता है । अध्वर्यो ! आगे कुछ मत कहो ॥ २३ ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य रोहतः ।
प्रतिलोमीति ते पिता गभे मुष्टिमतꣳसयत् ॥ २४ ॥

(ब्रह्मा महिषी से कहता है—) हे महिषि ! तुम्हारी माता और तुम्हारा पिता जब खाट पर चढ़ते हैं। 'मैं स्नेहित करता हूँ' —ऐसा कहकर तेरा पिता मुट्ठी से शिश्न को भग में घुसेड़ता है। (—उसी से तू पैदा हुई है) ॥ २४ ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य क्रीडतः ।
विवक्षत इव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु ॥ २५ ॥

(महिषी—) हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे भी माता-पिता जब खाट पर रति-क्रीडा करते हैं..... । कुछ और कहने की इच्छा कर रहा है तुम्हारा मुख । हे ब्रह्मन् ! तुम अधिक कुछ मत कहो ॥ २५ ॥

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳ हरन्निव ।
अथास्यै मध्यमेधताꣳशीते वातो पुनन्निव ॥ २६ ॥

(उद्गाता वावाता के प्रति—) अरे भाई ! इस वावाता को जरा ऊपर तो उठाओ—जैसे भार को वहन करते हुए (थकने पर) जरा ऊपर उठाते हैं। तब इसका मध्य योनिभाग फूल उठेगा, जैसे शीत वायु में अनाज उसाते समय कृषक अनाज से भरी डलिया को ऊपर उठाता है ॥ २६ ॥

ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रपयताद्गिरौ भारꣳ हरन्निव।
अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव।। २७।।

(वावाता उद्गाता के प्रति—) अरे भाई ! कोई इस उद्गाता को जरा ऊपर उठाओ, जैसे पर्वत पर भार वहन करते हुए थक कर उसे जरा ऊपर उठाते हैं। तब इस मध्यलिंगभाग का कम्पन करे, जैसे शीत वायु में अनाज उसाते हुए कृषक का हाथ कम्पन करता है ॥ २७ ॥

यदस्या अꣳहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत्।
मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ २८ ॥

(होता परिवृक्ता के प्रति—) जब छोटी योनि वाली के भग में छोटा-मोटा लिंग घुसता है, तब अण्डकोष इसकी चूत के ऊपर ही कम्पन करते रह जाते हैं, जैसे गाय के पैर में भरे हुए जल में दो मत्स्य गति करें ॥ २८ ॥

यद्देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविपुः । सक्था देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥ २९ ॥

(परिवृक्ता होता के प्रति—) जब यह देवजन प्रकर्ष से श्लेष्मास्रावी लिंग को भग में प्रविष्ट करते हैं, तब मात्र जंघास्थियों से नारी कही जाती है (—अन्यथा उसके सर्वांश का लोप हो जाता है, क्योंकि सुरतिरत पुरुष नारी को सर्वांशतः छाप लेता है ।), जैसे कि आँख से देखे सत्य का विश्वास । (यदि कोई यह कहे कि यह ब्राह्मण तो साक्षात् देवता है—विद्वान् है । यह डरते-डरते साधारण रति करते होंगे । वह भी किसी आसन आदि के साथ नहीं । तो यह 'कान की सुनी' के समान असत्यप्राय है । 'आँख की देखी' के समान सत्य यही है कि ऊपर के यह देवता भोगकाल में नारी की जान ले लेते हैं) ॥ २९ ॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते । शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥ ३० ॥

(क्षत्ता पालागली के प्रति—) जब किसी किसान के हरे-भरे खेत में घुसकर कोई हिरन उसके खेत को चरता है, तो किसान यह नहीं स्वीकार करता कि हरे-भरे धान्यों को चरकर पशु मोटा हो गया होगा । वह तो यही जानकर दुःखी होता है कि उसका खेत चर लिया गया । इसी प्रकार जब कोई शूद्रा किसी धनी की रखैल बन जाती है, तब उसका पति यह नहीं समझता कि अब उसके घर में प्रभूत धन आएगा । वह तो यही जानता है कि उसकी स्त्री व्यभिचारिणी हो गई ॥ ३० ॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते। शूद्रो यदर्याय जारो न पोषमनुमन्यते ॥ ३१ ॥

(पालागली क्षत्ता के प्रति—) जब हरिण अनाज खाता है, तब 'पशु पुष्ट हो गया, क्या प्रसन्नता की बात है'—किसान ऐसा नहीं मानता। जब शूद्र किसी धनी की स्त्री का जार बन जाता है, तब वैश्य भी इसे अपनी पुष्टि नहीं स्वीकार नहीं करता। बल्कि वह क्लेशित ही होता है॥ ३१ ॥

अध्याय सं. 35 :

मन्त्र संख्या 20

वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान् पराके। मेदसः कुल्या उप तान्त्स्रवन्तु सत्या एषामाशिषःसं नमन्ता ँ स्वाहा।। 35।20

हे जातवेद अग्ने! पितरों के लिये तुम वपा (चर्बी) का वहन करो। उन पितरों के लिये मेद की लघु सरितायें बहें और हमें उनका आशीर्वाद प्राप्त हो।

उल्लेखनीय है कि इस मन्त्र को पढ़कर गौ की वपा से होम करने का विधान पारस्कर गृह्य सूत्र की तृतीय कण्डिका 3।3।9 में किया गया है।

वेद में इन मन्त्रों को मिलाने वाले दुष्टों की नीचता एवं विकृत मानसिकता इस वाक्य से कि 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' अर्थात् यज्ञों में की जाने वाली पशुवध

रूपी हिंसा, हिंसा नहीं होती, तथा मनुस्मृति में मिलाये गये निम्नांकित श्लोको में दिखायी देती है।

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया।

यथाविधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये।।

मनुस्मृति ५। २ ७

(प्रोक्षितं मांसं भक्षयेत्) यज्ञ के मन्त्रों से पवित्र किये गये मांस का भक्षण करना चाहिये, (ब्राह्मणानां च काम्यया) तथा ब्राह्मणों को इच्छानुसार मांस खाना चाहिये,। (यथाविधि नियुक्तः) शास्त्र में निर्दिष्ट विधि के अनुसार मांस खाना चाहिये तथा प्राणों की रक्षा के लिये भी मांस खाना चाहिये। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मणों के लिये यह छूट है कि वह अपनी इच्छानुसार जब चाहें तब मांस खायें।

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा।
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः।।

मनुस्मृति ५।३९

ब्रह्मा जी ने स्वयं ही पशुओं को यज्ञ के लिये उत्पन्न किया है। अतः यज्ञ में किया गया पशुवध, वध नहीं होता।

या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे।

अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ।।

मनुस्मृति ५।४४

(अस्मिन् चराचरे या वेदविहिता हिंसा नियता) इस संसार में जो वेदविहित हिंसा है, (अहिंसा एव तां विद्याद्) उसे अहिंसा ही

समझना चाहिये (हि धर्मः वेदाद् निर्वभौ) क्योंकि धर्म का स्रोत वेद ही है।

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।

प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला।।

मनुस्मृति ५।५६

(मांस भक्षणे दोषः न) न मांस भक्षण में दोष है , (न मद्ये न च मैथुने) न मद्य में और न मैथुन में, (एषा प्रवृत्तिः भूतानां) क्योंकि यह तो मनुष्यों का स्वभाव ही है (तु निवृत्तिः महाफला) किन्तु इनका परित्याग अत्यन्त फलदायी है।

इसी प्रकार वाम मार्गियों द्वारा कहा गया है –

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।

एते पंच मकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे।।

महा निर्वाण तन्त्र **कालीतन्त्र**

मद्य, मांस, मीन अर्थात् मछली, योनि पात्राधार मुद्रा और मैथुन अर्थात् पुरुष स्त्री का समागम ये पाँच मकार प्रत्येक युग में मोक्ष दायक हैं।

अर्थात् पुरुष स्त्री का समागम ये पाँच मकार प्रत्येक युग में मोक्ष दायक हैं।

दुर्भाग्य है कि हम लोग बुराइयों को हटाने के बजाय उन्हें छिपाने का प्रयास करते हैं अथवा उनके प्रति मौन सहमति रखते है। इसीलिये सतीप्रथा, बाल विवाह, छुआ छूत आदि कुप्रथायें सैकड़ों वर्षों तक चलती रहीं। इसका एक उदाहरण है कि आजकल भी सकट के अवसर पर अनक घरों में तिल का बकरा बनाकर काटा जाता है।

महत्वपूर्ण

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, श्री कात्यायन मुनि ने अपनी यजुर्वेद सव्रानक्रमणी के प्रारम्भ मे ही लिखा है–

'माध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्नाये सर्वे सखिले सशक्रिय ऋषिदैवतछन्दाꣳस्यानुक्रमिष्यामः।

अर्थात् माध्यन्दिन वाजसनेयि संहिता के खिल एवं शुक्रिय मन्त्रों सहित सभी मन्त्रों के ऋषि देवता तथा छन्दों की अनुक्रमणी बनाता हूँ। **साथ ही यह भी लिखा है कि यजुर्वेद के अध्याय 19 के 12 वें मन्त्र से लेकर 20 मन्त्र, चौबीसवें अध्याय के सभी 40 मन्त्र, 25वें अध्याय के पहले 9 मन्त्र और तीसवें अध्याय के पाँचवें मन्त्र से लेकर अन्त तक 18 मन्त्र, इस प्रकार कुल 87 मन्त्र ब्राह्मण भाग हैं।**

मुनि शानक द्वारा प्रोक्त चरण व्यूह में मन्त्रों की संख्या के विषय में कहा गया है –

'द्वे सहस्रे शते न्यूनं मन्त्रे वाजसनेयके' वाजसनेय संहिता में दो हजार से सौ कम अर्थात् उन्नीस सौ मन्त्र हैं।

श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य के अनुसार भी यजुर्वेद की मन्त्र संख्या 1900 ही है, जब कि इस समय यजुर्वेद में 1975 हैं। काशी से श्री दौलतराम गौड़ द्वारा प्रकाशित यजुर्वेद संहिता की भूमिका में भी मन्त्रो की संख्या उन्नीस सौ लिखी गयी है जब कि इस संहिता मे भी उन्नीस सौ पचहत्तर मन्त्र दिये गये हैं

इस प्रकार स्पष्ट है कि शुक्ल यजुर्वेद में 75 मन्त्र बाद में मिलाये गये हैं, जिनका विवरण निम्न प्रकार हैं।

अध्याय	मन्त्र की क्रम संख्या	योग	विवरण
6 –	7 से 11, तथा 13 से 22	15	गाय, बैल के वध से सम्बन्धित
19 –	32,33,35,36	4	सुरा पान से सम्बन्धित
21 –	29 से 40	12	मदिरा से आहुति दिया जाना
21 –	41 से 47 तथा 59,60	9	मेद–मांस की आहुति दिया जाना
22 –	7,8	2	अश्व के मूत्र आदि के लिये स्वाहा
23 –	18, 20 से 29	11	अश्वमेध के अश्लील मन्त्र
23 –	37, 40 से 42	4	अश्व को सुइयों से छेदना तथा काटना
25 –	32 से 45	14	अश्व का मांस पकाना आदि
28 –	11 ,23, 46	3	बकरे के मांस से सम्बन्धित
35 –	20	1	पितरों के लिये मेद की सरितायें होना

योग = 75

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, महाभारत में स्पष्ट रूप से बताया गया है कि यज्ञों में मांस मदिरा से आहुति आदि देने की प्रथा धूर्तों द्वारा प्रारम्भ की गयी है, वेदों में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

वेदों की निन्दा करने वाले चारवाक ने भी कहा है, **'मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम्'** – अर्थात् वेदों में मांसाहार निशाचरों का मिलाया हुआ है।

मनुस्मृति में लिखा है कि **'यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्'**– मद्य,मांस आदि राक्षसों के ही पेय एवं खाद्य पदार्थ हैं।

अतः पशुवध, मांस,–मदिरा आदि से आहुति देने, उनका भक्षण करने तथा अश्लीलता से सम्बन्धित उक्त 75 निकृष्ट फर्ज़ी मन्त्रों तथा ब्राह्मण भाग के 87 मन्त्रों – (इस प्रकार कुल 162 मन्त्रों) को माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद से निकाला जाना अत्यन्त आवश्यक है। इन्हें निकालने के बाद ही यजुर्वेद को अपौरुषेय तथा ईश्वरीय वाणी कहा जा सकेगा और तभी वैदिक धर्म एवं भारतीय संस्कृति की रक्षा हो सकेगी।

यदि किसी कारण वश इन मन्त्रों को तुरन्त हटाया जाना सम्भव न हो तो महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान तथा महर्षि सान्दीपनि वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित वेद विद्यालयों में इन मन्त्रों को पढ़ाया जाना तो अविलम्ब बन्द

कर दिया जाना चाहिये ताकि वेद विद्यार्थियों को केवल विशुद्ध शुक्ल यजुर्वेद संहिता को ही कण्ठस्थ करना पड़े।

आगे कतिपय मन्त्रों का विवरण इस लिये प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि सभी सज्जनों, विशेष रूप से युवा वर्ग को यह जानकरी प्राप्त हो सके कि वेदों में यज्ञ, गौ, पर्यावरण की सुरक्षा, श्रेष्ठ सामाजिक व्यवस्था, सत्य, सदाचार, अहिंसा एवं निश्पाप जीवन का कितना महत्व है और वेद के अनुसार मनुष्य का जीवन कैसा होना चाहिए तथा उसका क्या उद्देश्य है।

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघश ꣳ सा ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ।।

यजुर्वेद 1।1

इस मन्त्र में स्वास्थ्यप्रद अन्न तथा शुद्ध जल और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए निम्नांकित महत्व पूर्ण निर्देश दिए गये हैं।

1– पर्यावरण की रक्षा के लिए श्रेष्ठतम कर्म करना।
2– समाज की ऐसी व्यवस्था करना जिसमें चोर हमारे ऊपर शासन न कर सकें।
3– हमारे समाज में पाप कर्मों की प्रशंसा करने वाला कोई न हो।
4– अघ्न्या (अ= नहीं+ घ्न= मारना) अर्थात हमारी गायें जिन्हे मारा नही जाता, यक्ष्मा आदि रोगों से मुक्त रहें।

अघ्न्या न हनन् योग्या (जो मारे जाने योग्य नही है।)

अघ्न्या अहन्तव्या भवति। निरुक्त 1/164/40

5– गायों की रक्षा करने वाले यजमान अर्थात यज्ञ कराने वाले के पास बहुत सी गायें तथा बैल आदि पशु सुरक्षित होकर रहें।

इस मन्त्र का अर्थ बताते हुए शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है–
'यज्ञौ वै श्रेष्ठतमम् कर्म' यज्ञ ही श्रेष्ठतम् कर्म है।

इस अत्यन्त महत्वपूर्ण मन्त्र में यह भी कहा गया है कि हमे अपने समाज की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए **'मावस्तेन ईशत'** कि चोर हमारे ऊपर शासन न कर सकें और **'माघंशंसः'** हमारे समाज मे पाप की प्रशंसा करने वाला कोई न हो।

इसी मन्त्र में गाय को **(अघ्न्या) अर्थात् जिये मारा नही जाना चाहिए,** कहा गया है और निर्देश दिया गया है कि यज्ञ करने वाले यजमान के पास बहुत सी गायें तथा अन्य पशु सुरक्षित रहें।

यह उल्लेखनीय है कि यज्ञ के प्रारम्भ मे अग्न्याधान करने अर्थात् समिधाओं के मध्य अग्नि रखने के निम्नांकित मन्त्र स्पष्ट रूप से कहा गया है –

तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे। यजुर्वेद 3/5

जिस पृथिवी में देवताओं के लिये यज्ञ किया जाता है उसके पृष्ठ पर **(अन्नादम्**)अर्थात् यज्ञ मे अन्न का भक्षण करने वाले अग्नि को **(अन्नादाय)** अर्थात् आहुति के रूप मे दिये हुये अन्न का भक्षण करने के लिये स्थापित करता हूँ। इससे सिद्ध हो जाता है, कि वेद के अनुसार मेद, माँस, मदिरा की आहुतियाँ यज्ञ मे नहीं दी जा सकती, केवल अन्न तथा सोम, दूध, आदि पवित्र वस्तुओं की ही आहुति दी जा सकती है।

यजुर्वेद के दूसरे मन्त्र में कहा गया है **'मा ते यज्ञपतिर्हार्षीत्'** यज्ञ करने वाला यजमान कुटिल न हो, धूर्त और मक्कार न हो। इससे स्पष्ट है कि केवल सदाचारी व्यक्ति ही यज्ञ करने का अधिकारी होता है, गाय, बैल को काटकर खाने वाला और शराब पीने वाला नहीं।

यजुर्वेद के तीसरे मन्त्र में यज्ञ की पवित्रता का वर्णन दर्शनीय है–

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्त्रधारम्। देवस्त्वासवितापुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।।

यजुर्वेद 1/3

हे यज्ञ! तुम सैकड़ों प्रकार से, सैकड़ों धाराओं से पवित्र हो, तुम हज़ारो धाराओं से हज़ारो प्रकार से पवित्र हो, सविता देव तम्हें सैकड़ों धाराओं से पवित्र करें।

यजुर्वेद के दूसरे अध्याय के 13 वें मन्त्र में कहा गया है –

मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञं समिमम् दधातु। विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ।।

यजुर्वेद 2/13

मेरा वेगवान मन यज्ञ में आहुति दिये जाने वाले घृत मे लगे अर्थात् यज्ञ करने मे लगे, बृहस्पति इस हिंसा रहित यज्ञ का विस्तार करें, और सम्यक् रूप से धारण करें। समस्त देवता तथा विद्वान् इस यज्ञ मे आनन्द प्राप्त करें और ब्रह्म स्वयं यहाँ प्रतिष्ठित होने की कृपा करें।
यही बात गीता में निम्न प्रकार कही गयी है –

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवं।

तस्मात् सर्व गतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।

गीता 3/15

यज्ञ कर्म को वेद से उत्पन्न हुआ जानो, वेद परमात्मा से उत्पन्न हुये है, अतएव सर्वव्यापक ब्रह्म सदा यज्ञ मे प्रतिष्ठित रहता है।

वैदिक धर्म में यज्ञ का अत्यंत महत्व है।

यज्ञेनं यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥

ऋग्.१०।९०।१६, १।१६४।५०, यजु.३१।१६, अथर्व.७।५।१

देवों नें, विद्वानों ने यज्ञ के द्वारा पूजनीय परमात्मा का यजन किया। विविध प्रकार के यज्ञ ही प्रमुख अर्थात सर्वश्रेष्ठ धर्मिक कार्य थे जिनके द्वारा यज्ञ करने वाले सदाचारी विद्वान, महिमा से युक्त होकर पूर्व में हुए ऋषियों के समान स्वर्ग अथवा आनन्द से परिपूर्ण परम धाम को प्राप्त होते हैं।

यज्ञ की पवित्रता

यज्ञ शब्द का अर्थ है, देव पूजन, दान एवं संगति करण अर्थात, देवताओं का पूजन, दान देना और श्रेष्ठ लोगो का सत्संग करना। इसी लिए ऋग्वेद में कहा गया है –

न यातवं इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः॥

ऋग.७।२१।५

कोई बिघ्नकारी राक्षस, दिखावटी वन्दना करने वाले लोग, तथा शिश्न ही है देवता जिनका, अर्थात्, काम वासना में लिप्त दुराचारी लोग हमारे यज्ञ में न आयँ, केवल श्रेष्ठ संयमी सज्जन ही आयँ।

विचारणीय है कि क्या यज्ञ की पवित्रता एवं श्रेष्ठता का इस प्रकार वर्णन करने वाले यजुर्वेद मे यज्ञ को अपवित्र करने वाले मन्त्र हो सकते हैं ?

वेदों में यज्ञ को अध्वर (अ=नही, ध्वर=हिंसा) अर्थात्, जिसमें हिंसा न हो, कहा गया है।

अध्वर इति यज्ञनाम, ध्वरति हिंसा कर्म तत्प्रतिषेधः।

निघण्टु पठित 'ध्वृ' धातु हिंसार्थक है, अध्वर में इसका प्रतिषेध है।

अतः यज्ञ में पशु हिंसा किये जाने की संभावना ही नहीं हो सकती।

गौ

गौ को वेदों में अत्यधिक सम्मान दिया गया है। वेदों में गाय की प्रशंसा करने वाले बहुत से मन्त्र हैं।

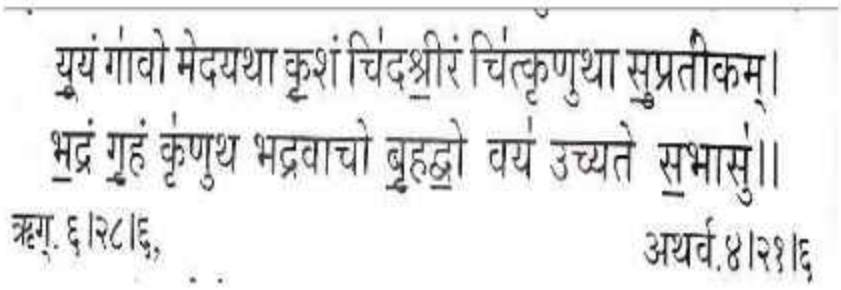
युयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु।।
ऋग्. ६।२८।६, अथर्व.४।२१।६

इस मन्त्र में गौ को (भद्र वाचः) कल्याण कारी वाणी वाली, गृह को सुखी करने वाली, दुर्बलों को पुष्ट बनाने वाली तथा श्री हीन व्यक्तियों को शोभा युक्त बनाने वाली कहा गया है।

ऋग्वेद के निम्नांकित मन्त्र में गौ को रुद्र देवों की माता, वसु देवा की पुत्री, आदित्य देवों की बहन तथा (अमृतस्य नभिः) अर्थात अमृत का केन्द्र विन्दु कहा गया है और **'मा वधिष्ट'** कहकर उसका वध न करने का निर्देश दिया गया है।

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वासादित्यानामृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥

ऋग्. ८।१०१।१५

ऋग्वेद 6/28/5 तथा अथर्ववेद 4/21/5 में गौ को साक्षात इन्द्र कहा गया है। यजुर्वेद 13/43/ में **गां मा हिंसीः** कहकर गाय के साथ किसी प्रकार की हिंसा न करने का आदेश दिया गया है।

महाभारत में गौ को सब प्राणियों की माँ तथा सब सुख देने वाली कहा गया है।

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः।

महाभारत अनुशासन पर्व, 69। 7

इसलिये गाय, बैल, अश्व, भेड़, बकरे आदि निरपराध पशुओं के वध तथा उनके मांस तथा चर्बी और मदिरा से आहुति दिये जाने की बात वैदिक धर्म के सर्वथा विपरीत है। किसी भी वास्तविक वेद मन्त्र में इस प्रकार का निकृष्ट कथन नही किया गया है।

महाभारत में सभो प्राणियों को अभय दान देना सर्वोत्तम धर्म कहा गया है –

आनृशंस्यं परो धर्मस्त्रयीधर्मः सदाफलः।
मनो यस्य न शोचन्ति सद्भिः सन्धिर्न जीर्यते ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।५५

सब भूतों को अभय देना सबसे उत्तम धर्म है, वेदोक्त धर्म सदा फल देने वाला है, मन को रोकने पर शोक नहीं होता तथा सज्जनों की सन्धि अर्थात मित्रता कभी नहीं टूटती।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' के हमारे आदर्श में मनुष्यों के साथ समस्त प्राणी भी सम्मिलित हैं।

यह महत्वपूर्ण है कि निम्नाकिंत पाँच यमों, जिनका पालन करना हमारे धर्म का आधार है, में अहिसां सर्व प्रथम है।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः

योगदर्शन 2।30

गीता में कहा गया है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

गीता–6/29

परमात्मा सभी प्रणियों में स्थित है और सब प्राणी परमात्मा में स्थित हैं। अतः स्पष्ट है कि जो सब प्रणियों के कल्याण के लिये कार्य करता है **सर्व भूत हिते रतः** है वही स्वर्ग को प्राप्त कर सकता है, प्रणियों को मारने काटने वाला नहीं।

यजुर्वेद का स्पष्ट आदेश है

'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।

यजुर्वेद 9/23

हमें स्वयं जागृत होकर और आगे बढ़कर राष्ट्र को जागृत करना चाहिये ताकि अपनी व्यक्तिगत तथा समाज की समस्त बुराइयों को दूर किया जा सके।

वेद का प्रसिद्ध मन्त्र है

भद्रं कर्णेभिः श्रणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

यजुर्वेद 25/21

हम कानों से कल्याणकारी बातें सुनें और नेत्रों से कल्याणकारी वस्तुयें देखें।

तब इन मन्त्रों में कही गयी घृणित बातों को पढ़ना और विद्यार्थियों को पढ़ाना कैसे उचित कहा जा सकता है।

विदुरनीति 2/38 में कहा गया है –**'ब्राह्मणा वेद बान्धवाः** ब्राह्मण वेदों के भाई हैं।

इस लिए सभी ब्राह्मणों और विद्वानों का यह परम कर्तव्य है कि वेदों को कलंकित करने वाले इन मन्त्रो को तुरन्त हटवाने का अथक प्रयास करें।

वेद में प्राथना है–

'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे'

यजुर्वेद 22/22

हमारे राष्ट्र में ब्राह्मण ब्रह्मतेज से युक्त हों।

माँस मदिरा का पान करने वाले और यज्ञों को पशु वध से कलंकित करने वाले पतित लोग, ब्रह्मवर्चसी होना तो दूर ब्राह्मण कहे जाने के भी योग्य नहीं हैं।

वेद में प्राथना है–

'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु'

यजुर्वेद 34/1 से 6 तक

हमारा मन शिवसंकल्प वाला हो।

विचारणीय है कि ऐसे घृणित कार्य करने वालों का मन शिव संकल्प वाला कैसे हो सकता है। उनका मन तो सदैव नीचता एवं कुटिलता से भरा रहेगा और दुराचार की ओर चलने वाला होगा।

वैदिक धर्म का आदर्श है–

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवं।

कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम्।।

तब कोई वैदिक धर्मावलम्बी निरपराध पशुओं का वध कैसे कर सकता है, और वह भी यज्ञ जैसे श्रेष्ठतम् कर्म में। वेद ऐसे निकृष्ट कार्य की अनुमति कैसे दे सकता है?

कतिपय विद्वानों का यह कथन कि 'मन्त्र गलत नहीं हैं, अर्थ गलत है' पूरी तरह असत्य एवं भ्रमक है, उदाहरणार्थ–

**वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान्पराके।
मेदसः कुल्या उप तान्त्स्त्रवन्तु सत्या एषामाशिषः स
नमन्ताꣳ स्वाहा।।**

यजुर्वेद 35/20

हे जातवेद अग्नि, तुम वपा को पितरों के पास ले जाओ, वहाँ वपा की धारायें बहने लगें और पितर प्रसन्न होकर हमें आशीर्वाद दें।

इस मन्त्र के आधार पर पारस्कर गृह्य सूत्र में कहा गया है –

तस्यै वपां जुहोति–वह वपां जातवेदः पितृभ्य इति।।3।3।9

अर्थात उक्त मन्त्र को पढकर गौ की वपा (चर्बी) से होम करे।

क्या पारस्कर गृह्य सूत्र के रचनाकार इतने महान विद्वान् श्री पारस्कर जी को भी इस मन्त्र का सही अर्थ ज्ञात नहीं था ? स्पष्ट है कि मन्त्र ही फर्जी और मिलावटी हैं, अर्थ गलत नहीं हैं।

सभी विद्वान स्वीकार करेगें कि अश्वमेध यज्ञ से सम्बन्धित मन्त्र इतने अधिक अश्लील हैं कि इनका अर्थ बालकों तथा बालिकाओं को बताया भी नहीं जा सकता, तब इनकों वेद का भाग मानकर कण्ठस्थ करवाना और पढ़ाना कैसे उचित कहा जा सकता है ?
वैदिक धर्म को समझने के लिये कृपया गायत्री मंत्र की प्रशंसा से संबन्धित निम्नांकित मन्त्र का अवलोकन करें

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।।

अथर्व वेद 19/71/

इच्छित वर देने वाली, बुद्धि, वाणी तथा कर्मों को श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने वाली और द्विजों को पवित्र करने वाली ज्ञान की माँ गायत्री की मेरे द्वारा स्तुति की गयी।

मन्त्र में प्रयुक्त '**द्विजानाम**' शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे स्पष्ट है कि वेद माता अर्थात् ज्ञान की माँ गायत्री केवल सत्यवादी, सदाचारी तथा सुसंस्कृत लोगों को ही पवित्र करती हैं, पशुओं का वध करके उनके मेद–माँस और मदिरा से आहुति देनेवाले और इनका भक्षण करने वाले नीच दुराचारी लोगो को नहीं।

मन्त्र में आगे कहा गया है कि माँ गायत्री सत्य धर्म के मार्ग पर चलने वाले श्रेष्ठ लोगों को दीर्घायु, प्राणशक्ति अर्थात् तेज एवं पराक्रम, उत्तम स्वाथ्य श्रेष्ठ सन्तान सुख दायक पशु, प्राणिमात्र की रक्षा एवं पुण्य कर्मों से प्राप्त होने वाला यश, प्रचुर मात्रा में धन और ब्रह्म तेज प्रदान करके अन्त में ब्रह्म लोक को ले जाती है।

वास्तव में वेद की यही विषय वस्तु है, यही वेद का उद्देश्य है, यही उनके उपदेशों और आदेशों का लक्ष्य है कि इस लोक में लोगों को सदाचारी बनाना और उनके जीवन को सब प्रकार से सुखी; सफल एवं समृद्ध बनाकर अन्त में जन्म मृत्यु के चक्र से

मुक्त करके परमात्मा के परम धाम को प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना।

इससे स्पष्ट है कि वेद का कोई मन्त्र मनुष्य को असत्य; अत्याचार; क्रूरता, हिंसा मदिरा पान तथा पशुवध जैसे निकृष्ट कर्मों की अनुमति नहीं दे सकता।

वेद में कहा गया है–

दृष्ट्वा रूप व्याकरोत् सत्यानृत प्रजापतिः। अश्रद्धाम् अनृते दधात्श्रद्धाम् सत्ये प्रजापतिः।।

यजुर्वेद 19।77

प्रजापति नें सत्य में श्रद्धा को और (अनृत) अर्थात् असत्य में अश्रद्धा को रखा। अतः वेद के अनुसार हमे केवल सत्य मे श्रद्धा रखनी चाहिए, असत्य मे नही। अस्तु यह आवश्यक है कि यजुर्वेद जो हमारी श्रद्धा का श्रेष्ठतम केन्द्र बिन्दु है, से जन जीवन पर विनाशकारी प्रभाव डालने वाले, सर्वथा असत्य एवं अनुचित, अधर्म तथा पाप को प्रोत्साहित करने वाले, मिलावटी मन्त्रों को **व्यापक जनहित में हटा दिया जाय** ताकि लगभग 2500 सौ वर्षों से चली आ रही गन्दगी से मुक्ति दिलाकर शुक्ल यजुर्वेद को वास्तव मे विशुद्ध, शुक्ल एवं पवित्र अपौरुषेय रूप मे प्रस्तुत किया जा सके।

इन मिलावटी मन्त्रों का विनाशकारी प्रभाव अन्य शास्त्रों पर भी दिखाई देता है। इसका एक उदाहरण पारस्कर गृह्य सूत्र से दिया जा चुका है, जिसमें यजुर्वेद के मन्त्र संख्या 35/20 को

पढकर गाय की चर्बी (वपा) से हवन करने का निर्देश दिया गया है।

इसी पारस्कर गृह्य सूत्र के तृतीय काण्ड की अष्टमी कण्डिका में स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा से शूलगव नामक विशेष यज्ञ का उल्लेख किया गया है, जिसमे गाय तथा बकरे को काटकर उनकी वपा अर्थात् चर्बी और माँस पिण्डो से रुद्र के लिये होम करने का विधान किया गया है और इसे गो यज्ञ का नाम दिया गया है।

इसकी दशमी कण्डिका में मृत्यु के पश्चात् 11वें दिन **ब्राह्मणों** को गो माँस का भोजन कराने का उल्लेख किया गया है और ग्यारवीं कण्डिका मे पशुवध का तरीका बताया गया है।

इस गृह्यसूत्र के कात्यायन कृत परिशिष्ट के श्राद्धसूत्र में अनेक पशु पक्षिया के साथ साथ सुअरों का माँस भी ब्राह्मणों को खिलाने का उल्लेख किया गया है और भोजन सूत्र मे दैनिक भोजन में माँस खाने का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

इसी प्रकार जिस शतपथ ब्राह्मण के 3/9/2/1 कहा गया है, **'अध्वरो वै यज्ञः'** अर्थात् यज्ञ हिंसा से रहित होता है और 1/1/1/1/मे कहा गया है, **'अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति,** अर्थात् असत्य बोलने वाला पुरुष अपवित्र होता है, यज्ञ करने के योग्य नहीं होता, उसी शतपथ मे आगे चलकर गाय, बैल, भेड़, बकरा आदि के वध करने और उनके मेद माँस तथा

मदिरा से आहुति देने तथा उनका भक्षण करने का निर्लज्जता पूर्ण उल्लेख है।

ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोगों के लिए सत्य और असत्य मे कोई अन्तर ही नहीं रह गया है और गत लगभग 2500 वर्षों से हमारा समाज पतन की निम्नतम सीमा तक गिर चुका है, जब कि वेद में कहा गया है–

सत्यं बृहद्दृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु।।

अथर्ववेद 12/1

यह पृथिवी बृहत् एवं उग्र सत्य, ऋत् अर्थात् भगवान के कठोर अटल नियमों पर आधारित है और हमारा समाज पूर्ण सत्य, दीक्षा, तप, ज्ञान, तथा ब्रह्म यज्ञ पर आधारित है।

इसी मन्त्र के आधार पर कहा गया है–

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः।

सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।।

चाणक्य नीति 5/19

सत्य के द्वारा ही पृथ्वी को धारण किया गया है, सत्य से ही सूर्य तपता है, सत्य से ही वायु चलती है, सब कुछ सत्य में ही प्रतिष्ठित है। भगवान के सत्य एवं अपरिवर्तनीय नियमों से ही प्रकृति की सारी क्रियायें चलती हैं।

वास्तविकता यह है कि इन निकृष्ट मिलावटी 75 मन्त्रों तथा ब्राह्मण भाग के 87 मन्त्रों (कुल 162 मन्त्रों) को छोड़कर शेष शुक्ल यजुर्वेद संहिता ज्ञान एवं पवित्रता से भरी हुयी है।

ब्राह्मण भाग के मन्त्र

जिस पुस्तक में मन्त्रों के अर्थ बताये जाते हैं अथवा उनका विनयोग बताया जाता है, उसे ब्राह्मण ग्रन्थ कहते हैं। उदाहरणार्थ, यजुर्वेद के पहले मन्त्र में कहा गया है कि सविता देव तुम्हें श्रेष्ठतम कर्म करने की प्रेरणा दें किन्तु यह नहीं बताया गया कि श्रेष्ठतम कर्म क्या है। इस लिये मन्त्र का अर्थ स्पष्ट करते हुये शतपथ ब्राह्मण जो कि यजुर्वेद का ब्राह्मण है, में बताया गया है कि, यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म, यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है।

मन्त्रों का प्रयोग जहाँ किया जाना चाहिये, उसे विनियोग कहते हैं। उदाहरणार्थ गायत्री मन्त्र के लिये कहा गया है **'जपे विनियोगः'** अर्थात् गायत्री मन्त्र का प्रयोग मुख्य रूप से जप में किया जाना चाहिये।

वेद मन्त्र वेद संहिता में होते है और ब्राह्मण भाग के मन्त्र ब्राह्मण में होते हैं किन्तु यजुर्वेद की सर्वानुक्रमणी के अनुसार ब्राह्मण भाग के सतासी मन्त्र शुक्ल यजुर्वेद की संहिता में शामिल है, जिन्हे संहिता में नही होना चाहिए।

इन मन्त्रो में उस समय के लोगों के व्यवसाय जैसे रथकार, हिरण्यकार, मणिकार, आदि और पशु जैसे सिंह, गर्दभ, सूकर, आदि तथा पक्षियों जैसे तोता, मोर, कपोत, ऊलूक, और जलचर, जैसे मकर, मेंढक, मछली, आदि का उल्लेख है। इस लिए इन मन्त्रो को विद्यार्थियों द्वारा कंण्ठस्थ किये जाने का कोई औचित्य नहीं है।

अतः इन मन्त्रों को संहिता से हटा कर संहिता के अन्त में परिशिष्ट के रुप में रखा जाना चाहिए जैसे कि ऋग्वेद में खिल सूक्तों को परिशिष्ट में रखा गया है।

केवल मूर्खता, क्रूरता, हिंसा, दुराचार आदि आसुरी प्रवृत्तिओं की वृद्धि करने वाले और सभी दैवी गुणों को नष्ट करके समाज को पतन की ओर ले जाने वाले सत्य एवं वैदिक धर्म के विरुद्ध, वेदों को कलंकित करने वाले इन 75 मिलावटी मन्त्रों को हटाया जनहित में आवश्यक है।

अस्तु यह विनम्र प्रार्थना है कि इस महत्वपूर्ण विषय का ऐतिहासिक निर्णय सात्विक बुद्धि, तथा विवेक पूर्ण तर्क के आधार पर व्यापक जनहित में किया जाय, यथास्थिति बनाये रखे जाने वाले पूर्वाग्रह से युक्त पुरातन विचारों के आधार पर नहीं।

अन्त में अपनी आयु के 94वें वर्ष में सभी सज्जनों विशेष रूप से युवा वर्ग से मेरी यह प्रार्थना है कि अथक प्रयास एवं संघर्ष करके शुक्ल यजुर्वेद को पवित्र तथा अपौरुषेय रूप में प्रस्तुत करने का अक्षय पुण्य अर्जित करें।

कुछ भ्रामक वाक्य

कतिपय वाक्य जिन्हें महावाक्य कहा जाता है और जिन्हें कुछ लोग वेद वाक्य समझते है, वास्तव में वेद वाक्य नहीं है और भ्रामक है।

1 अहं ब्रह्मास्मि – मैं ब्रह्म हूँ। यह वाक्य शतपथ ब्राह्मण के काण्ड 14, अध्याय 4, ब्राह्मण 2 , कण्डिका 21 में आया है। इस काण्ड को बृहदारण्यक उपनिषद् भी कहा जाता है

कण्डिका 21 में लिखा है, 'ब्रह्म वाऽइदमग्रऽआसीत् । तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीति ।। पहले ब्रह्म ही था, उसने जाना कि मै ब्रह्म हूँ ।

स्पष्ट है कि स्वयं ब्रह्म ने कहा कि मै ब्रह्म हूँ किसी मनुष्य ने नहीं कहा। कोई मनुष्य ब्रह्म नहीं हां सकता और न किसी मनुष्य ने कहा कि मै ब्रह्म हूँ।

इसी कण्डिका में आगे कहा गया हैतस्मात्तत्सर्वमभवत्तद्यो यो देवानां प्रत्यवुध्यत स एव तद्भवत्तथऽर्षीणां तथा मनुष्याणां
उससे यह सब कुछ हो गया।देवो में जिस जिसको उसका बोध हो गया अर्थात् जिसने ब्रह्म को जान लिया वह वैसा ही हो गया। वैसा ही ऋषियों में वैसा ही मनष्यों में।

सारी गड़बड़ कण्डिका 22 से हुई है, जिसमें कहा गया है कि ऋषि वामदेव ने प्रतिपादित किया कि जो मनुष्य यह समझता है कि मैं ब्रह्म हूँ **वह** सब कुछ हो जाता है और देव उसके पराभव में समर्थ नहीं होते। यह कथन पूर्ण रूप से असत्य है।

पूरी बात समझने के लिए निम्नांकित मन्त्र देखें –

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन् वशे।।

यजु 31। 21

आत्मा के लिये रुचि पूर्ण, प्रिय लगने वाले, आत्मा को ज्ञान का प्रकाश देने वाले (ब्राह्मं) ब्रह्म ज्ञान को जानने वाले (देवाः) ज्ञानियों ने, विद्वानों ने प्रारम्भ में यह कहा था कि (यः ब्राह्मणः

तु एव विद्यात्) जो ब्राह्मण उस ब्रह्म ज्ञान को भलीभांति जानता है, समस्त देव,अर्थात् दैवी शक्तियाँ उसके वश में रहती है।
मुण्कोपनिषद् में कहा है ' स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति ' जो उस परब्रह्म को जान लेता है वह ब्रह्म ही हो जाता है।

स्पष्ट है हर कोई 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने से ब्रह्म नहीं हो सकता।

इसके लिये ब्रह्म ज्ञान और ब्रह्म को जानने की आवश्यकता होती है।

2. अयं आत्मा ब्रह्म – यह आत्मा ब्रह्म है, यह सबको देखता है, यही शास्त्र का अनुशासन है। यह वाक्य भी किसी वेद का नहीं है बल्कि शतपथ ब्राह्मण 14/5/5/19 का है।

इसका अर्थ समझने के लिये कण्डिका 14 को देखिये जिस में कहा गया है ' यह आत्मा सब भूतों का मधु है।

इस आत्मा के सब भूत मधु है। यह जो इस आत्मा में तेजोमय अमृतमय पुरुष है और यह जो आत्मा तेजोमय अमृत मय पुरुष है, यह वही आत्मा है यह अमृत है, यह ब्रह्म है, यही सब कुछ है।

इसका अर्थ केवल यह है कि जीवात्मा परमात्मा का अंश है, उसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है, जैसा कि वेद में कहा गया है–

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्येपुरुषः सोऽसावहम्।।

यजुर्वेद 40।17

सत्य का मुख सोने के पात्र से ढंका हुआ है। जो वह आदित्य में पुरुष अर्थात् परमात्मा है, वही प्राणों में रहने वाला मैं जीवात्मा हूँ।

स्पष्ट है कि जीवात्मा परमात्मा का अंश है, परमात्मा नहीं है। इसी आधार पर गीता में कहा गया है– **'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'** ।

शरीर में जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है।

इसी के अनुसार तुलसीदास जी ने लिखा है **'ईश्वर अंश जीव अविनाशी '**

अविनाशी जीवात्मा ईश्वर का अंश है।

जीवात्मा परमात्मा नहीं है, यह तथ्य वेद के निम्नाकिंत मन्त्रों से स्पष्ट हो जाता है –

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाति रोहति।।

यजुर्वेद 31। 2

भूत, भविष्य तथा वर्तमान में जो कुछ भी था, जो कुछ भी है, और जो कुछ भी होगा वह सब ब्रह्म ही है। वह उस अमृत तत्व अर्थात् जीवात्मा का भी ईश्वर है जो अन्न के साथ शरीर में रहता है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया,
समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य-,
नश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥

अथर्व. ९।९।२०, ऋग्. १।१६४।२०

(द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया) एक साथ रहने वाले तथा उत्तम पंखों वाले दो मित्र पक्षी (आत्मा एवं परमात्मा) (समानं वृक्षं परिषस्वजाते) एक ही संसार रूपी अथवा शरीर रूपी वृक्ष पर मिलकर रहते हैं, (तयो अन्यः) उन दोनों में से एक (जीवात्मा) वृक्ष के पके हुये फलों को स्वाद लेकर खाता है, संसार के ऐश्वर्य का उपभोग करता है तथा (अन्यः अनश्नन्) दूसरा (परमात्मा) न खाता हुआ (अभिचाकशीति) भली प्रकार सब देखता है।

परीत्यं भूतानिं परीत्यं लोकान्,
परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च।
उपस्थायं प्रथमजामृतस्या-,
त्मनाऽत्मानंमभि संविवेश।।

यजु. ३२।११

(परीत्य भूतानि) ज्ञानी भक्त उपासना द्वारा समस्त प्राणियों, (परीत्य लोकान्) लोक लोकान्तरों में व्याप्त (परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च) तथा समस्त दिशाओं एवं प्रदिशाओं में व्याप्त, (ऋतस्य प्रथमजा उपस्थाय) सत्य नियमों के प्रथम एवं श्रेष्ठ प्रवर्तक (आत्मना आत्मानं अभि संविवेश) परमात्मा में अपने आत्मा द्वारा प्रविष्ट हो जाता है। मोक्ष के समय उपासक का आत्मा परमात्मा में प्रवेश कर जाता है।

आत्मा, परमात्मा का अंश होते हुये भी परमात्मा से अलग है इसी लिये परमात्मा को प्राप्त करने के लिये जीवात्मा को अथक कठोर प्रयास करने पड़ते हैं।

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत्।।

श्वेताश्वतर उपनिषद् 1।14

अपने शरीर को नीचे की अरणि बनाकर और प्रणव को ऊपर की अरणि बनाकर ध्यान रूपी मंथंन के अभ्यास से शरीर में

स्थित परमात्मा का दर्शन उसी प्रकार करने का प्रयास करे जिस प्रकार अरणियों क मंथंन से अग्नि प्रकट किया जाता है।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।

अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।

मुण्डकोपनिषद् 2। 2। 4

प्रणव अर्थात् ओम् धनुष के समान है और जीवात्मा वाण के समान है। इस धनुष के द्वारा बिना आलस्य के निरन्तर प्रयास करके आत्मा रूपी वाण को ब्रह्म रूपी लक्ष्य में प्रवेश कराना चाहिये अर्थात् ओम् के जप से ब्रह्म को प्राप्त करना चाहिये।

3. नेति नेति – यह नहीं है, यह नहीं है। यह भी वेद वाक्य नहीं है बल्कि शतपथ ब्राह्मण के 14/5/3/11 का कथन है। इसमें कहा गया है कि 'ब्रह्म के विषय में नेति नेति का आदेश है, इससे परे कोई नहीं है, यह सत्य का भी सत्य है। प्राण ही सत्य है यह पुरुष उन प्राणों का भी सत्य है।

तैत्तिरीय उपनिषद् वल्ली 2 अनुवाक् 4 में कहा गया है –

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचनेति।।

जहाँ मन के सहित वाणी उसे न पाकर लौट आती है, उस ब्रह्मानन्द को जानने वाला पुरुष कभी भय को प्राप्त नहीं होता।

तात्पर्य यह है कि मन वाणी सहित काई भी इन्द्रिय ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को नहीं जान सकती और न उसका सही वर्णन कर सकती है।

शतपथ ब्राह्मण 14। 6 ।7 ।21 से 31 में कहा है जो प्राणों में रहकर प्राण से भिन्न है, प्राण जिसका शरीर है, जो सब आत्मा

के अन्दर शासन करता है, वही अमृत आत्मा अन्तर्यामी है। इसी प्रकार जो वाणी में स्थित होकर (22) जो आँख में स्थित होकर (23), जो कान में स्थित होकर (24), जो मन में स्थित होकर (25) जो त्वचा में स्थित होकर (26), जो तेज में स्थित होकर(27), जो अन्धकार म स्थित होकर(28), जो रेत (वीर्य) में स्थित होकर (29) जो आत्मा में स्थित होकर आत्मा से इतर है, **आत्मा जिसको नहीं जानता,** आत्मा जिसका शरीर है, जो सब आत्मा के अन्दर भी शासन करता है, वही अमृत आत्मा अन्तर्यामी है।

वह देखा नहीं जाता परन्तु देखने वाला है, सुना नहीं जाता परन्तु सुनने वाला है, विचारा नहीं जाता, परन्तु विचारने वाला है। कोई दूसरा दृष्टा नहीं कोई दूसरा श्रोता नहीं, कोई दूसरा मनन करने वाला नहीं, कोई दूसरा जानने वाला नहीं ! वही तेरा अमृत आत्मा अन्तर्यामी है। इससे भिन्न जो कुछ भी है वह दुखमय ह। इसे सुनकर आरूणि – उद्दालक चुप हो गये।

तात्पर्य यह है कि आनन्द स्वरूप , अनन्त, सर्वव्यापक परमात्मा को कोई पूर्ण रूप से जान नहीं सकता। इसी लिये उसका वर्णन नेति–नेति कह कर किया जाता है।

4. तत्वमसि – वही तुम हो। यह भी वेद वाक्य नहीं है। इसका उल्लेख शिव पुराण में है। छान्दोग्य उपनिषद् के प्रपाठक 6 खण्ड 8 प्रवाक् 7 में में यह निम्न प्रकार आया है,

ऐतदात्म्यमिद ꣳ सर्व तत्सत्य ꣳ स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो!

यह सम्पूर्ण जगत् वह परमात्मा ही है, वही सत्य है, हे श्वेत केतो! वही आत्मा तुम हो।

इस कथन में आत्मा शब्द दो बार आया है। पहले आत्मा शब्द का तात्पर्य परमात्मा से है और दूसरे आत्मा का तात्पर्य जीवात्मा से है। परमात्मा और जीवात्मा में पिता पुत्र का तथा परस्पर सखा होने का सम्बन्ध है, इसीलिये अनेक मन्त्रों में परमात्मा का परोक्ष रूप से वर्णन करने के लिये आत्मा शब्द का प्रयोग किया जाता है क्योंकि परमात्मा के समस्त कार्य परोक्ष रूप से होते हैं, परमात्मा सामने आकर कोई कार्य नहीं करता। उदाहरणार्थ – दुःशासन जब सब के सामने द्रोपदी की साड़ी सभा में खींच रहा था तब कृष्ण जी ने सामने आकर द्रोपदी की रक्षा नहीं की बल्कि परोक्ष रूप से साड़ी को बढ़ाते चले गये जब तक कि दुःशासन थक कर गिर नहीं पड़ा।

शतपथ ब्राह्मण 14। 6। 11। 2। में कहा है **'परोक्षऽप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षदिषः'** देव परोक्ष प्रिय होते है प्रत्यक्ष से इनको द्वेष होता है इसीलिये कोई देवता सामने नहीं आता सभी देवता परोक्ष रूप से अपना काम करते हैं। सोचिए कि अगर भगवान सामने आ जायँ तो क्या होगा ?

इसीलिये दैवी शक्तियाँ परोक्ष रूप से कार्य करती हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि कहीं –कहीं मन्त्रों में आत्मा के स्थान पर परमात्मा का उल्लेख किया गया है जैसे –

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्तिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।।

यजुर्वेद 31। 19

जिस प्रजापति अर्थात् परमात्मा में समस्त लोक स्थित रहते हैं और जो कभी जन्म न लेने वाला है, वही गर्भ के अन्दर आकर अनेक प्रकार से जन्म लेता है। उसके वास्तविक स्वरूप को ज्ञानी जन ही देख पाते हैं, सभी लोक उसी में स्थित हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि तत्व मसि का भी अर्थ है कि जीवात्मा परमात्मा का ही अंश है परमात्मा नहीं है।

5. शिवोऽहं – मैं शिव हूँ– यह एक तान्त्रिक श्लोक का भाग हैं और पूर्ण रूप से असत्य एवं मूर्खता पूर्ण है। कोई व्यक्ति शिव अथवा भगवान् नहीं हो सकता।

6. सोऽहं – वही मैं हूँ अर्थात् मैं परमात्मा हूँ – इसके वास्तविक अर्थ के लिये अहम् ब्रह्मास्मि के सम्बन्ध में यजुर्वेद 40। 17 का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

7. प्रकृति अनादि है।

स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में अष्टम समुल्लास में यह लिखा है कि 'जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप है और तीनों अनादि है। उन्होंने अपने मत की पुष्टि में श्वेता–उप का श्लोक 'अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां'का उल्लेख किया है किन्तु वेद विरुद्ध होने के कारण यह कथन मान्य नहीं है।

किसी भी वेद मन्त्र में इस प्रकार की बात नहीं कही गयी है बल्कि इसके विपरीत यजुर्वेद 31। 2 में स्पष्ट रूप से कहा गया है **'पुरुष एवेदꣳसर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्'**। इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी था, जो कुछ भी है और जो कुछ भी होगा, वह सब पुरुष ही है ब्रह्म ही है किन्तु स्वामी दयानन्द जी ने जानबूझ कर इसका यह गलत अर्थ लिख दिया कि परमात्मा ने ही सारे संसार की रचना की है।

पुरुष सूक्त में ही आगे कहा गया है–

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।

ऋग्. १०।९०।५ (पाठभेद), यजु. ३१।५

(ततो विराडजायत) उस परमात्मा से विशेष रूप से देदीप्यमान प्रकृति उत्पन्न हुयी तथा (विराजो अधि पूरुषः) प्रकृति के ऊपर अधिष्ठाता पुरुष हुआ। (स जातो अत्यरिच्यत) वह प्रकृति उत्पन्न होकर अनेक रूपों में विभक्त होने लगी, (पश्चाद् भूमिम् अथो पुरः) जिससे पृथिवी, सूर्यादि ग्रह तथा समस्त ब्रह्माण्ड पूर्व कल्प की भाँति उत्पन्न हुये।

यहाँ विराज् का अर्थ प्रकृति है।

अथर्व 8 । 9। 2 में प्रकृति को स्पष्ट रूप से **'कामदुघो विराजः'** कामना की पूर्ति करने वाली विराज् रूपी कामधेनु कहा गया है।

अन्य वेद मन्त्रों तथा उपनिषद् वाक्यों में भी प्रकृति को परमात्मा द्वारा उत्पन्न किया गया बताया गया है जिनमें कुछ निम्नाकिंत हैं।

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम्।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः।।

अथर्व. ११।७।२

उच्छिष्ट ब्रह्म में द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी तथा समस्त प्राणी एवं पदार्थ समाहित हैं, सम्यक् रूप से स्थित हैं, उच्छिष्ट में जल, समुद्र, चन्द्रमा तथा वायु स्थित है।

गीता में भी जहाँ भगवान ने अपनी अष्टधा प्रकृति का उल्लेख किया है वहाँ प्रकृति को अनादि नहीं कहा गया है, केवल जीवात्मा को ही अविनाशी कहा गया है

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।

खं वायुज्जोतिरापः पृथिवि विश्वस्य धारिणीं।।

मुण्डक उप 2। 1। 3

इसी ब्रह्म से प्राण, मन, समस्त इन्द्रियाँ तथा आकाश, वायु, अग्नि एवं समस्त विश्व को धारण करने वाली पृथिवी उत्पन्न हुयी है।

बृहन्तो नाम ते देवा येऽसातः परि जज्ञिरे।

एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः।।

अथर्व 10। 7। 25

सूर्य, चन्द्र आदि महान देव जिस असत् अर्थात् कारण प्रकृति से उत्पन्न हुये हैं, वह असत् प्रकृति सर्वाधार ब्रह्म का एक अंग है।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मयिनं तु महेश्वरम्।

तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।।

श्वेता उप 4। 10

प्रकृति को माया जानना चाहिये और महेश्वर को मायावी, उसी की अवयव भूत प्रकृति रूपी माया से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है।

द्यावाभूमी जनयन्देव एकः। यजु 17। 19 , ऋग् 10। 81। 3

द्युलोक तथा पृथिवी आदि को उत्पन्न करने वाला देव अर्थात् परमात्मा एक ही है।

परोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रकृति न तो अनादि है और न उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता है।

कतिपय असत्य बातें

वैदिक धर्म पूर्ण रूपेण सत्य, सदाचार, पराक्रम, ऐश्वर्य, ब्रह्मज्ञान, उपासना एवं यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्मों पर आधारित है। इसमे असत्य और दुराचार का कोई स्थान नही है। सत्य पर आधारित होने के कारण इसका पालन करना अत्यन्त कठिन है, अतएव सामाजिक पतन प्रारम्भ होने के समय सबसे पहले सत्य पर प्रहार हुआ और असत्य बातें लिखना और उन पर अंधविश्वास करना प्रारम्भ हो गया, जिसके कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं।

1. **गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।**

गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

बड़े बडे विद्वान् इस असत्य तथा मूर्खता पूर्ण 'श्लोक को गर्व के साथ सुनाते हैं जबकि किसी भी आर्ष ग्रन्थ में इस प्रकार की बात नही लिखी गयी है। भला कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितना भी श्रेष्ठ क्यों न हो ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा परब्रह्म कैसे हो सकता है ?

तैत्तिरीय उपनिषद् में **आचार्य देवो भव** कहा गया है अर्थात् आचार्य को देवता के समान मानो, उसे भगवान नही कहा गया है। इसी प्रकरण में स्वयं आचार्य ने शिष्य से यह कहा है, कि केवल मेरी अच्छी बातों को स्वीकार करना बुरी बातों को नही क्योंकि कोई व्यक्ति बुराइयों से पूर्ण रूपेण मुक्त नही हो सकता, उसके भगवान बनने का तो कोई प्रश्न ही नही है।

2 **वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्धा व्यभजत्प्रभुः** —— विष्णुपुराण तृतीय अंश अध्याय 4/2

कृष्णद्वैपायन व्यास जी ने चतुष्पाद युक्त एक ही वेद के चार भाग किये।

जब निम्नाकिंत वेद मन्त्र मे ही चारों वेदों के नाम अलग–अलग दिये हुये है और यह लिखा है कि यह चारों वेद भगवान से उत्पन्न हुये है, तब यह कैसे कहा जा सकता है कि व्यास जी ने एक चतुष्पाद वेद के चार भाग करके अलग–अलग वेद बनाये। यह महत्वपूर्ण है कि किसी भी वेद मन्त्र में वेद के चतुष्पाद होने का उल्लेख नहीं है। अतः यह कथन स्पष्ट रूप से असत्य है।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दाꣳसि जज्ञिरेतस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।

यजु 31। 7

उस पूजनीय परमात्मा से ऋग्वेद तथा सामवेद के मन्त्र उत्पन्न हुये, अथर्ववेद के मन्त्र उससे उत्पन्न हुये तथा यजुर्वेद के मन्त्र भी उसी से उत्पन्न हुये। जब चारों वेदों के मन्त्र परमात्मा से अलग अलग उपन्न हुये तब उनके विभाजन का प्रश्न ही कहा उठता है। यह भी उल्लेखनीय है कि लगभग 90 मन्त्रों को छोड़कर सामवेद के सभी मन्त्र ऋग्वेद के ही हैं।

'या ऋक्तत्साम' छान्दोग्योपनिषद् 1/3/4
जो ऋग है वही साम है।

गीतिषु सामाख्या। जैमिनि सूत्र 2/1/36 जो मन्त्र गाकर पढे जाते हैं, वह साम कहलाते हैं।

इस समय भी अनेक मन्त्र ऐसे हैं जो चारों वेदों में हैं तथा बहुत से तीन वेदों अथवा दो वेदों में हैं।

वास्तविकता यह है कि मनुष्य जीवन से सम्बन्धित ज्ञान चारों वेदों में बिखरा हुआ है, उसे आवश्यकतानुसार वेदो से छाँटना पड़ता है।

3 **व्यास जी ने ही 18 पुराण लिखे हैं।** यह कथन भी सत्य नही है। भिन्न भिन्न पुराणों में एक दूसरे से सर्वथा विपरीत तथा अनेक असत्य एवं अश्लील बातें लिखी हुयी हैं, जिनके कुछ उदाहरण आगे दिये जा रहे हैं। यह असंभव है कि महर्षि व्यास जी सरोखे विद्वान् जिनको ब्रह्मा का मानस पुत्र माना जाता है ,जिनके शिष्य के शिष्य महर्षि याज्ञवल्क्य थे और

जिन्होंनें गीता सहित महाभारत तथा वेदान्त दर्शन की रचना, की है, ऐसी परस्पर विरोधी तथा अश्लील बातें पुराणों में लिखते।

1 विष्णु पुराण अंश पाँच अध्याय एक में लिखा है कि विष्णु जी ने अपनी महामाया से कहा कि तुम दुर्गा बनकर शुम्भ निशुम्भ आदि सहस्रों दैत्यों का संहार करके पृथिवी को सुशोभित करोगी और लोगों के द्वारा **मदिरा और माँस की भेंट चढ़ाने से प्रसन्न होकर तुम उनकी सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करोगी।**

2 विष्णु पुराण अंश पाँच, अध्याय 25 में लिखा है कि बलराम जी को गोप गोपियों के साथ वन मे विचरते हुये देखकर वरुण ने वारुणी अर्थात् मदिरा से कहा की तुम बलराम जी को सर्वथा प्रिय हो अतः उनके उपभोग और प्रसन्नता के लिये जाओ । वरुण की आज्ञा पाकर वारुणी वृन्दावन में उत्पन्न हुये कदन्ब वृक्ष के कोटर में रहने लगी। जैसे ही बलदेव जी को मदिरा की उत्तम गन्ध सूँघने से उसे पीने की इच्छा हूई, वैसे ही कदम्ब से मदिरा की धारा गिरती देखकर वह बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने गोप गोपियों के साथ मधुर स्वर से गाते हुये प्रसन्नता पूर्वक मद्य पान किया। उसके बाद मदोन्मत्त बलराम जी ने यमुना से कहा तुम यहाँ आ जाओ मै स्नान करना चाहता हूँ। जब उनके वाक्य को उन्मत्त प्रलाप समझ कर यमुना ने कोई ध्यान नहीं दिया तब क्राधित होकर उन्होंने अपने हल की नोंक से यमुना को पापिन कहकर खींच लिया और तब यमुना ने अपना मार्ग छोड़ दिया और जिस वन में बलराम जी खड़े थे उसे आप्लावित कर दिया।

3 षष्ठ अंश अध्याय तीन में लिखा है कि इस अत्यन्त दुष्ट कलियुग में यही एक महान गुण है कि इस युग में केवल कृष्णचन्द्र का नाम संकीर्तन करने से ही मनुष्य परम पद को प्राप्त कर लेता है।

श्रीमद्भागवत

चीरहरण

मार्गशीर्ष में एक दिन व्रज की कुमारियों ने प्रतिदिन की भाँति यमुना जी के तट पर जाकर अपने–अपने वस्त्र उतार दिये और श्रीकृष्ण के गुणों का गान करती हुई आनन्द से जलक्रीड़ा करने लगीं। श्रीकृष्ण ने अकेली ही उन गोपियों के सारे वस्त्र उठा लिये और एक कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गये, और साथी ग्वाल बाल ठठा ठठाकर हँसने लगे। श्रीकृष्ण ने स्वयं भी हँसते हुये कहा कि अर कुमारियों! इच्छा हो तो यहाँ आकर अपने अपने वस्त्र ले जाओ।

भगवान् की हँसी सुनकर गोपियाँ मुस्कराने लगीं लेकिन जल से बाहर नही निकलीं। वे ठंडे पानी में कण्ठ तक डूबी हुयी थीं और उनका शरीर ठंड से काँप रहा थ। उन्होंने ने कहा प्यारे श्याम सुन्दर हमारे वस्त्र दे दो हम तुम्हारी दासी हैं जो तुम कहोगे हम करने को तैयार हैं ।

श्रीकृष्ण ने कहा जब तुम मेरी दासी होना स्वीकार करती हो तो मेरी आज्ञा का पालन करो और यहाँ आकर अपने अपने वस्त्र ले जाओ। यह सुनकर वे अपने दोनों हाथों से अपने गुप्त अंगों को छिपाकर यमुना से बाहर निकलीं। इस पर भगवान बहुत प्रसन्न हुये और कहा हे कुमारियो! अब तुम अपने अपने घर

लौट जाओ तुम्हारी साधना सिद्ध हो गयी है। तुम आने वाली शरद ऋतु की रात्रियों में मेरे साथ विहार करोगी।

महारास

भगवान श्रीकृष्ण की प्रेयसी गोपियाँ एक दूसरे के बाँह में बाँह डाले खड़ी थीं। भगवान् ने अपनी रसमयी रास कीड़ा प्रारम्भ की। वह दो दो गोपियों के बीच में प्रकट हो गये और उनके गले में अपना हाथ डाल दिया। सभी गोपियाँ अपने प्रियतम के साथ नृत्य करने लगीं। असंख्य गोपियाँ थीं, वे तरह तरह से ठुमक ठुमक कर नृत्य करने लगीं। उनके स्तन हिल रहे थे तथा वस्त्र उड़े जा रहे थे, नीवी की गाँठे खुली जा रही थीं। श्रीकृष्ण का संस्पर्श पा पाकर और भी आनन्द मंग्न हो रही थीं। एक गोपी ने अपने कपोलों को श्रीकृष्ण के कपोल से सटा दिया और भगवान् ने उसके मुँह में अपना चबाया हुआ पान दे दिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके गलों को अपने भुज पाठ मे बाँध रखा था। श्रीकृष्ण कभी उन्हें अपने हृदय से लगा लेते कभी हाथ से उनका अंग स्पर्श करते कभी प्रेम भरी तिरछी चितवन से उनकी ओर देखते और कभी उन्मुक्त हँसी हँसने लगते। भगवान के अंगो का संस्पर्श प्राप्त करके गोपियाँ आनन्द से विह्वल हो गयीं उनके गहने अस्त व्यस्त हो गये। वे अपने केश वस्त्र और कंचुकी को भी पूर्णतया संभालने में असमर्थ हो गयीं। इसके बाद लोक और वेद की मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले भगवान ने अपनी थकान दूर करने के लिये गोपियों के साथ जलक्रीड़ा करने के उद्देश्य से यमुना के जल में प्रवेश किया। उस समय भगवान् की वनमाला गोपियों की अंग की

रगड़ से कुछ कुचल सी गयी थी और उनके वक्षस्थल की केसर से वह रंग भी गयी थी। जल विहार के बाद श्रीकृष्ण व्रज की युवतियों की भीड़ से घिरे हुये यमुना तट के उपवन में गये और गोपियों के साथ विहार किया।

शिव जी का संकट मोचन

नारद जी के उपदेश से वृकासुर केदार क्षेत्र में गया और अग्नि को भगवान शंकर का मुख मानकर अपने शरीर का माँस काट काट कर उसमें हवन करने लगा किन्तु छः दिन बीत जाने के बाद उसे शंकर जी के दर्शन नहीं हुये। सातवें दिन उसने स्नान करके अपने भीगे बाल वाले मस्तक को कुल्हाड़े से काटकर हवन करना चाहा। तभी शंकर जी ने हवन कुण्ड से प्रकट होकर उसके दोनों हाथ पकड़ लिये। उनके स्पर्श मात्र से ही वृकासुर के सभी अंग पूर्व वत हो गये। तब दुष्ट वृकासुर ने उनसे यह वर माँगा कि वह जिसके सिर पर हाथ रख दे वह भस्म हो जाय शिव जी द्वारा एवमस्तु कहने पर वह शिव जी के सिर पर ही हाथ रखने का प्रयास करने लगा। तब शिव जी भयभीत होकर काँपते हुये सब ओर भागने लगे किन्तु कोई देवता उनकी सहायता नहीं कर सका। अन्त में वह वैकण्ठ लोक में गये जहाँ विष्णु जी उन्हें बचाने के लिये ब्रह्मचारी बनकर धीरे धीरे वृकासुर की ओर गये ओर उससे कहा की आप बहुत थके हुये जान पड़ते हैं, थोड़ा विश्राम कर लीजिये। भगवान् की मधुर वाणी से प्रभावित होकर वह थोड़ी देर रुका और फिर शंकर जी के वरदान और उनके पीछे दौड़ने का कारण बताया।

इस पर भगवान् ने कहा हम तो उसकी बात पर विश्वास नही करते, वह तो दक्ष प्रजापति के शाप से पिशाच भाव को

प्राप्त हो गया है।दानव राज! आप इतने बड़े होकर ऐसी छोटी छोटी बातों पर विश्वास कर लेते हैं। यदि आप अब भी उसकी बात पर विश्वास करतें हों तो झटपट अपने सिर पर हाथ रखकर परीक्षा कर लीजिये और यदि उसकी बात असत्य निकले तो उसे मार डालिये। ताकि वह फिर झूठ न बोल सके। भगवान् की ऐसी मोहित करने वाली मीठी बात सुनकर उसकी विवेक बुद्धि जाती रही और उसने अपने सिर पर हाथ रख लिया जिससे उसका सिर फट गया और वह उसी समय धरती पर गिर पड़ा।

शिव जी का अपमान करने के लिये कैसी असत्य कहानी बनायी गयी है यह। इससे भी अधिक असत्य और शिव जी का अपमान करने वाली कहानी है समुद्र मंथन की।

समुद्र मन्थन

भगवान् विष्णु ने कहा ब्रह्मा, शंकर और देवताओ ! इस समय असुरों पर काल की कृपा है इस लिये तुम दैत्य और दानवों के पास जाकर उनसे सन्धि कर लो। जब कोई बड़ा काम करना हो तो शत्रुओं से भी मेल मिलाप कर लेना चाहिये, जब काम निकल जाय तब उनसे साँप और चूहे वाला व्यवहार कर सकते हैं। तुम लोग मन्दराचल की मथानी और वासुकि नाग की नेती बनाकर मेरी सहायता से समुद्र का मंथन करो। तुम लोग विश्वास रखो कि दैत्यों को केवल श्रम और क्लेश मिलेगा और फल तुम्हीं लोगो को मिलेगा ।असुर लोग तुम से जो जो चाहें सब स्वीकार कर लेना। यह आदेश देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। ब्रह्मा और शंकर ने फिर से भगवान् को नमस्कार किया और अपने अपने लोकों को चले गये। देवताओं ने राजा बलि के पास जाकर उनको अमृत मन्थन के लिये राजी

कर लिया। तब देवताओं और दैत्यों ने मिलकर मन्दराचल पर्वत को उखाड़ लिया और उसे समुद्र की ओर ले चले। किन्तु सोने का पर्वत मन्दराचल बहुत भारी था इस लिये उन्होंने उसे मार्ग में पटक दिया। गिरते समय उससे बहुत से देवता और दानव दब कर चकनाचूर हो गये। तब गरुड़ पर चढ़े हुये भगवान् विष्णु सहसा प्रकट हो गये, उन्होंने सब को जीवित कर दिया तथा खेल खेल में ही उस पर्वत को एक हाथ से उठाकर गरुड़ पर रख लिया और उसे समुद्र तट पर पहुँचा दिया।

देवों और दानवों ने वासुकि को नेती बनने के लिये यह कहे कर राजी कर लिया कि समुद्र मन्थन से प्राप्त अमृत में उसका भी भाग होगा। जब समुद्र मन्थन प्रारम्भ हो गया और मन्दराचल अपने भार के कारण समुद्र मे डूबने लगा, तब भगवान् ने कच्छप का रूप धारण कर लिया और समुद्र के जल में प्रवेश करके मन्दराचल को अपनी पीठ पर उठा लिया। उस समय भगवान् की पीठ एक लाख योजन फैली हुई थी। देवों और असुरों की शक्ति से मन्दराचल भगवान् के पीठ पर घूमने लगा। उस समय आदि कच्छप भगवान् को ऐसा लग रहा था मानों उनकी पीठ कोई खुजला रहा हो। इस पर्वत को अपने हाथों से दबाकर भगवान् उसके ऊपर स्थित हा गये। फिर भी जब अमृत न निकला तो भगवान् स्वयं ही मन्थन करने लगे जिसके फलस्वरूप सर्वप्रथम हलाहल नाम का अत्यन्त उग्र विष निकला जिससे बचने के लिये सब लोग कैलाश पर्वत पर विराजमान भगवान् शंकर की शरण मे गये और उनसे कहा कि आप ही ब्रह्मा, विष्णु, और शिव आदि नाम धारण कर लेते हैं, आप परम रहस्यमयी ब्रह्मतत्व हैं, आप ही 'अ, उ, म्' तीन अक्षरों से युक्त प्रणव हैं। इस हलाहल विष से आप ही रक्षा कर सकते

हैं। विष की बात सुनकर भगवान् शंकर को बड़ी व्यथा हुयी और उन्होंने पार्वती जी से कहा कि प्राणियों के ऊपर जो कृपा करता है उस पर सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं और उनके प्रसन्न होने पर मै भी प्रसन्न हो जाता हूँ। ऐसा कहकर उन्होंने विष को अपनी हथेली पर उठाया और भक्षण कर लिया जिससे उनका कण्ठ नीला पड़ गया।

इसके पश्चात् समुद्र मन्थन से कमशः कामधेनु, श्वेत वर्ण का उच्चैःश्रवा नाम का अश्व, ऐरावत हाथी, कौस्तुभ मणि, कल्पवृक्ष, अप्सरायें तथा लक्ष्मी जी निकलीं जिन्होंने विष्णु जी का वरण कर लिया। तत्पश्चात् वारुणि देवी प्रकट हुयीं जिनको दैत्यों ने ले लिया। इसके बाद अमृत से भरा हुआ कलश लेकर धन्वन्तरि प्रकट हुये जिसे दैत्यों ने छीन लिया। इस पर जब देवता लोग बहुत दुःखी हुये तब भगवान् ने कहा कि मै अपनी माया से तुम्हारा काम बना दूँगा।

इसके लिये भगवान् ने मोहिनी का रूप धारण कर लिया, जिसके स्तनों आदि का अश्लील वर्णन किया गया है। काममोहित दैत्य मोहिनी को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करने लगे और उन्होंने अमृत का कलश मोहिनी के हाथ में दे दिया। मोहिनी ने दैत्यों को इस बात पर राज़ी कर लिया कि वह जिसको चाहे उसको अमृत दे दे, दैत्यों को कोई आपत्ति नहीं होगी। मोहिनी रूपी भगवान् ने अपने हाव भाव से दैत्यों को मोहित करके देवताओं को अमृत पिला दिया किन्तु उसी समय राहु ने भी देवताओं का वेष रखकर अमृत पी लिया जिस पर भगवान् ने अपने चक्र से उसका सिर काट दिया और उसका कटा हुआ सिर ही अमर हो सका।

शिव जी का मोहिनी पर मोहित होना।

जब शंकर जी ने मोहिनी रूप के विषय में सुना तब वे सती जी के साथ बैल पर बैठकर और भूत गणों को साथ ले कर श्री हरि के पास गये और कहा कि प्रभो! मैं आपके मोहिनी रूप का दर्शन करना चाहता हूँ। विष्णु जी ने यह आग्रह स्वीकार कर लिया और अन्तर्धान हो गये।

इतने में ही शंकर जी ने देखा की एक उपवन में एक सुन्दरी सुन्दर साड़ी और करधनी पहने हुये गेंद उछाल उछाल कर पकड़ रही है जिससे उसके स्तन हिल रहे हैं, कमर लचक रही है और साड़ी खिसकी जा रही है। उसने मुस्कराकर शंकर जी को देखा तो उनका मन हाथ से निकल गया और उनको यह भी सुधि न रही कि सती जी पास मे बैठी हैं। एक बार गेंद उछल कर थोड़ी दूर चली गयी और वह उसके पीछे दौड़ी। उसी समय शंकर जी के देखते देखते वायु ने उसकी झीनी साड़ी करधनी के साथ उड़ा ली और वह वस्त्र हीन हो गयी जिसे देखकर शंकर जी कामातुर हो गये और भवानी के सामने ही लज्जा छोड़कर उसकी ओर दौड़ पड़े। मोहिनी एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष के आड़ में छिप जाती थी और हँसने लगती थी। शंकर जी की इन्द्रियाँ उनके वश में नहीं रहीं और उन्होंने दौड़कर उसे पकड़ लिया और अपनी भुजाओं में भरकर हृदय से लगा लिया।

मोहिनी ने किसी प्रकार अपने को छुड़ा लिया और वेग से भागी। शंकर जी उसके पीछे पीछे तब तक भागते रहे जब तक उनका वीर्य स्खलित नहीं हो गया। जहाँ जहाँ उनका वीर्य गिरा वहाँ वहाँ सोने चाँदी की खानें बन गयीं।

क्या इतनी असत्य, अश्लील और शिव जी के लिये अत्यन्त अपमान जनक बातें व्यास जी लिख सकते थे?
समुद्र मन्थन का प्रकरण वाल्मीकीय रामायण में बिल्कुल भिन्न प्रकार से आया है और उसमें मोहिनी आदि का कोई उल्लेख नही है, जिससे स्पष्ट है कि ये सारी कथा कपोल कल्पित है।

इसके विपरीत शिव जी की महिमा का वर्णन करते हुये शिव पुराण मे कहा गया है कि जब ब्रह्मा और विष्णु किसी बात पर विवाद कर रहे थे तब उनके बीच में एक अग्नि स्तम्भ (ज्योतिर्मयलिंग) प्रकट हो गया। ब्रह्मा और विष्णु ने क्रमशः उसके ऊपर और नीचे जाकर उसके आदि और अन्त का पता लगाने का असफल प्रयास किया। तब दोनों ने परमेश्वर शिव को प्रणाम किया। ऐसा करते हुये सौ वर्ष बीत गये तब 'ओ३म्', 'ओ३म्' ऐसा शब्द रूप नाद प्रकट हुआ जो प्लुत स्वर में स्पष्ट रूप से सुनायी दे रहा था। तब श्री हरि ने शिव का चिन्तन किया और यह जाना कि इस परम शिवलिंग के रूप में साक्षात परब्रह्म स्वरूप महादेव जी प्रकट हुये हैं जिनका वाचक ओंकार है जिसके पहले अक्षर अकार से ब्रह्मा का बोध होता है, दूसरे अक्षर उकार से श्री हरि का ओर तीसरे अक्षर मकार से शिव का बोध होता है। श्री हरि ने मन्त्रो के द्वारा महेश्वर का स्तवन किया जिस पर उमा सहित शिव प्रकट हो गये। तत्पश्चात् **ओ३म् तत्वमसि** मन्त्र रूप महावाक्य दृष्टि गोचर हुआ। महेश्वर ने श्री विष्णु और ब्रह्मा जी को वेद का उपदेश दिया और कहा कि मुझ सर्वेश्वर के दाहिने पार्श्व से ब्रह्मा उत्पन्न हुये हैं और वाम पार्श्व से विष्णु प्रकट हुये हैं। मै
तुम दोनों पर प्रसन्न हूँ। मेरी आज्ञा से तुम दोनों की मुझमे सुदृढ़ भक्ति हो। ब्रह्मन् !तुम मेरी आज्ञा का पालन करते हुये

जगत की सृष्टि करो और वत्स विष्णो! तुम जगत का पालन करते रहो। मै सृष्टि का पालन और संहार कर्ता हूँ और परब्रह्म परमात्मा हूँ। मै, तुम, ब्रह्मा और जो रुद्र ब्रह्मा के शरीर से प्रकट होंगे वे सब एक रूप हैं तथापि मेरा शिव रूप ही सनातन है। यह सत्य, ज्ञान एवं अनन्त ब्रह्म है।

इस प्रकार शिव पुराण मे शिव को परब्रह्म और विष्णु तथा ब्रह्मा को उनके शरीर से उत्पन्न आज्ञाकारी देवता बताकर स्पष्ट रूप से दोनो का अपमान किया गया है।

2 रुद्र संहिता के अध्याय छत्तीस मे कहा गया है कि शिव और दैत्य शंखचूड का युद्ध सैकड़ों वर्षों तक चलता रहा। इस बीच आकाश वाणी हुयी कि जब तक शंखचूड के हाथ में श्रीहरि का कवच रहेगा और इसकी पतिव्रता पत्नी तुलसी का सतीत्व अखण्डित रहेगा तब तक इसे मारा नहीं जा सकेगा। तब शिव जी ने विष्णु को यह कार्य करने के लिये प्रेरित किया। तदनुसार मायावी विष्णु ने वृद्ध ब्राह्मण का रूप रखकर शंखचूड का कवच माँग लिया और फिर उसका रूप रखकर उसकी पत्नी तुलसी का शील हरण कर लिया जिसके कारण शिव जी द्वारा शंखचूड का वध किया जा सका।

जब तुलसी फूट फूटकर रोने लगी तब शिव जी ने जाकर उसे वरदान दिया कि तुम वैकण्ठ मे जाकर वृक्षाधिष्ठात्री देवी बनकर सदा एकान्त मे श्रीहरि के साथ कीडा करोगी और तुलसी का वृक्ष बन जाओगी।

जिस प्रकार भागवत मे शिव जी का मोहिनी के साथ घृणित रूप दिखाया गया है, उसी प्रकार शिव पुराण में विष्णु जी को

दूसरे की पतिव्रता पत्नी के साथ धोखे से दुराचार करने का दोषी दिखाया गया है।

यह उल्लेखनीय है कि भागवत में किये गये इस कथन, कि जहाँ जहाँ शंकर जी का वीर्य पात हुआ था, वहाँ वहाँ सोने चाँदी की खदानें बन गयी थीं, के विपरीत शतरुद्रसंहिता के अध्याय 19 मे कहा गया है कि जब शिव जी ने मोहिनी के पीछे कामातुर होकर भागते हुये अपना वीर्य पात किया था तब सप्तऋषियों ने उस वीर्य को पत्रपुटक में स्थापित कर लिया था और उस वीर्य को उन महर्षियों ने गौतम कन्या अंजनी मे कान के रास्ते स्थापित कर दिया था जिससे महाबली हनुमान का जन्म हुआ था।

असत्य की सारी सीमायें पार करते हुये आगे लिखा है कि महाबली कपीश्वर हनुमान जब शिशु ही थे, उस समय उन्होंने उदय होते हुये सूर्य को छोटा सा फल समझकर निगल लिया था और बाद मे देवताओं की प्रार्थना पर उगल दिया था। आश्चर्य जनक है कि बहुत से लोग हनुमानाष्टक मे उल्लिखित इस असत्य को प्रार्थना के रूप मे यह सोचकर पढ़ते हैं कि इससे उन्हें हनुमान जी की कृपा प्राप्त हो जायेगी ।

क्या महर्षि व्यास जी, जो ब्रह्मा जी के मानस पुत्र माने जाते हैं, इस प्रकार की अश्लील एवं असत्य बातें लिख सकते थे ?

देवी भागवत

उपरोक्त तीनों पुराणों के विपरीत देवी भागवत में भगवती जगदम्बिका को ही ब्रह्म बताया गया है और कहा गया है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों उनकी आज्ञा अनुसार, उनसे प्राप्त

शक्ति के आधार पर ही काम करते हैं। अध्याय 5 में कहा गया है कि दवी जगदम्बिका ने ब्रह्मा जी से कहा कि मै और ब्रहा एक ही हैं। मुझ में और ब्रहा में लेश मात्र भी भेद नही है। ब्रह्म एक ही है। संसार में मेरे सिवा कोई पदार्थ ही नही है सब कुछ मेरा ही रूप है। मै शक्ति रूप धारण करके पराक्रम करती हूँ। यदि शक्ति रूपा मै हट जाऊँ तो संसार में एक भी प्राणी हिल डुल न सके। तुम ब्रहा, शिव और विष्णु मेरे प्रभाव से ही प्रकट हुये हो। जो विष्णु हैं वही साक्षात् शिव है और जो शिव हैं वही स्वयं श्रीहरि हैं।

ब्रह्मा जी को इस प्रकार बताकर जगदम्बा ने भगवान् विष्णु के लिये महालक्ष्मी को, शंकर जी के लिये महाकाली को और ब्रह्मा जी के लिये महा सरस्वती को पत्नी बनने की आज्ञा दे दी।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि पुराणों मे परस्पर विपरीत असत्य बाते लिखी हुयी हैं। अतः यह सम्भव नहीं है कि व्यास जी द्वारा ही सभी पुराण लिखे गये हैं।

शिवलिंग

श्वेताश्वतर उपनिषद् 6। 9 में स्पष्ट रूप से कहा गया है **"न चेशिता नैव च तस्य लिंगम्"** परमात्मा का न कोई शासक है और न उनका कोई लिंग है। उल्लेखनीय है कि वेदों में कही भी शिवलिंग शब्द नहीं आया है। इससे स्पष्ट है कि शिवलिंग की कल्पना सर्वथा अनुचित एवं वेद विरुद्ध है।

यह उल्लेखनीय है कि वाल्मीकीय रामायण में श्री राम के द्वारा शिवलिंग स्थापित करके उसका पूजन करने का कोई उल्लेख नहीं है। इतना ही नहीं, किसी भी ऋषि द्वारा शिवलिंग पूजन

का कहीं भी उल्लेख नहीं है, केवल सन्ध्योपासन, अग्निहोत्र एवं यज्ञ किये जाने का उल्लेख है। वास्तव में सम्पूर्ण वाल्मीकीय रामायण में शिवलिंग शब्द ही नहीं आया है, केवल **उत्तरकाण्ड के बत्तीसवें सर्ग में कहा गया है –**

यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः।

जाम्बूनदमयं लिंगम् तत्र तत्र स्म नीयते।।42

राक्षसराज रावण जहाँ जहाँ भी जाता था वहाँ वहाँ एक सुवर्णमय शिवलिंग अपने साथ लेकर जाता था।

वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिंगं स्थाप्य रावणः।

अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृमगन्धिभिः।।43

रावण ने बालूकी वेदी पर शिवलिंग को स्थापित कर दिया और चन्दन तथा अमृत के समान सुगन्धवाले पुष्पों से उसका पूजन किया।

इससे स्पष्ट है कि शिवलिंग पूजन की परम्परा राक्षसीय है देवों एवं ऋषियों की नहीं।

अध्यात्म रामायण में भी शिवलिंग का कोई उल्लेख नहीं है केवल अन्त में यह असत्य बात मिला दी गयी है कि श्री राम ने कराड़ों शिवलिंग स्थापित करवाये ।

<u>हनुमान जी का जन्म एवं उनके द्वारा सूर्य को निगलना</u>

हनुमान जी के जन्म का उल्लेख एवं उनके द्वारा सूर्य को बचपन में निगलने का सर्वथा असत्य उल्लेख वाल्मीकीय

रामायण तथा अध्यात्म रामायण में नहीं आया है, केवल शिवपुराण, में आया है जहाँ से लेकर उसे हनुमानाष्टक में तुलसीदास जी द्वारा लिखा गया है। वाल्मीकीय रामायण में यह प्रकरण दो बार आया है किन्तु उनमें सूर्य को निगलने का उल्लेख नहीं है। अध्यात्म रामायण में भी यह प्रकरण आया है किन्तु उसमें केवल यह लिखा गया है कि हनुमान जी सूर्य की तरफ लगभग सौ योजन उछलकर गये और गिर पड़े। इससे स्पष्ट है कि यह बात काल्पनिक एवं असत्य है किन्तु फिर भी हम इसका पाठ बड़ी भक्ति पूर्वक यह मान कर करते हैं कि इससे हमें हनुमान जी की कृपा प्राप्त होगी।

दुर्भाग्य है कि पौराणिक काल में अधिक से अधिक असत्य बातों को धर्म ग्रन्थों में मिलाने का भरपूर प्रयास किया गया है। उदाहरणार्थ – वाल्मीकीय रामायण में यह लिखा गया है कि राम रावण युद्ध के समय महर्षि अगस्त्य ने युद्ध के बीच में आकर राम से कहा कि तुम आदित्य ह्रदय स्तोत्र का पाठ करो तभी रावण का वध कर कर सकोगे और श्री राम ने उनके

आदेश का पालन करके उसी समय स्तोत्र का पाठ किया और युद्ध किया।

विचारणीय है कि केवल कुछ शताब्दियों पूर्व लिखा गया यह स्तोत्र त्रेतायुग में कहाँ से आ गया। यह भी महत्वपूर्ण कि इस स्तोत्र में कोई वेद मन्त्र नहीं है और यह असत्य बात लिखी गयी है कि आदित्य ही ब्रह्मा विष्णु महेश है। आगे यह लिखा गया है कि आदित्य इन तीनों का भी ईश्वर है। जब तक हम इन असत्य बातों को नहीं छोड़ेगें तब तक हमारा समाज कभी उन्नति नहीं कर सकता क्योंकि असत्य कभी धर्म नहीं हो

सकता है और धर्म पालन के बिना समाज कभी प्रगति नहीं कर सकता।

हमारी अनेक अनुचित मान्यताओं में एक गौतम बुद्ध को विष्णु जी का अवतार मानना है। **बौद्ध धर्म नास्तिक धर्म है।** जब बुद्ध जी ईश्वर को मानते ही नही तब उन्हें ईश्वर का अवतार कैसे कहा जा सकता है। कैसी मूर्खता है कि जिस धर्म ने वैदिक धर्म का अपमान और घोर विरोध किया, उसी के प्रवर्तक को हम भगवान का अवतार कहते हैं।

इसी प्रकार साँई बाबा को सच्चिदानन्द कहना सर्वथा अनुचित है। केवल ब्रह्म ही सच्चिदानन्द है, कोई पुरुष सच्चिदानन्द नही हो सकता चाहे वह कितना ही महान क्यों न हो।

वाल्मीकीय रामायण में सत्य और सदाचार पर अत्यधिक बल दिया गया है और राम का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है

विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः

कालाग्निसदृशः कोधे क्षमया पृथिवीसमः। 18

धनदन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः।।

तमेवंगुणसम्पन्नं रामं सत्यपराकमम्। 19

राम विष्णु के समान बलवान हैं चन्द्रमा के समान मनोहर हैं, क्रोध में कालाग्नि के समान हैं, क्षमा में पृथिवी के सदृश हैं, दान करने में समस्त त्याग कर देने वाले हैं, सत्य में धर्म का स्वरूप हैं, तथा सत्य पराकम वाले हैं।

वास्तव में राम को वैदिक धर्म का स्वरूप कहा जाता है। **रामो विग्रहवान धर्मः।**

किन्तु भिन्न भिन्न स्थानों पर इन्द्र विष्णु तथा शिव के विषय में अत्यन्त असत्य एवं घृणित बातें लिखकर उनका घोर अपमान किया गया है, फिर भी हम लोग पूर्वाग्रह से ग्रस्त है और लगभग तीन चा हज़ार वर्ष पूर्व पौराणिक काल में लिखी गयी असत्य बातों एवं विचारों को त्यागने के लिये तैयार नहीं है।

अतः युवा वर्ग से विनम्र अनुरोध है कि केवल वेदों में बताये गये सत्य धर्म का पालन करें क्योंकि वेद ही हमारे धर्म का मूल हैं और अपौरुषेय ईश्वरी वाणी हैं।

इसी उद्देश्य से वेदों के कतिपय महत्वपूर्ण मन्त्र आगे दिये जा रहे है।

सभी सज्जनों से यह प्रार्थना ह कि वेदों के विषय में और अधिक जानकारी के लिय मेरी निम्नाकिंत पुस्तकों का अवलोकन करने की कृपा करें।

पुस्तक	मूल्य
1. वेद सुरभि	120
2. यजुर्वेद अन्तिम अध्याय–ईशावास्योपनिषद्	120
3. सावित्री अथवा गायत्री महामन्त्र	100
4. प्रेमामृत	80
5. यज्ञानुराग	50
6. वेदों आदि में मिलावट की गभीर समस्या	40

दैनिक प्रार्थना एवं स्तुति के मन्त्र

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्१यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।

अथर्व वेद १०।८।१

(यः भूतं च भव्यं च) जो भूत भविष्य तथा वर्तमान (यः सर्वं अधितिष्ठति) सब का अधिष्ठाता है, सबका स्वामी है, (यस्य च केवलं स्वः) और जिसका केवल प्रकाशमय तथा आनन्दमय स्वरूप ही है अर्थात् जो केवल प्रकाश स्वरूप तथा सुखस्वरूप है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

सब का अधिष्ठाता होने के कारण ब्रह्म सर्वाधार एवं सर्व नियन्ता हैं, सब के स्वामी हैं। स्वः का अर्थ सुख, आनन्द, प्रकाश तथा ज्ञान है क्योंकि जब ज्ञान का प्रकाश होता है

आनन्द प्राप्त होता है और जब अज्ञान का अन्धकार होता है तब दुःख होता है। इसी लिए ब्रह्म का वर्णन भूः (सत्) भुवः (चित्) स्वः (आनन्द), सच्चिदानन्द के रूप मे किया जाता है।
मन्त्र से स्पष्ट है कि ब्रह्म केवल आनन्द स्वरूप, प्रकाशस्वरूप तथा ज्ञान स्वरूप है, निराकार ब्रह्म का और कोई स्वरूप नही है। भूत भविष्य वर्तमान सबका अधिष्ठाता होने के कारण ब्रह्म सर्वाधार हैं, सत्य हैं, और अनन्त है।अतः ब्रह्म को **सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म** कहा जाता है तैत्तिरीय उप 2/1

वेदान्त दर्शन में कहा गया है **(जन्माद्यस्य यतः)**

यह समस्त ब्रह्माण्ड जिससे उत्पन्न होता है, जिसके आश्रय से जीवित रहता है और अन्त में जिसमें लीन हो जाता है, वह ब्रह्म है।

यह समस्त जगत ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है और ब्रह्म इसके कण कण में व्याप्त है, अतः पाँचो महाभूत तथा समस्त प्रकृति उसके अंग प्रत्यंग क रूप में हैं। अतएव ब्रह्म के विराट स्वरूप का अलंकारिक वर्णन निम्न प्रकार किया गया है।

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।

अथर्व. १०।७।३२

(यस्य भूमिः प्रमा) पृथिवी जिसकी पादस्थानीय है (अन्तरिक्षं उत उदरम्) तथा अन्तरिक्ष जिसके उदर के समान है, (यः दिवं मूर्धानं चक्रे) जिसने द्युलोक को अपने मूर्धा अर्थात् शिर के रूप में बनाया है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं१तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।

अथर्व.१०।७।३३

(सूर्यः पुनर्णवः चन्द्रमाः च) सूर्य तथा पुनः पुनः नवीन होने वाला चन्द्रमा (यस्य चक्षुः) जिसके नेत्र के समान हैं (यः अग्निं आस्यं चक्रे) तथा जिसने अग्नि को अपने मुख के रूप में बनाया है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।

अथर्व. १०।७।३४

(यस्य वातः प्राणापानौ) वायु जिसका प्राण और अपान है, (अङ्गिरसः चक्षुः अभवन्) प्रकाश देने वाली किरणें जिसके चक्षु के समान हैं, (यः दिशः प्रज्ञानीः चक्रे) तथा जिसने दिशाओं को अपने कानों के रूप में बनाया है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

नमः शम्भवायं च मयोभवायं च नमः शङ्करायं च
मयस्करायं च नमः शिवायं च शिवतंराय च ।।

यजु०,१६।४१

(नमःशम्भवाय च मयोभवाय च) सांसारिक सुख उत्पन्न करने वाले सुखस्वरूप तथा मोक्ष सुख के प्रदाता परमानन्द स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है; (नमः शङ्कराय च मयस्कराय च) हर्ष, उल्लास एवं लौकिक सुख के प्रदाता तथा मोक्ष के परम आनन्द के प्रदाता परब्रह्म को नमस्कार है; (नमः शिवाय च शिवतराय च) मङ्गलमय, कल्याणकारी तथा परम कल्याणकारी देवाधि देव महादेव को नमस्कार है।

शं सुखं भावयति इति शंभवः। अथवा,

शं सुखं भवत्यस्मादिति शंभवः॥

भगवान् सुख देते हैं अथवा भगवान् से सुख प्राप्त होता है इसलिये भगवान् शंभव हैं।

शं सुखं करोति इति शङ्करः।

मयो मोक्ष सुखं करोति इति मयस्करः॥

भगवान् सुखी करते हैं इसलिये शंकर हैं। भगवान् मोक्ष, सुख देते हैं इसलिये मयस्कर हैं।

शिवः कल्याण रूपो शान्तो निर्विकारः।

शिव कल्याण रूप हैं, कल्याण करने वाले हैं, शान्त हैं, निर्विकार हैं।

(ओ३म्) भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

ऋग्. ३।६२।१०, यजु. ३६।३, ३।३५, २२।९ तथा ३०।२
साम. उत्तरा. १३।४।१ क्र. सं. १४६२

(ओ३म्) हे अन्तर्यामी ! हमारे हृदय, मन, प्राण तथा आत्मा में वसने वाले, सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान परमपिता परमात्मा ! (भूः=सत्) हे सर्वाधार ! (भुवः=चित्) हे ज्ञान स्वरूप, सर्वज्ञ ! हमारे समस्त दुःखों को दूर करने वाले (स्वः=आनन्द) हे सुख स्वरूप! परम आनन्द को देने वाले, (भूर्भुवः स्वः हे सच्चिदानन्द! (तत् सवितुः देवस्य) सकल ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाले, उसका पालन पोषण करने वाले तथा उसे प्रेरणा देने वाले उस सविता देव के, परब्रह्म के (वरेण्यं भर्गः वरण करने योग्य, श्रेष्ठ, कल्याणकारी पापनाशक तेज का हम (धीमहि) ध्यान करते हैं, उपासना करते हैं तथा उसके ज्योतिर्मय स्वरूप को अपने अन्तःकरण में धारण करते हैं। (धियो यो नः) जो परब्रह्म हमारी बुद्धि, वाणी तथा कर्मों को (प्रचोदयात्) कल्याणकारी मार्ग पर प्रेरित करे। अथवा, हे प्रभो! हमारी बुद्धि, वाणी तथा कर्मों को कल्याणकारी मार्ग पर प्रेरित कीजिये।

महा मत्युंजय मन्त्र

त्र्यंम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुंष्टि वर्धनम् ।
उर्वारुकमिंव बन्धंनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।।

यजु. ३।६० (पाठभेद) ऋग्. ७।५९।१२

(सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्) जीवन की सुगन्धि अर्थात् मनुष्य द्वारा किये गये पुण्य कर्मों की सुगन्धि, उसकी यश, सुरभि एवं आत्मा तथा शरीर की पुष्टि और धन धान्य आदि का संवर्धन करने वाले (त्र्यम्बकं) तीन नेत्रों वाले रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलाने वाले एवं सज्जनों का कल्याण करने वाले भगवान् शिव की हम (यजामहे) उपासना करते हैं तथा यह प्रार्थना करते हैं कि वह हमें (मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय) मृत्यु के बन्धन से उसी प्रकार मुक्त कर दें (उर्वारुकं इव) जिस प्रकार पका हुआ खरबूजा अपनी लता से मुक्त हो जाता है (मा अमृतात्) किन्तु हमें अमृत से, मोक्ष से मुक्त न करें अर्थात् हमें अमृतत्व प्रदान करें, मोक्ष प्रदान करें।

भगवान् को त्र्यम्बक अर्थात् तीन नेत्रों वाला इसलिये कहा जाता है कि वह भूत, भविष्य वर्तमान तथा पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक तीनों को भली प्रकार देखते हैं और इस त्रिगुणात्मिका सृष्टि की रचना कर उसके प्रादुर्भाव, स्थिति एवं प्रलय तीनों को पूर्ण रूपेण नियन्त्रित करते हैं। अथवा, (त्र्यम्बकः त्रिनयनः त्रीणि चन्द्र सूर्याग्निरूपाणि नयनानि यस्य) चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि रूपी तीन तेज हैं, नेत्रों के समान जिसके, ऐसे भगवान् त्र्यम्बक हैं।

यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद्गन्धो वात्येवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद्गन्धो वाति (तै.आ.१०।९) जिस प्रकार सुगन्धित फूलों से भरे हुये वृक्ष की सुगन्धि दूर से ही आती है उसी प्रकार पुण्य कर्मों की सुगन्धि भी दूर से ही आती है।

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥

साम. पूर्वार्चिक, क्र. सं. ६०५, ऋग्.१।१।१

(पुरोहितम्) यज्ञ आदि प्रत्येक श्रेष्ठ कार्य में जिन्हें आगे रखा जाता है अथवा सृष्टि से पूर्व अव्यक्त कारण प्रकृति को धारण करने वाले (यज्ञस्य देवम्) यज्ञ के द्वारा जिनका अर्चन एवं पूजन किया जाता है, ऐसे यज्ञ को उत्पन्न एवं प्रकाशित करने वाले, स्वयं प्रकाशमान् तथा समस्त ब्रह्माण्ड को आलोकित करने वाले (ऋत्विजम्) ऋतु ऋतु में अर्थात् सदैव पूजनीय तथा उपासना किये जाने योग्य अथवा, उत्पत्ति के समय स्थूल सृष्टि को रचने वाले (होतारम्) समस्त पदार्थों एवं सुखों को देने वाले, समस्त प्रार्थनाओं को सुनने वाले तथा यज्ञों को सम्पन्न कराने वाले, (रत्न धातमम्) समस्त प्रकार के रत्नों तथा सूर्य, चन्द्र आदि रमणीय

पदार्थों को धारण करने वाले (अग्निम् ईळे) प्रकाश स्वरूप परब्रह्म की हम स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना करते हैं।

अग्न॒ आ या॑हि वी॒तये॑ गृ॒णा॒नो ह॒व्यदा॑तये ।
नि होता॑ सत्सि ब॒र्हिषि॑ ॥

साम.पूर्वा. १।१, उत्तरा. २।१, क्र. सं. १ तथा ६६०,

ऋग्. ६।१६।१०

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परब्रह्म ! (गृणानः) हमारे द्वारा स्तुत किये हुये, (होता) हमें सब कुछ देने वाले दाता, आप (वीतये) हमें प्रकाश, ज्ञान एवं समृद्धि देने के लिये तथा (हव्य दातये) अन्न आदि समस्त सुखकारी पदार्थ उपलब्ध कराने के लिये (आयाहि) आइये और (बर्हिषि नि सत्सि) हमारे द्वारा बिछाये गये कुश के आसन पर तथा हमारे हृदयाकाश में विराजिये।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳसर्वतस्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।

अथर्व. १९।६।१ (पाठभेद) यजु.३१।१
ऋग्.१०।९०।१, (पाठभेद) साम.पूर्वा. ६।४।३ क्र.सं.६१७, (पाठभेद)

वह परम पुरुष हज़ारों शिर,हज़ारों नेत्रों तथा हज़ारों पैरों वाला है। वह इस भूमि को, ब्रह्माण्ड को (सर्वतः स्पृत्वा) सब ओर से घेरकर, आच्छादित करके दश अङ्गुल के आकार वाले अथवा नाभि से दश अङ्गुल ऊपर स्थित हृदय में, अथवा दशाङ्गुलम् अर्थात् ब्रह्माण्ड के अन्दर तथा उसके बाहर भी स्थित है।

ब्रह्माण्ड को दशाङ्गुलम् इसलिये कहते हैं कि यह पञ्च महाभूत अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथिवी तथा इनकी तन्मात्रायें, क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से बनता है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।-
तमेव विंदित्वातिं मृत्युमेति,
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।

यजुर्वेद. ३१।१८

(अहम् एतम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् महान्तं पुरुषं वेद) मैं उस आदित्य वर्ण वाले अर्थात् अज्ञान एवं अन्धकार से परे प्रकाश स्वरूप, महान पुरुष को जानता हूँ। (तम् एव विदित्वा मृत्युं अति एति) उसी को जानकर ज्ञानी भक्त मृत्यु को पार करता है, (अयनाय अन्यः पन्था न विद्यते) मोक्ष के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रै-
र्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥

यजुर्वेद. १७।१९, ऋग्. १०।८१।३

(विश्वतः चक्षुः उत विश्वतः मुखः) सब ओर नेत्रों वाला, सब ओर मुख वाला, (विश्वतः बाहुः उत विश्वतः पात्) सब ओर बाहों तथा सब ओर पैरों वाला अर्थात् सब का दृष्टा, श्रोता, ज्ञाता एवं सर्व शक्तिमान् सर्वगतः, सर्वव्यापक, (देव एकः) वह एक मात्र देव अर्थात् परमात्मा (द्यावा भूमी) द्युलोक तथा पृथिवी आदि लोकों को (पतत्रैः जनयन्) गतिशील परमाणुओं आदि से, उत्पन्न करता हुआ (बाहुभ्याम् सं धमति) अपने अनन्त बाहुबल से, अपने पराक्रम से संसार को सम्यक् रूप से प्राप्त होता है अर्थात् संसार में व्याप्त होकर तथा उसे आधार देकर स्थित रहता है।

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू
रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान्न बिभाय
मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ।।

अथर्ववेद. १०।८।४४

वह परब्रह्म कामना रहित, धैर्यवान, प्रज्ञावान, अमर, स्वयम्भू, रस अर्थात् आनन्द से ओत प्रोत तथा किसी भी प्रकार की न्यूनता से रहित अर्थात् सब प्रकार से पूर्ण है। उस धीर, अजर तथा सदैव तरुण रहने वाले परमात्मा को जानकर ही मृत्यु का भय दूर होता है।

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्।
अजस्रं घर्ममीमहे।।

साम. उत्त. १८।४(३)।१, क्र.सं. १७०८, यजु. २६।६ (पाठभेद), अथर्व.६।३६।१

(ऋतावानं) सत्यस्वरूप, सत्य नियमों के रक्षक तथा (ऋतस्य ज्योतिषः पतिम्) सत्य रूपी ज्योति के स्वामी एवं रक्षक (वैश्वानरस्य) समस्त मनुष्यों को ले जाने वाले, उन्हें जीवन, चेतना, प्रेरणा एवं गति देने वाले (अजस्रं घर्मं) निरन्तर प्रकाशित होने वाले अखण्ड ज्योति स्वरूप परमात्मा की (ईमहे) हम उपासना करते हैं, उनसे प्रार्थना करते हैं।

विश्वान् नरान् नयति इति वैश्वानरः। विश्व एनं नरा नयन्तीति वा।

निरुक्त. ७।६।२०।३

समस्त मनुष्यों को ले जाता है, गति देता है अथवा सब मनुष्य इसको प्राप्त करते हैं।

आध्यात्मिक अर्थ में वैश्वानर का अर्थ परमात्मा होगा।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मा-
न्विश्वानिदेव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥

यजुर्वेद. ४०।१६, ५।३६ तथा ७।४३, ऋग्. १।१८९।१

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (अस्मान् राये सुपथा नय) हमें धन, ऐश्वर्य तथा सर्वतोमुखी अभ्युदय के लिये सुपथ अर्थात् अच्छे मार्ग से ले चलिये। हे देव! आप हमारे (विश्वानि वयुनानि विद्वान्) समस्त कर्मों, विचारों तथा मन के भावों को जानने वाले हैं (अस्मत् जुहुराणम् एनः युयोधि) हम से कुटिलता पूर्ण पापों को अलग कर दीजिये (ते भूयिष्ठां नम उक्तिं विधेम) हम आपको बारम्बार प्रणाम करते हुये आपकी श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक स्तुति तथा उपासना करते हैं।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ।।

यजु. १।५

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (व्रतपते) आप हमारे व्रत की रक्षा करने वाले हैं, (व्रतं चरिष्यामि) मैं व्रत का आचरण करूँगा। (तत् शकेयम्) मुझे उसके लिये शक्ति दीजिये ताकि मैं व्रत पर आचरण कर सकूँ। (तत् मे राध्यताम्) मेरा वह व्रत आप पूर्ण कराइये। (इदं अहम् अनृतात् सत्यं उपैमि) व्रत यह है कि मैं असत्य से सत्य को प्राप्त होता हूँ।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ।।

ऋग्. ५।८२।५, यजुर्वेद. ३०।३

(सवित: देव) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले तथा उसका पालन पोषण करने वाले, उसे चेतना एवं प्रेरणा देने वाले सविता देव, हे परब्रह्म ! (विश्वानि दुरितानि परा सुव) हमारे समस्त दुःखों तथा अवगुणों को हमसे दूर कर दीजिये (यद् भद्रं तत् न: आसुव) और जो हमारे लिये कल्याणकारी हो, उसे हमारे पास लाइये, हमें प्राप्त कराइये ।

हमारा कल्याण किसमें है, यह भगवान् ही जानता है । इससे सुन्दर और कोई प्रार्थना क्या हो सकती है ? यह समर्पण तथा भक्ति की चरम सीमा है।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य
जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

यजु. १३।४,२३।१,२५।१०, अथर्व.४।२।७, ऋग्.१०।१२१।१

(हिरण्यगर्भः अग्रे समवर्तत) सूर्य, चन्द्र आदि प्रकाशमान पदार्थों को गर्भ के समान अपने अन्दर धारण करने वाला प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ही सृष्टि के पूर्व में था तथा (भूतस्य एकः जातः पतिः आसीत्) समस्त प्राणियों एवं पदार्थों का एक मात्र प्रसिद्ध स्वामी एवं रक्षक था और है। (सः इमाम् पृथिवीं उत् द्याम् दाधार) उस ईश्वर ने इस पृथिवी तथा द्युलोक आदि को धारण किया है। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हम अपने अन्तःकरण से भक्तिपूर्वक उपासना करें।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

अथर्व. ४।२।१, (पाठभेद) ऋग्. १०।१२१।२, यजुर्वेद. २५।१३

जो हमें आत्मिक ज्ञान एवं आत्मिक तथा शारीरिक बल देने वाला है, समस्त विश्व जिसकी उपासना करता है, सभी देव तथा विद्वान् जिसकी आज्ञा का, जिसके अनुशासन का पालन करते हैं, जिसकी छाया, जिसका आश्रय अथवा जिसकी कृपा ही अमृत है और जिसकी अकृपा ही मृत्यु है, ऐसे सुखस्वरूप परब्रह्म की हम अपने अन्तःकरण से भक्तिपूर्वक अनन्यभाव से अर्चना एवं उपासना करें।

य: प्राणतो निमिषतो महित्वैक
इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद:
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

अथर्व. ४।२।२, (पाठभेद), ऋग्. १०।१२१।३, यजुर्वेद. २३।३, २५।११

(यः) जो (प्राणत: निमिषत: जगतः) प्राणधारी तथा पलक झपकाने वाले समस्त प्राणियों का (महित्वा) अपनी महिमा से (एक: इत् राजा बभूव) एक अकेला ही स्वामी है और (यः) जो (अस्य द्विपद: चतुष्पद: ईशे) इस संसार के द्विपद (दो पैरों वाले) तथा चतुष्पद (चार पैरों वाले) अर्थात् समस्त प्राणियों पर शासन करता है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुखस्वरूप परमात्मा की हम अपने अन्तःकरण से भक्तिपूर्वक उपासना करें।

यस्येमे हिमवंन्तो महित्वा यस्यं
समुद्रꣳ रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्यं बाहू
कस्मैं देवायं हविषा विधेम ।।

अथर्व. ४।२।५, (पाठभेद), ऋग्. १०।१२१।४, यजुर्वेद. २५।१२

(यस्य महित्वा इमे हिमवन्तः) जिसकी महिमा से ये हिम मण्डित पर्वत स्थित हैं, (यस्य रसया सह समुद्रं आहुः) नदियों के साथ समुद्र जिसकी महिमा का गान करते हैं (इमाः प्रदिशाः यस्य बाहू) तथा ये दिशायें एवं उप दिशायें जिसकी बाहों की भाँति फैली हुयी हैं, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुखस्वरूप परमात्मा की हम अपने अन्तःकरण से श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक उपासना करें।

मा मां हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या
यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट् ।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

ऋग्. १०।१२१।९, (पाठभेद), यजुर्वेद. १२।१०२

(मा मा हिंसीत् जनिता यः पृथिव्या) जो पृथिवी को उत्पन्न करने वाला है, वह प्रजापति मुझे किसी प्रकार से दण्डित न करे, मुझे किसी प्रकार की वेदना, कष्ट अथवा दुःख न दे (यः वा सत्यधर्मा दिवं व्यानट्) तथा सत्य का धारण करने वाला जो परमात्मा द्युलोक का सृजन करके उसमें व्याप्त रहता है, (च यः प्रथमः आपश्चन्द्राः जजान) तथा जिस सर्वश्रेष्ठ एवं सर्व प्रथम प्रकट होने वाले परमात्मा ने मनुष्यों को तथा सुख देने वाले जल को उत्पन्न किया है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुखस्वरुप परब्रह्म की हम श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक अपने अन्तःकरण से उपासना करें।

(मनुष्या वा आपश्चन्द्राः) मनुष्य आपश्चन्द्र हैं क्योंकि (मनुष्या एव हि यज्ञेनाप्नुवन्ति चन्द्रलोकं पितृमार्गानुसारिणः) मनुष्य ही पितृमार्ग का अनुसरण करते हुये यज्ञ के द्वारा चन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं। अथवा, (यः च आपः चन्द्राः प्रथमः जजान) यश्च चन्द्राः आह्लादिका जगत्कारणभूता आपो जलानि प्रथमः आदिभूतः सन् जजानोत्पादितवान् तद्वारा मनुष्यानुत्पादितवानित्यर्थः। सर्व प्रथम प्रकट होने वाले जिस परमात्मा ने सुख देने वाले उस जल को उत्पन्न किया, जिससे जगत् की उत्पत्ति होती है और फिर जल से मनुष्यों को उत्पन्न किया।

शतपथ ब्राह्मण ७।३।१।२०

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा
येन स्वस्तभितं येन नाकः ।-
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

ऋग्. १०।१२१।५, यजुर्वेद. ३२।६

(येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृढा) जिसने द्युलोक तथा तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि देवों एवं दृढ पृथिवी को धारण कर रखा है, (येन स्वः स्तभितं येन नाकः) जिसने सुख तथा विशेष सुखपूर्ण स्थान अर्थात् स्वर्ग तथा मोक्ष को धारण कर रखा है, (यः अन्तरिक्षे रजसः विमानः) जो अन्तरिक्ष में विशेष मान अर्थात् गति से युक्त, समस्त लोक लोकान्तरों को धारण करता है तथा उन्हें गति देता है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुखस्वरूप परब्रह्म की हम अपने अन्तःकरण से श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक उपासना एवं स्तुति करें।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा
जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं
स्याम पतयो रयीणाम् ॥

अथर्व. ७।८०।३,(पाठभेद) यजु. २३।६५,(पाठभेद) ऋग्.१०।१२१।१०

(प्रजापते) समस्त प्राणियों की रक्षा करने वाले तथा उनके स्वामी हे परमात्मा ! (ता एतानि विश्वा जातानि) उन, इन समस्त उत्पन्न हुये प्राणियों एवं पदार्थों का (त्वत् अन्य: न परि बभूव) आपके अतिरिक्त अन्य कोई स्वामी नहीं है अर्थात् केवल आप ही इस विश्व को नियन्त्रण में रखने में समर्थ हैं, सर्वोपरि हैं। (यत् कामा: ते जुहुम:) जिन जिन कामनाओं के साथ हम आपकी शरण में आयें, आपकी उपासना करें (तत् न: अस्तु) हमारी वे समस्त कामनायें पूर्ण हों, हमारे मनोवाञ्छित फल एवं उद्देश्य हमें प्राप्त हों, (वयं स्याम पतयो रयीणाम्) तथा हम लोग समस्त प्रकार के धनों एवं ऐश्वर्यों के स्वामी हों।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशाना-
स्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥

यजु. ३२।१०

(यत्र देवाः) जिस परमेश्वर में सभी विद्वान् लोग (अमृतम् आनशानः) मोक्ष अथवा अमृतत्व का उपभोग करते हुये (तृतीये धामन् अधि ऐरयन्त) तृतीय धाम अर्थात् परमात्मा के सर्वश्रेष्ठ परम धाम में स्वच्छन्द विचरण करते हैं, (सः नः बन्धुः) वही हमारा बन्धु है, (जनिता) वही हमें जन्म देने वाला हमारा पिता है, (सः विधाता) वही हमें धारण करने वाला, हमारा पालन पोषण करने वाला तथा हमारे कर्मों के फलों का विधान करने वाला है और (धामानि वेद भुवनानि विश्वा) वही समस्त लोक लोकान्तरों तथा स्थानों आदि को जानने वाला है।

देव का अर्थ देवता के साथ साथ विद्वान् भी होता है।

विद्वांसो हि देवाः (शतपथ ब्राह्मण)

शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति ।
मा ते युयोम संदृशः ।।

अथर्व. ७।६८।३

(सरस्वति) हे सरस्वति ! (नः शिवा शंतमा सुमृडीका भव) हमारे लिये मंगलकारी, अत्यन्त कल्याणकारी तथा उत्तम सुख देने वाली होइये। (ते संदृशः मा युयोम) आपकी कृपा दृष्टि एवं सम्यक् दर्शन से हम कभी वञ्चित न हों।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धिया वसुः ।।

साम. पूर्वा. २।१०।५ क्र. सं. १८९, यजु. २०।८४, ऋग्. १।३।१०

(पावका नः सरस्वती) सरस्वती हमें पवित्र करने वाली तथा (वाजेभिः अन्नैः) अन्न आदि पदार्थों से युक्त होने के कारण (वाजिनीवती अन्नवती) अन्नपूर्णा हैं। (धियावसुः कर्मवसुः) बुद्धि तथा ज्ञान पूर्वक किये गये श्रेष्ठ कर्मों से धन देने वाली सरस्वती अथवा, (धियावसुः) बुद्धि ही जिनका धन है, ऐसी सरस्वती (यज्ञं वष्टु यज्ञं वहतु) हमारे यज्ञ, हमारे श्रेष्ठ एवं शुभ कर्मों का वहन करें, उसे सुशोभित करें, सफल करें।

वश कान्तौ
वाग्वै धियावसुः।

ऐतरेय. आर. १।१।४

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ताइव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि।।

ऋग्. २।४१।१६

(नदीतमे) ज्ञान की श्रेष्ठतम सरिता स्वरूप अथवा श्रेष्ठतम सरिता के समान पवित्र एवं सुखी करने वाली, (अम्बितमे) हे श्रेष्ठ माँ तथा (देवितमे) हे सर्वश्रेष्ठ देवि सरस्वति ! (अप्रशस्ता इव स्मसि) हम अप्रशस्त अर्थात् अयोग्य अथवा अप्रशंसनीय के समान हैं, (अम्ब) हे माँ ! (नः प्रशस्तिम् कृधि) हमें ज्ञान एवं समृद्धि देकर प्रशंसनीय बनाइये।

धाता ददधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः।
स नः पूर्णेन यच्छतु।।

अथर्ववेद. ७।१८।१

(धाता जगतः पतिः ईशानः) सबका धारण एवं पालन पोषण करने वाले, समस्त संसार के स्वामी एवं रक्षक तथा सभी पर शासन एवं नियन्त्रण करने वाले प्रभु (नः रयिं दधातु) हमें धन एवं ऐश्वर्य दें। (स नः पूर्णेन यच्छतु) वह हमें सब कुछ पूर्णरूपेण दें अर्थात् हमारा सम्पूर्ण अभ्युदय करें, हमें सब प्रकार का सुख, समृद्धि एवं वैभव दें तथा हमारा सब प्रकार से कल्याण करें।

'पूर्णेन यच्छतु' शब्दों का प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कितनी सुन्दर है यह प्रार्थना।

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या
महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैरा
प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥

यजुर्वेद ५।१९ (पाठभेद), अथर्ववेद. ७।२७।८

(विष्ण) हे विष्णु ! (दिव: उत पृथिव्या:) द्युलोक तथा पृथिवी से और (मह: उरो: अन्तरिक्षात्) महान विस्तृत अन्तरिक्ष से (बहुभि: वसव्यै: हस्तौ प्रणस्व) बहुत से अर्थात् अनेक प्रकार के तथा बहुत बड़ी मात्रा में धनों को अपने दोनों हाथों मे भर लीजिये (दक्षिणात् उत सव्यात्) और अपने दायें तथा बायें, दोनों हाथों से (आ प्रयच्छ) हमें प्रदान कीजिये।

कैसी श्रेष्ठ प्रार्थना है यह!

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि
चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां
स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥

ऋग्. २।२१।६

(इन्द्र) हे इन्द्र !, हे प्रभो ! (अस्मे श्रेष्ठानि द्रविणानि) हमें श्रेष्ठ धन, (दक्षस्य चित्तिं) कर्म करने का सामर्थ्य एवं उत्साह तथा सत्कर्म का ज्ञान और (सुभगत्वं) सौभाग्य (धेहि) दीजिये, (रयीणां पोषं तनूनां अरिष्टिं) धन एवं ऐश्वर्य का पोषण तथा शरीरों की निरोगिता दीजिये (वाचः स्वाद्मानं अह्नाम् सुदिनत्वं) एवं वाणी की मधुरता तथा दिनों की उत्तमता दीजिये अर्थात् हमारे जीवन के प्रत्येक दिन को उत्तम बनाइये ।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥

यजु. १९।९

हे प्रभो ! (तेजः असि तेजः मयि धेहि) आप तेजस्वी हैं, मुझ में तेज को धारण कीजिये, (वीर्यं असि वीर्यं मयि धेहि) आप पराक्रम से युक्त हैं, मुझ में पराक्रम धारण कीजिये अथवा मुझे पराक्रम दीजिये, (बलं असि बलं मयि धेहि) आप बल से युक्त हैं, मुझे बल दीजिये, (ओजः असि ओजः मयि धेहि) आप ओजस्वी हैं, मुझ में ओज अर्थात् कान्ति को धारण कीजिये, (मन्युः असि मन्युं मयि धेहि) आप दुष्टों पर क्रोध करने वाले हैं, मुझ में उस क्रोध को धारण कीजिये, अर्थात् मुझे भी शत्रु पर क्रोध करने की क्षमता दीजिये, (सहः असि सहः मयि धेहि) आप शक्ति से युक्त हैं, शत्रु का पराभव करने वाले हैं, शत्रु का पराभव करने की वह शक्ति मुझे दीजिये।

ओज: कान्ति: । सहो बलम् । मन्यु: क्रोध: ।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरद: शतं जीवेम शरद: शतꣳ शृणुयाम शरद: शतं प्र ब्रवाम शरद: शतमदीना: स्याम शरद: शतं भूयश्च शरद: शतात् ।।

यजुर्वेद. ३६।२४

(देवहितं) परब्रह्म द्वारा स्थापित,देवों का हित करने वाला (तत्) वह (शुक्रं) पवित्र, पाप रहित, प्रकाशमान (चक्षु:) आदित्य रूपी जगत का चक्षु (पुरस्तात् उच्चरत्) सृष्टि के आदि काल से ही ऊपर उदित हुआ है ।

अथवा, (तत् चक्षु: वह परब्रह्म समस्त संसार का चक्षु है, सबका मार्ग दर्शक है, सब को ज्ञान एवं प्रकाश देने वाला है, (देवहितम्) वह विद्वानों का हित करने वाला है, (शुक्रम्) शुद्ध स्वरूप है (पुरस्तात् उत् चरत) तथा अनादि काल से सबके ऊपर अपने दिव्य स्वरूप में स्थित है । (त्रिपाद् ऊर्ध्व उदैत् पुरुष: – यजुर्वेद)।

परमात्मा की कृपा से हम (पश्येम शरद: शतं) सौ वर्षों तक देखें, (जीवेम शरद: शतं) सौ वर्षों तक जीवित रहें, (शृणुयाम शरद: शतं) सौ वर्षों तक सुनें, (प्र ब्रवाम शरद: शतं) सौ वर्षों तक ठीक प्रकार बोल सकें, (अदीना: स्याम शरद: शतं) सौ वर्षों तक दीनता को प्राप्त हुये बिना, स्वाभिमान एवं सम्मान पूर्वक रहें, (भूय: च शरद: शतात्) तथा सौ वर्षों से भी अधिक समय तक हृष्ट पुष्ट होकर सुखी जीवन व्यतीत करें ।

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः॥

अथर्व.११।२।१६

हे परमेश्वर! आपको सायंकाल में नमस्कार है, प्रातःकाल में नमस्कार है, रात्रि में नमस्कार है तथा दिन में नमस्कार है। आपके सर्वोत्पादक एवं सर्व संहारक दोनों प्रकार के स्वरूपों को नमस्कार है।

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे॥

यजुर्वेद. ३६।२१

(नमस्ते अस्तु विद्युते) विद्युत में व्याप्त प्रभु को नमस्कार हो, (नमस्ते स्तनयित्नवे) गरज़ने वाले बादलों में स्थित प्रभु को नमस्कार हो अर्थात् सर्वव्यापक प्रभु को नमस्कार हो, (भगवन् ते नमः अस्तु) हे भगवन्! आपको प्रणाम हो, (यतः स्वः समीहसे) आप हमें सब प्रकार से सुख देते हैं।

ब्रह्म

ब्रह्मं जज्ञानं प्रंथमं पुरस्ताद्धि
सीमतः सुरुचो वेन आंवः।
स बुध्न्या उपमा अंस्य विष्ठाः
सतश्च योनिमसंतश्च वि वंः।।

साम. पूर्वा. ३।३।९, क्र.सं. ३२१, यजु. १३।३
अथर्व. ४।१।१ तथा ५।६।१

(प्रथमं पुरस्ताद्) सृष्टि की आदि से भी पहले अर्थात् अनादि काल से ज्ञान स्वरूप, सर्वज्ञ तथा सबको उत्पन्न करने वाला ब्रह्म प्रकट हुआ, उसने (वेनः सुरुचः) अपने मेधावी, कमनीय तथा शोभनीय रूप से प्रकाशित परम तेज को (सीमतः) सर्वत्र मर्यादा पूर्वक (वि+आवः व्यावः व्यवृणोत) फैलाया। (बुध्न्या विष्ठाः अस्य उपमाः) आकाश में विविध

स्थानों में स्थित सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह तथा नक्षत्रादि जिसकी उपमा स्वरूप हैं, (सः) उस ब्रह्म ने (सतः च असतः च योनिम्) सत् और असत् अर्थात् स्थूल एवं सूक्ष्म, व्यक्त एवं अव्यक्त पदार्थों की योनि अर्थात् उत्पत्ति की कारण भूत प्रकृति को (वि वः) विशेष रूप से विस्तृत किया अर्थात् अनेक रूपों में परिवर्तित करके उसका सर्वत्र विस्तार किया।

यद्यपि सत् शब्द मुख्य रूप से परमात्मा के लिये प्रयोग किया जाता है (ओ३म् तत् सत्), सत् तथा असत् के अनेक अर्थ हैं-

सत्- व्यक्त अर्थात् जो प्रत्यक्ष रूप से प्रकट है।

असत्- अव्यक्त, जो प्रकट नहीं है।

सत्- अविनाशी

असत्- नाशवान्

सामान्य भाषा में सत् का अर्थ है अच्छा और असत् का अर्थ है बुरा। जैसे 'असतो मा सद्गमय' आदि।

मृत्युर्वै तमो ज्योतिरमृतं। शतपथ. १४।४।३।३२

अन्धकार मृत्यु है, ज्योति अमृत है।

पाप्मानं मृत्युम्। शतपथ.१४।४।३।११

पाप मृत्यु रूपी है, मृत्यु के समान है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति।।

तैत्तिरीय उपनिषद् 3।1

जिससे यह सब भूत उत्पन्न होते है, उत्पन्न होकर जिसके आश्रय से जीवित रहते हैं और अन्त में जिसमें लीन होते हैं वही ब्रह्म है, उसे जानने की इच्छा करो।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो
दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वंद-
न्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

अथर्व. ९।१०।२८, ऋग्. १।१६४।४६

(एकं सत्) अविनाशी ब्रह्म एक ही है। उसी का विद्वान् लोग बहुत प्रकार से, अनेक नामों से वर्णन करते हैं। उसी को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान्, यम तथा मातरिश्वा कहते हैं।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ।।

श्वेताश्वतर उप. ४।४।२, यजु. ३२।१

वही अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही शुक्र है, वही जल है, वही प्रजापति है तथा वही ब्रह्म है।

यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि उपरोक्त अनेक नामों से एक ब्रह्म का ही बोध होता है। स्पष्ट है कि वेद में बहु देवता वाद नहीं है, केवल एक ब्रह्म की ही उपासना का विधान है। इसी आधार पर गीता ११।३९ में कहा गया है-

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ।।

आप ही वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति तथा प्रपितामह हैं। आपके लिये सहस्रों बार प्रणाम हो, आपको पुनः पुनः नमन एवं प्रणाम।

यह महत्वपूर्ण तथ्य सभी को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि ब्रह्म केवल एक है विद्वान लोग उसे भिन्न भिन्न नामों से कहते हैं। इन्द्र, अग्नि, वरुण, दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान्, यम तथा मातरिश्वा आदि सब उसी के भिन्न भिन्न नाम हैं। स्पष्ट है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा रुद्र आदि ब्रह्म के ही नाम है। ये कोई अलग –अलग देवता नहीं हैं पुराणों में भी यह बात स्वीकार की

गयी है किन्तु फिर भी इन सबका वर्णन अलग अलग देवता मान कर किया गया है, जो सर्वथा अनुचित है।

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।

स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ।।

विष्णु पुराण 1/2/66

भगवान एक ही हैं। उत्पत्ति, स्थिति, संहार की क्रियायों के कारण वह ब्रह्मा, विष्णु, और शिव रूप संज्ञाओं को प्राप्त हो जाते हैं।

ब्रह्मविष्णुशिवाब्रह्मन्प्रधाना ब्रह्मशक्तयः।

हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मा, विष्णु और शिव ब्रह्म की प्रधान शक्तियाँ हैं।

अथर्व वेद के निम्नांकित मन्त्रों मे यह बात अत्यन्त स्पष्ट रूप से कही गयी है कि ब्रह्म न दो हैं, न तीन हैं, न चार हैं, न पाँच हैं, न छह हैं,न सात हैं, न आठ हैं, न नौ हैं और न दस हैं। वह केवल एक ही है, निश्चित रूप से एक ही है और यह सम्पूर्ण जगत् उसी में स्थित है।

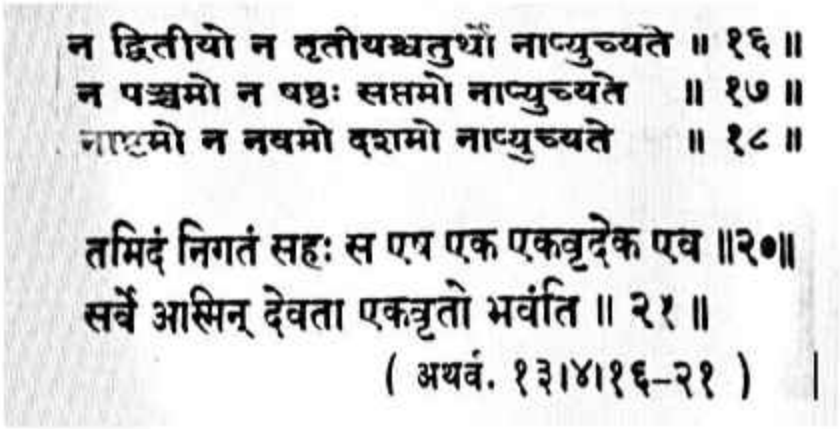

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ॥ १६ ॥
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ॥ १७ ॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ॥ १८ ॥

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥२०॥
सर्वे अस्मिन् देवता एकवृतो भवंति ॥ २१ ॥
(अथर्व. १३।४।१६-२१)

वह इकट्ठा हुआ सामर्थ्य है, एकीकृत शक्तिपुंज है। सर्व शक्तिमान है। वह एक है। एक मात्र व्यापक देव केल एक ही है। ये सभी देव उसमें एक रूप हो जाते हैं।

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यो देवानां नामधा एक एव तꣳ संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या।।

अथर्व. २।१।३ (पाठभेद) ऋग्. १०।८२।३
यजु. १७।२७

(यो नः पिता) जो हमारा पिता, पालन कर्ता तथा रक्षा करने वाला, (जनिता) जन्म देने वाला, (विधाता) जगत् का निर्माण करने वाला तथा कर्मों के अनुसार फल देने वाला है, (यः विश्वा भुवनानि) जो समस्त लोकों तथा (धामानि वेद) स्थानों को जानता है, (यः एकः एव) जो केवल एक ही है और जो (देवानां नामधा) समस्त देवों का नाम धारण करता है अर्थात् अग्नि, वायु, आदित्य आदि देवों के नाम भी जिसके लिये प्रयोग किये जाते हैं, (क्योंकि ये देव वास्तव में उसके द्वारा प्रदत्त शक्ति का ही प्रयोग करते हैं) (तं सं प्रश्नम्) उसी उत्तम प्रकार से प्रश्न किये जाने योग्य परमात्मा के प्रति (अन्या भुवना यन्ति) समस्त भुवन पहुँचते हैं अर्थात् समस्त लोक लोकान्तर उसी में समर्पित हैं, उसी पर आधारित हैं तथा अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं।

भगवान् के विषय में किसी ज्ञानी से प्रश्न पूछने पर ही उसके विषय में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

तात्पर्य यह है कि निरर्थक बातों को छोड़कर हमें भगवान के विषय में ही ज्ञानियों से विनम्रता पूर्वक प्रश्न पूछकर ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः।।

गीता. ४।३४

विनम्रता पूर्वक प्रणाम करके, भली प्रकार प्रश्न पूछकर तथा सेवा करके तत्वदर्शी ज्ञानियों से ज्ञान प्राप्त करो। वे ज्ञानी तुम्हें ज्ञान का उपदेश करेंगे।

दिव्यो गंन्धर्वो भुवंनस्य यस्पतिरेकं एव नंमस्यो विश्वीड्यंः। तं त्वा यौमि ब्रह्मंणा दिंव्य देव नमंस्ते अस्तु दिवि तें सधस्थंम्।।

अथर्व. २।२।१

(यः दिव्यः गन्धर्वः) जो पृथिवी आदि को धारण करने वाला है, (भवनस्य पतिः) जो समस्त जगत् का स्वामी है, (विक्षु एक एव नमस्यः ईड्यः च) संसार में जो केवल एक ही नमस्कार किये जाने तथा स्तुति किये जाने योग्य है, ऐसे (दिव्य देव) दिव्य देव, हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (तं त्वा यौमि ब्रह्मणा) उस आपसे मैं ज्ञान के द्वारा संयुक्त होता हूँ। (ते नमः अस्तु) आपके लिये प्रणाम हो, (दिवि ते सधस्थम्) आपका स्थान द्युलोक में है, परम व्योम में है।

गन्धर्वः- (गाँ पृथिवीं धारयतीति गन्धर्वः) निरु. १।१

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्रविश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिंन्निदꣳ सं च वि चैतिसर्वꣳ स ओतःप्रोतश्च विभूः
प्रजासु।।

अथर्व. २।१।१ (पाठभेद), यजु. ३२।८

(वेनः) ज्ञान के प्रकाश से युक्त श्रद्धावान् पुरुष (तत् सत्) उस अविनाशी नित्य परमात्मा को (निहितं गुहा पश्यत्) हृदय की गुहा में स्थित देखता है (यत्र विश्वं भवति एक नीडं) जहाँ, जिस परमात्मा में समस्त विश्व एक घोंसले में रहने वाले प्राणियों की तरह एक रूप हो जाता है। (तस्मिन् इदं सर्वं सं एति च) प्रलयावस्था में वह विश्व उस परमात्मा में लीन हो जाता है (च वि एति) तथा सृष्टि उत्पत्ति के समय उससे अलग हो जाता है (स विभूः) वह सर्वत्र एवं सर्व व्यापक परमात्मा (प्रजासु ओतः प्रोतः च) प्रजाओं में ताने बाने की तरह ओत प्रोत है।

(यत्र विश्वं भवति एक नीडं) का तात्पर्य यह है कि पक्षियों के घोंसले के समान, जिसमें एक प्रकार के ही पक्षी रहते हैं, परमात्मा एक ऐसा आश्रय स्थान है, जिसमें समस्त विश्व, समस्त प्राणी एक रूप हो जाते हैं। परमात्मा के समक्ष समस्त प्राणी एक समान हैं, उनमें कोई भिन्नता नहीं है क्योंकि सभी उसकी सन्तान हैं।

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आंविवेश भुवंनानि विश्वा। प्रजापंतिः प्रजयां सꣳ रराणस्त्रीणि ज्योतींꣳषि सचते स षोडशी।।

यजु. ८।३६, ३२।५ (पाठभेद)

(यस्मात् परः अन्यः न जातः अस्ति) जिससे श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है,(यः आविवेश भुवनानि विश्वा) जो समस्त लोक लोकान्तरों तथा समस्त प्राणियों एवं पदार्थों में व्याप्त हो रहा है, (सः षोडशी) सोलह कलायें उत्पन्न करने वाला वह (प्रजापतिः प्रजया संरराणः) प्रजापति समस्त प्रजाओं अर्थात् प्राणियों के साथ सम्यक् रूप से रमण करता हुआ, उन्हें रमाता हुआ तथा स्वयं उनमें रमता हुआ (त्रीणि ज्योतींषि सचते) सूर्य, विद्युत एवं अग्नि, इन तीन ज्योतिओं को उत्पन्न करके धारण करता है।

प्रश्नोपनिषद् में षोडश कलाओं का वर्णन निम्न प्रकार है-

ब्रह्म ने (१) प्राण को उत्पन्न किया तथा प्राण से

२. श्रद्धा

३. आकाश

४. वायु

५. अग्नि

६. जल

७. पृथिवी

८. इन्द्रिय

९. मन तथा

१०. अन्न को उत्पन्न किया और अन्न से

११. वीर्य

१२. तप

१३. मन्त्र

१४. कर्म

१५. लोक तथा लोकों में

१६. नाम

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथा-तथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।

यजु. ४०।८

वह सर्वव्यापक, वीर्यवान्, सर्वशक्तिमान्, तेजस्वी, शरीर रहित, निराकार, किसी प्रकार के घाव अथवा छिद्र आदि से रहित, अक्षत, स्नायु तन्तु आदि से रहित, पवित्र, निर्मल, पाप रहित, क्रान्तदर्शी, सर्वज्ञ, सर्वदृष्टा, त्रिकालदृष्टा, सब प्राणियों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला, (परिभूः) सर्वोपरि, सर्वनियन्ता, (स्वयंभूः) स्वयं ही प्रकट होने वाला, स्वयं अपनी ही सत्ता तथा शक्ति से स्थित रहने वाला (शाश्वतीभ्यः समाभ्यः) शाश्वत रूप से अनादि काल से (याथा तथ्यतोर्थान् व्यदधात्) ठीक ठीक, यथायोग्य, यथार्थ भाव से समस्त पदार्थों अथवा कार्यों की व्यवस्था करता है।

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।

ऋग्वेद,१०।९०।२, (पाठभेद), अथर्ववेद,१९।६।४,(पाठभेद), यजुर्वेद,३१।२
सामवेद पूर्वाचिक, ६।४।५-६, क्र. सं. ६१९ (पाठभेद)

भूत, वर्तमान तथा भविष्य में, जो कुछ था, जो कुछ है और भविष्य में जो कुछ होगा, वह सब पुरुष ही है, ब्रह्म ही है। वह उस अमृतत्व अर्थात् जीवात्मा का भी ईश्वर है, स्वामी है, जो शरीर में अन्न के साथ बढ़ता है।

आत्मा शरीर में व्याप्त रहता है और शरीर अन्न से बढ़ता है किन्तु आत्मा के बिना शरीर नहीं बढ़ सकता अतः मन्त्र में आलंकारिक ढंग से आत्मा को ही अन्न के साथ बढ़ने वाला कहा गया है।

अथर्व वेद.१९।६। ४ में 'यदन्ने नाति रोहति' के स्थान पर 'यदन्येनाभवत्सह' है।

(यत् अन्येन सह अभवत्) जो दूसरे के साथ अर्थात् दूसरे मरणधर्मा शरीर के साथ होता है। इसका तात्पर्य भी आत्मा से ही है क्योंकि यह नाशवान् शरीर के साथ जन्म लेता है और आजीवन उसके साथ रहता है।

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि ॥

अथर्व.१९।६।३(पाठभेद) यजु. ३१।३,
साम पूर्वा. ६।४।६ क्र सं. ६२०, ऋग्वेद,१०।९०।३,

(एतावान् अस्य महिमा) यह समस्त ब्रह्माण्ड उसकी महिमा है, इस विश्व से केवल उसकी महिमा का बोध होता है। (च पूरुषः अतः ज्यायान्) वह पुरुष तो इससे कहीं अधिक महान् और श्रेष्ठ है, (विश्वा भूतानि अस्य पादः) समस्त चराचर जगत् केवल उसका एक पाद है, एक अंश है। (अस्य त्रिपाद् अमृतं दिवि) उसके तीन पाद द्युलोक में अपने अमृत स्वरूप में स्थित हैं।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥

ऋग्वेद, १०।९०।४, यजुर्वेद,३१।४

उस परब्रह्म के एक अंश से उत्पन्न होने वाली यह सृष्टि परिवर्तित होती रहती है, पुनः पुनः उत्पन्न एवं लय होती रहती है किन्तु उसके तीन पाद अर्थात् वह पूर्ण पुरुष अपने अमृत स्वरूप में सदा अविकारी, अपरिवर्तनीय, आनन्दमय एवं ध्रुव होकर (ऊर्ध्व) सबके ऊपर प्रकाशित रहता है।

वह ब्रह्म अन्न खाने वाले तथा न खाने वाले सभी प्राणियों तथा पदार्थों में सब ओर से व्याप्त है।

स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था,
महीं क्षेमं रोदसी अस्कभायत्।
महान् मही अस्कभायद् वि,
जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः।।

अथर्व. ४।१।४

(स हि दिवः) वही द्युलोक को तथा (स पृथिव्याः ऋतस्था) वही पृथिवी को अपने सत्य नियमों से स्थित रखने वाला है, उसी ने (मही रोदसी) महान् द्युलोक और पृथिवी को (क्षेमं अस्कभायत्) समस्त प्राणियों के घर के समान धारण किया हुआ है। (महान् जातः) प्रकट हुये उस महान् देव ने (महीं द्यां सद्म पार्थिवं रजः च) महान् द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा हमारे विस्तृत निवास रूपी पृथिवी को (वि अस्कभायत्) पृथक् पृथक् धारण किया हुआ है।

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धु-
र्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्या-
न्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ।।

अथर्व. ४।१।३

(यः प्र जज्ञे) जो ज्ञान स्वरूप ब्रह्म सर्व प्रथम प्रकट हुआ, (अस्य बन्धुः विद्वान्) जो विद्वान् उसका बन्धु होता है, उसका कृपा पात्र होता है, वह (विश्वा देवानां जनिता विवक्ति) समस्त देवों के जन्मों के, उनकी

उत्पत्ति आदि के विषय में सत्य विवरण का कथन करता है। (ब्रह्म ब्रह्मणः उज्जभार) परब्रह्म से ब्रह्म अर्थात् समस्त वेद तथा सत्य ज्ञान का प्रकाश हुआ है तथा (मध्यात् नीचैः उच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ) उसके मध्य से, निम्न भाग से और उच्च भाग से उसकी धारक शक्तियाँ सब ओर से फैली हुयी हैं।

महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे।
तस्मिन्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः।।

अथर्व. १०।७।३८

(सलिलस्य पृष्ठे) इस गतिशील संसार के आधार के रूप में, (भुवनस्य मध्ये महत् यक्षं) ब्रह्माण्ड के मध्य में एक महान पूजनीय देव है, जो (तपसि क्रान्तं) अपने ज्ञानमय तप तथा ऐश्वर्य में सर्वश्रेष्ठ है। (तस्मिन् ये उ के च देवाः श्रयन्ते) जो कोई भी देव हैं, दिव्य शक्तियाँ हैं, वह उसमें उसी प्रकार आश्रित हैं जैसे, (वृक्षस्य स्कन्धः परितः शाखा इव) वृक्ष की शाखायें उसके स्कन्ध अथवा तने (जड़ से ऊपर के मोटे भाग) के चारों ओर आश्रित होती हैं।

सलिल- गतिशील संसार- सृगतौ
यक्ष पूजायाम्- पूजनीय
तपसि- तप में।
तपसि- तप ऐश्वर्यो यस्य ज्ञानमयं तपः- उपनिषद्
सहः बल नाम।

निघण्टु. २।९

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिंन्देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।।

अथर्व. ९।१०।१८ (पाठभेद), ऋग्.१।१६४।३९

(ऋचः) समस्त ऋचायें, समस्त वेद मन्त्र (व्योमन् व्योमनि व्योम सदृशे) आकाश के समान सर्वव्यापक अथवा (वि ओमन्) विशेष रूप से रक्षा करने वाले उस (परमे) सर्वोत्कृष्ट (अक्षरे) ओ३म् वाच्य अविनाशी परब्रह्म में आश्रित हैं तथा उसी का प्रतिपादन, वर्णन एवं गुणगान करते हैं, (यस्मिन् विश्वे देवाः अधि निषेदुः) जिसमें समस्त देव आश्रित होकर स्थित हैं। (यः तत् न वेद) जो उस परमात्मा को नहीं जानता, अथवा जिसने वेदों का अध्ययन करके भी उसे नहीं जाना, (ऋचा किं करिष्यति) वह ऋचाओं से क्या करेगा अर्थात् उसके वेदाध्ययन से क्या लाभ? (ये तत् विदुः) जो विद्वान् उसे जानते हैं, (ते इत्) वे ही (इमे सम् आसते) उस परब्रह्म में सम्यक् रूप से स्थित होते हैं, ब्रह्म साक्षात्कार करके मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

कठोपनिषद् में भी स्पष्ट रूप से कहा है कि समस्त वेद उस ओ३म् वाच्य ब्रह्म का ही वर्णन करते हैं, उसी का निरूपण एवं प्रतिपादन करते हैं।

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

कठोनिषद्, १।२।१५

समस्त वेद जिस परम पद का प्रतिपादन करते हैं, समस्त तप जिसको प्राप्त करने के साधन हैं, जिसको प्राप्त करने की इच्छा से साधक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, वह पद तुम्हें संक्षेप में बताता हूँ, वह ओ३म् है।

पूर्णात्पूर्णमुदचति पूर्ं पूर्णेन सिच्यते।
उतो तद्य विद्याम यतस्तत्परिषिच्यते॥

अथर्व. १०।८।२९

(पूर्णात्) पूर्ण ब्रह्म से (पूर्णम् उदचति) यह पूर्ण संसार उत्पन्न होता है (पूर्ण) तथा पूर्ण ब्रह्माण्ड (पूर्णेन सिच्यते) उस पूर्ण ब्रह्म द्वारा सींचा जाता है, उसी के द्वारा प्रवाहित जीवन रस से इसका पालन पोषण होता है (उतो) और (तत् अद्य) आज हम उसे (विद्याम) जानें, उसे जानने का प्रयास करें, (यतः) जिससे (तत्) वह संसार अथवा संसार रूपी वृक्ष (परि सिच्यते)

सब ओर से, सब प्रकार से सींचा जाता है।

ब्रह्म जिज्ञासा का कैसा सुन्दर मन्त्र है यह, जिसमें इस संसार को पूर्ण कहा गया है। जो लोग इस जगत् को मिथ्या कहते हैं, उन्हें यह मन्त्र ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिये।

एको देवः सर्व भूतेषु गूढः, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः, साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

श्वेताश्वतर उपनिषद्, ६।११

(एकः देवः सर्व भूतेषु गूढः) वह देव केवल एक है तथा समस्त प्राणियों एवं पदार्थों में अन्तर्यामी रूप से स्थित है। गूढ का तात्पर्य यह है कि वह सब भूतों में स्थित होते हुये भी देखा नहीं जा सकता। वह (सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा) सर्वव्यापी और सब प्राणियों का अन्तरात्मा है, (कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः) समस्त प्राणियों के कर्मों का फल देने वाला है तथा समस्त प्राणियों का आधार है, समस्त प्राणी उसी में निवास करते हैं, जिसके कारण उसे जगन्निवास कहा जाता है। (साक्षी चेता केवलो निर्गुणः च) वह सभी प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को तथा समस्त संसार के सम्पूर्ण व्यापार को देखने वाला है तथा स्वयं निर्लिप्त, विशुद्ध एवं ज्ञानस्वरूप होते हुये वह समस्त प्राणियों को चेतना, प्रेरणा एवं ज्ञान प्रदान करने वाला है और सत्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों से ऊपर है।

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता।
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यची हितम्।।

अथर्व. १०।२।२५

(ब्रह्मणा भूमिः विहिता) ब्रह्म के द्वारा यह पृथिवी विशेष प्रकार से स्थापित की गयी है, (ब्रह्म द्यौः उत्तरा हिता) ब्रह्म ने द्युलोक को ऊपर रखा है (च ब्रह्म इदं अन्तरिक्षं) तथा ब्रह्म ने ही इस अन्तरिक्ष को (ऊर्ध्वं तिर्यक् व्यचः हितम्) ऊपर, तिरछा तथा चारों ओर फैला हुआ स्थापित किया है।

यो विद्यात्सूत्रं वितंतं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात्स विद्याद् ब्राह्मणं महत्।।

अथर्व. १०।८।३७

(यः विततं सूत्रं विद्यात्) जो उस सर्वत्र फैले हुये सूत्र को जानता है, (यस्मिन् इमाः प्रजाः ओताः) जिसमें ये प्रजायें पिरोई हुई हैं और (सूत्रस्य सूत्रं यः विद्यात्) जो उस सूत्र के सूत्र को भी जानता है, (सः महत् ब्राह्मणं विद्यात्) वह उस महान् ब्रह्म को जानता है।

सूत्रात्मा वायु अथवा समष्टि प्राण ही वास्तव में वह सूत्र है जिसमें यह समस्त प्राणी पिरोये हुये हैं और इस विश्व प्राण का सूत्र वह ज्येष्ठ ब्रह्म है।

वायुर्वै गौतम तत्सूत्रम्। वायुना वै गौतम सूत्रेणायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदब्धानि भवन्ति। शतपथ. १४।६।७।६

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते। तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।।

अथर्व. १०।८।१३ (पाठभेद), यजु. ३१।१९

(प्रजापतिः चरति गर्भे अन्तः) प्रजापति गर्भ के अन्दर प्रवेश करता है तथा (अजायमानः बहुधा विजायते) अजायमान होते हुये भी बहुत प्रकार से जन्म लेता है। (तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीराः) उसके स्वरूप को धीर पुरुष भली प्रकार देखते हैं। (तस्मिन् ह तस्थुः भुवनानि विश्वा) उसी परमात्मा में समस्त लोक स्थित हैं।

मंत्र के अन्तिम अंश से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ प्रजापति का अर्थ परमात्मा है, प्राण अथवा जीवात्मा नहीं।

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः।।

श्वेता. उप. ४।३, अथर्व. १०।८।२७

हे परमात्मन्! (त्वं स्त्री) आप ही स्त्री हैं, (त्वं पुमान् असि) आप ही पुरुष हैं, (त्वं कुमारः) आप ही कुमार हैं (उत वा कुमारी) और आप ही कुमारी हैं। (त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि) आप ही वृद्ध होने पर दण्ड के सहारे चलते हैं और (त्वं जातः) और आप ही अनेक प्रकार से संसार में उत्पन्न होकर (भवसि विश्वतो मुखः) समस्त प्रकार के मुखों वाले, समस्त प्रकार के रूपों वाले होते हैं।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्यतदुसर्वस्यास्य बाह्यतः।।

यजु. ४०।५

(तत् एजति) वह चलता है, (तत् न एजति) वह नहीं चलता है। (तत् दूरे तत् उ अन्तिके) वह दूर है और वह समीप है, (तत् अस्य सर्वस्य अन्तः) वह इस सब के अन्दर है (तत् उ अस्य सर्वस्य बाह्यतः) और वह इस सब के बाहर भी है

अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य।
सम्राडेको वि राजति।।

साम. उत्त. १८।४।३(३) क्र. सं. १७१०,
यजु. १२।११७ (पाठभेद), अथर्व ६।३६।३

(भूतस्य भव्यस्य) भूत, भविष्य (तथा वर्तमान) के प्राणि मात्र का (काम्यः) प्रायणीय अर्थात् उनकी कामना का विषय, उनकी कामनाओं को पूर्ण करने वाले, (अग्निः) सब का अग्रणी प्रकाश स्वरूप परमेश्वर ही (परेषु धामसु) दूर दूर के स्थानों में भी (सम्राट् एकः) विश्व के एक मात्र सम्राट् के रूप में (विराजति) विशेष रूप से शोभायमान हो रहा है।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।

यजु. ४०।४

(एकं अनेजत् मनसः जवीयः) परमात्मा केवल एक है, वह कम्पन रहित अथवा अचल होते हुये भी मन से भी अधिक वेगवान् है। (एनत् देवाः न आप्नुवन्) उस ब्रह्म को देव अथवा इन्द्रियाँ प्राप्त नहीं कर सकतीं अर्थात् अगोचर होने के कारण वह चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता, (पूर्वं अर्षत्) वह सर्वत्र पहले से ही पहुँचा हुआ है अथवा वह सबसे पुरातन है और सबको (ऋष=गति) गति, स्फूर्ति एवं प्रेरणा देने वाला है। (तत् तिष्ठत् धावतः अन्यान् अत्येति) वह स्थिर रहते हुये भी अन्य सभी दौड़ने वालों से आगे निकल जाता है। (तस्मिन् अपः मातरिश्वा दधाति) उस ब्रह्म में अथवा उसके आधार से ही, वायु जलों को मेघादि के रूप में धारण करता है अथवा उसके आधार से ही (मातरि+श्वा) माता के गर्भ में रहने वाला जीवात्मा (अपः) पूर्ण जन्म के क्षय न हुये अपशिष्ट कर्मों को (दधाति) धारण करता है।

उपनिषदों में ब्रह्म का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं

तथारसंनित्यमगन्धवच्चयत्।

अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं

निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्य ते।।

कठ 1। 3। 15

जो शब्द अथवा वाणी से परे है, जिसे स्पर्श नहीं किया जा सकता, जिसका कोई रूप नही है, जो अविनाशी है, जिसे जिह्वा से नही चखा जा सकता, जो नित्य है, गन्ध रहित है, अनादि है, अनन्त है, जो सबसे महान है, सबसे श्रेष्ठ तथा ध्रुव है, उस परब्रह्म को जानकर ही मृत्यु से छुटकारा प्राप्त होता है।

अणोरणीयान्महतो महीया–

नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको

धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।।

कठ 1। 2। 20 **श्वेता उप 3। 20**

हृदय रूपी गुहा में रहने वाला परमात्मा सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म और महान् से भी महान् है, उस परमात्मा की महिमा को कामना एवं शोक रहित साधक, परमेश्वर की कृपा से ही देख पाता है।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा

रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

कठ 2। 2। 20

जिस प्रकार संसार में प्रविष्ट एक ही वायु नाना रूपों वाली वस्तुओं में प्रवेश करके उन्हीं के समान रूप वाला हो जाता है, उसी प्रकार सब प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुये भी समस्त प्राणियों में उन्ही के समान रूप वाला होकर उनके अन्दर तथा बाहर स्थित रहता है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं

नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं

तस्य भासा सर्वमिदंविभाति।।

कठ उप 2। 2।15 **मुण्डक उप 2। 2। 10**

श्वेता उप 6।14

वहाँ न सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा, न तारागण, ये बिजलियाँ भी वहाँ प्रकाशित नहीं होतीं, फिर यह अग्नि वहाँ कैसे प्रकाशित हो सकती है ? उस परब्रह्म के प्रकाशित होने से ही यह सूर्य आदि उसी के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। उसी के प्रकाश से समस्त जगत प्रकाशित होता है, आलोकित एवं सुशोभित होता हैं।

यदिदं किं च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।

महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदरमृतास्ते भवन्ति।।

कठ 2। 3। 2

यह ब्रह्म उठाये हुये वज्र को हाथ में लिये हुये के समान महान भय उत्पन्न करने वाला है। इस समस्त संसार में जो कुछ भी है और जो प्राणों से चलने वाले, जीवित रहने वाले प्राणी हैं, वह सब इसके भय से ही अपना अपना कार्य करते हैं। जो उसे जानते है, वह जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाते हैं।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।

भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः।।

कठ । 2। 3। 3

उसी ब्रह्म के भय से अग्नि तपता है, उसी के भय से सूर्य तपता है, उसी के भय से विद्युत चमकती है, उसी के भय से वायु चलती है और पाँचवीं मृत्यु भी उसी के भय से दौड़ दौड़कर अपना काम करती है।

यही बात तैत्तिरीय उपनिषद् की वल्ली दो अनुवाक आठ मे निम्न प्रकार कही गयी है।

भीषास्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः।

भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पंचम इति।

इसी परमात्मा के भय से वायु चलती हैं, सूर्य उदय होता हैं, अग्नि और इन्द्र अपना काम करते हैं और पाँचवी मृत्यु दौड़ती है।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।

गीता 13।13

वह परमात्मा सब ओर हाथ तथा पैर वाला, सब ओर नेत्र, शिर एवं मुख तथा सब ओर कान वाला है। वह समस्त संसार को आवृत एवं व्याप्त करके स्थित है।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।

सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्।।

श्वेता 3। 17

ब्रह्म मे सभी इन्द्रियों के गुणों का आभास होता है, यद्यपि वह समस्त इन्द्रियों से रहित है। वह सब का प्रभु, शासक और सबका महान आश्रय है सभी उसकी शरण में रहते हैं।

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एन-
मेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ २०॥

श्वेता. उप 4। 20

इसका स्वरूप किसी ऐसे स्थान में नही है जहाँ इन्द्रियों द्वारा उसे प्राप्त किया जा सके। इसे कोई भी नेत्रों से नही देख सकता। जो हृदय में स्थित इस परमान्मा को पवित्र मन और

बुद्धि से जान लेतें हैं वह अमृत हो जाते हैं, मृत्यु के बन्धन से छूट जाते हैं।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ता-
द्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥ ७॥

ईश्वरों के भी ईश्वर देवताओं के भी परम देव, पतियों अर्थात् रक्षा करने वालों में सबसे परम पति, देवो में सबसे श्रेष्ठ देव तथा समस्त विश्व के अधिपति उस पूजनीय देव को मैं जानता हूँ।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं यजुर्वेद 31। 18

न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके
न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो
न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः॥ ९॥

श्वेता उप 6। 9

लोक में उसका कोई स्वामी नही है, उसका कोई शासक नही है, उसका कोई लिंग नही है। वह सबकी उत्पत्ति का कारण है, न उसे कोई जन्म देने वाला है और न कोई उसका अधिपति है।

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥ १३॥

श्वेता उप 5। 13

इस गहन संसार के मध्य में उस अनादि, अनन्त, विश्व के रचयिता, अनेक रूप धारण करने वाले, तथा समस्त संसार को व्याप्त करने वाले उस एक मात्र देव को जानकर जीवात्मा समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः।।

मुण्डकोपनिषद् 2। 2। 9

वह निर्मल ब्रह्म स्वर्णिम, ज्योतिर्मय परम कोश में विद्यमान रहता है। वह समस्त ज्योतियों की ज्योति है, उसे आत्मज्ञानी पुरुष जानते हैं

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्व भूतगुहाशयः।

सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः।।

श्वेता उप 3।11

वह भगवान सब ओर मुखोंवाला सब ओर शिरो वाला और सब ओर ग्रीवोंवाला है, वह सम्पूर्ण जीवोंके अन्तः करणों में बुद्धियों में स्थित सर्वव्यापी है, सर्वगत और मंगलरूप है।

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टियिष्यन्ति मानवाः।

तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति।।

श्वेता उप 6। 20

जब मनुष्य आकाश को चमड़े के समान लपेट लेंगे तभी उनके दुःखों का अन्त परमात्मा को जाने बिना हो सकेगा।

तात्पर्य यह है कि ब्रह्म को जाने बिना दुःखों का अन्त नही हो सकता।

ओ३म्

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर । क्लिबे स्मर । कृतꣳ स्मर ।।

यजुर्वेद, ४०।१५

(वायुः अनिलं अमृतम्) मृत्यु के समय यह प्राण वायु अमृत अर्थात् अविनाशी कारण रूप समष्टि वायु में विलीन हो जाता है (अथ इदं शरीरम् भस्मान्तं) और इस शरीर का अन्त भस्म के रूप में हो जाता है। (ओ३म् कृतो स्मर) हे कर्म करने वाले जीव! ओ३म् का स्मरण करो । (क्लिबे स्मर) अपनी सामर्थ्य की वृद्धि के लिये ओ३म् का स्मरण करो। (कृतं स्मर) अपने द्वारा किये गये कर्मों का स्मरण करो।

ओ३म् क्रतो स्मर ।

हे कर्म करने वाले जीव! ओ३म् का स्मरण करो।

ओ३म् का ज्ञान, उसका जप तथा उसकी साधना ही पुरुष के परम कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है।

आद्यं यत्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता ।
स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् ।। मनु. ११।२६५

संसार का आदि कारण, तीन अक्षर वाला जो 'ओ३म्' वाच्य ब्रह्म है, जिसमें समस्त त्रयी विद्या अर्थात् वेदविद्या प्रतिष्ठित है, वह स्वयं ही गुह्य अर्थात् अदृश्य त्रिवृत् वेद है जो उस परब्रह्म को जानता है, वही वेदवित् है।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

कठोपनिषद्, १।२।१६

यह अक्षर ही, यह अविनाशी ओ३म् ही ब्रह्म है, यह अक्षर ही सर्वश्रेष्ठ है। इस अक्षर को ही जानकर, जो जिस वस्तु की इच्छा करता है, वह उसको प्राप्त हो जाती है अर्थात् इसके ज्ञान तथा इसकी उपासना से पुरुष को अभीष्ट फल एवं कामना की प्राप्ति होती है।

एतदालम्बनः श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

कठोपनिषद्, १।२।१७

यह ओ३म् ही श्रेष्ठ आलम्बन है, यही आलम्बन सर्वश्रेष्ठ है। इस आश्रय को, आलम्बन को भली प्रकार ज्ञानपूर्वक जानकर, प्राप्त कर, पुरुष ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है।

ओमित्येदक्षरमिदः सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव । यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥

माण्डूक्य उपनिषद्, १

(ओम् इति) ओ३म् (एतद् अक्षरं) यह अविनाशी ब्रह्म है। (इदं सर्वं तस्य उपव्याख्यानम्) यह सब, सारा संसार उसी का विस्तार है, उसी की महिमा है। (भूतं भवत् भविष्यत्) भूत, वर्तमान तथा भविष्य (इति सर्वं ओङ्कारः एव) यह सब ओङ्कार ही है (च यत् अन्यत् त्रिकाल अतीतम्) और इसके अतिरिक्त तीनों कालों से जो बाहर है, (तद् अपि ओङ्कार एव) वह भी ओङ्कार ही है।

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्।

माण्डूक्य उपनिषद्, ६॥

(एषः सर्वेश्वरः) यह ओ३म् सर्वेश्वर है, (एषः सर्वज्ञः) यह सर्वज्ञ है, (एषः अन्तर्यामी) यह सब में अन्तर्यामी रूप से स्थित है, (एषः सर्वस्य योनिः) यह समस्त जगत् के उत्पन्न होने का कारण है और (हि) निश्चय ही (भूतानाम् प्रभवाप्ययौ) यह समस्त प्राणियों एवं पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का कारण है।

ओमिति ब्रह्म। ओमितीदꣳसर्वम्।

तैत्तिरीय उपनिषद, १।८

ओ३म् यह ब्रह्म है। यह समस्त संसार ओ३म् है, उसी का रूप है उसी की महिमा है, कण कण में उसी की सत्ता प्रतिभासित हो रही है।

अध्यात्मम् आत्मभैषज्यम् आत्मकैवल्यम् ओङ्कारः।

गोपथ ब्राह्मण, पूर्वभाग १, कण्डिका, ३०॥

ओङ्कार अध्यात्मम्, आत्मभैषज्य तथा आत्मकैवल्य है।

अध्यात्मम्– ओ३म् आत्मज्ञान का अधिकरण अर्थात् आधार है। ओ३म् का ध्यान करने से आत्म ज्ञान प्राप्त होता है।

आत्मभैषज्यम्– ओ३म् आत्मा का औषध है। इसके जप, ध्यान तथा चिन्तन से आत्मा के समस्त दोष दूर हो जाते हैं और आत्मा पूर्णरूपेण निर्मल हो जाता है।

आत्मकैवल्यम्– ओ३म् का ध्यान आत्मा को मोक्ष देने वाला है।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

मुण्डक उपनिषद्, २।२।४

(प्रणवः धनुः) ओंकार को धनुष, (शरः आत्मा) आत्मा को वाण (ब्रह्म तत् लक्ष्यम् उच्यते) तथा ब्रह्म को उसका लक्ष्य कहा जाता है। अतः (अप्रमत्तेन शरवत्) आलस्य रहित होकर अपने आत्मा को वाण के सदृश

ब्रह्म रूपी लक्ष्य में (वेद्धव्यम्) बींधना चाहिये तथा (तन्मय: भवेत्) उस ब्रह्म में तन्मय हो जाना चाहिये।

इस प्रकार भक्ति पूर्वक किये गये ओ३म् के जप तथा ध्यान से और श्रेष्ठ कर्मों एवं ज्ञान की सहायता तथा करुणामय भगवान् की कृपा से मनुष्य निश्चित रूप से ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है।

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत् ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद्, १।१।१४

(स्वदेहम्) अपने शरीर को (अरणि) नीचे की अरणि, (च प्रणवं उत्तरारणिम् कृत्वा) तथा ओङ्कार को ऊपर की अरणि बनाकर (ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्) ध्यान के द्वारा निरन्तर मन्थन रूपी अभ्यास करके (निगूढवत्) अरणि में छिपे हुये अग्नि की भाँति हृदय में गूढरूप से स्थित (देवं पश्येत्) परमेश्वर का साक्षात् दर्शन करे।

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविध: स्मृत:।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिता: पुरा ॥

गीता १७।२३

(ॐ तत् सत् इति ब्रह्मण: त्रिविध: निर्देश: स्मृतः) ॐ, तत्, सत् इन तीन प्रकार से सच्चिदानन्द घन ब्रह्म का निर्देश किया गया है। उसी के द्वारा सृष्टि के आदि काल में ब्राह्मण, वेद तथा यज्ञों की रचना की गयी है।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतप: क्रिया: ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ता: सततं ब्रह्मवादिनाम् ।।

गीता, १७।२४

अत: ब्रह्मवादियों की, वेद के विद्वानों की शास्त्र विधि से नियत की हुयी यज्ञ, दान तथा तप की क्रियायें सदा ओ३म् के उच्चारण के साथ ही प्रारम्भ होती हैं।

वास्तव में सभी वेदानुकूल श्रेष्ठ कर्म तथा वेद मन्त्रों का पाठ ओ३म् का उच्चारण करने के उपरान्त ही किये जाने का विधान है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

गीता, ८।१३

जो पुरुष 'ॐ', इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करते हुये तथा (माम्) मुझको अर्थात् भगवान् को स्मरण करते हुये शरीर त्याग करके जाता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति तपाःसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

कठोनिषद्, १।२।१५

समस्त वेद जिस परम पद का प्रतिपादन करते हैं, समस्त तप जिसको प्राप्त करने के साधन हैं, जिसको प्राप्त करने की इच्छा से साधक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, वह पद तुम्हें संक्षेप में बताता हूँ, वह ओ३म् है।

तस्य वाचकः प्रणवः।

योगदर्शन, समाधि पाद, २७।

उस परब्रह्म का वाचक प्रणव अथवा ओ३म् है। परब्रह्म तथा ओ३म् का यह वाच्य-वाचक सम्बन्ध कृत्रिम नहीं प्रत्युत नित्य है।

वास्तव में ओ३म् ही भगवान् का सर्वश्रेष्ठ एवं मुख्य नाम नाम है।

तज्जपस्तदर्थभावनम्।

योगदर्शन, समाधि पाद, २८॥

प्रणव अथवा ओ३म् का ध्यानपूर्वक एकाग्र चित्त से तथा भक्तिभाव से जप करना चाहिये और उसी की भावना, उसी का विचार श्रद्धापूर्वक अपने हृदय, मन तथा बुद्धि में स्थिर करना चाहिये।

अवतेष्टिलोपश्च।

उणादि कोष, प्रथम पाद:, सूत्र, १४२

इस सूत्र के अनुसार 'अव रक्षणे' धातु से मन प्रत्यय करने पर ओ३म् शब्द सिद्ध होता है तथा इसके साथ कार 'प्रत्यय' करने पर ओंकार शब्द

निष्पन्न होता है।

स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है-

अवतीत्योम् आकाशमिव व्यापकत्वात्खम्, सर्वेभ्यो बृहत्वाद् ब्रह्म। सत्यार्थ प्रकाश (प्रथम समुल्लास)

रक्षा करने से ओम्, आकाशवत् व्यापक होने से खम् तथा सबसे बड़ा होने से ब्रह्म, ईश्वर के नाम हैं।

जन्माद्यस्य यतः। वेदान्त दर्शन, १।१।२

इस संसार का जन्म आदि अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय जिससे होती है वह ब्रह्म है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तितद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति ।।

तैत्तिरीय उपनिषद्, ३।१

निश्चय ही ये सब प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवित रहते हैं तथा अन्त में इस लोक से प्रयाण करते हुये जिसमें प्रवेश करते हैं, उसको जानने की इच्छा करो, वह ब्रह्म है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म ।।

यजु. ४०।१७

(सत्यस्य मुखम् हिरण्मयेन पात्रेण अपिहितम्) सत्य का मुख हिरण्मय पात्र से ढंका हुआ है, (यो असौ आदित्ये पुरुषः) जो वह आदित्य में पुरुष है अर्थात् पूर्ण परमात्मा है, (सः असौ अहम्) वही (असौ) प्राणों में रहने वाला मैं (जीवात्मा) हूँ। (ओ३म् खं ब्रह्म) आकाश के समान सर्वव्यापक ब्रह्म ओ३म् है, अर्थात् ओ३म् पद वाच्य है।

जीवात्मा का वर्णन

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार। देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान॥

साम. क्र.सं. १७८२, अथर्व. ९।१०।९, (पाठभेद), ऋग्. १०।५५।५

(विधुं समने बहूनां दद्राणं) विविध कर्मों को करने वाले और युद्ध में बहुत से शत्रुओं को भगाने वाले, (युवानं सन्तं पलितः जगार) युवा पुरुष को भी मृत्यु रूपी वृद्ध ने निगल लिया। (देवस्य महित्वा पश्य काव्यं) भगवान् की महिमा से पूर्ण इस अनोखी सामर्थ्य को, उनके महत्व से पूर्ण इस अद्भुत कर्म को देखो। (यः ह्यः समान) जो कल जीवित था वह (अद्या ममार) आज मर गया और जो (ह्यः ममार) कल मर गया वह (अद्य समान) आज पुनः जीवन धारण कर रहा है।

तात्पर्य यह है कि आत्मा अमर है और मृत्यु के पश्चात् नवीन शरीरों में चला जाता है, जैसा कि गीता में कहा गया है।

अनच्छये तुरगातु जीवमेजत् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।।

ऋग्. १।१६४।३०, अथर्व. ९।१०।८

(तुरगातु) शीघ्र गतिमान होते हुये भी (जीवं) जीवात्मा (ध्रुवं) स्थिर होकर (पस्त्यानाम्) शरीर रूपी गृहों में (अनत् शये) प्राण शक्ति से सम्पन्न होकर रहता है और शरीर को (एजत्) गतिमान् करता है। (मृतस्य अमर्त्यः जीवः) मृत व्यक्ति का अमर जीवात्मा (मर्त्येन) अपने कर्म जनित संस्कारों के साथ नये मरणधर्मा शरीर में, (सयोनिः) उस शरीर की समान योनि में (स्वधाभिः चरति) अपनी धारक शक्तियों के साथ चला जाता है।

तात्पर्य यह है कि जो योनि आत्मा को प्राप्त होती है, उसी योनि के शरीर में आत्मा चला जाता है। यदि मनुष्य की योनि प्राप्त हुयी तो मनुष्य शरीर में चला जाता है और किसी पशु की योनि प्राप्त हुयी तो उस पशु के शरीर में चला जाता है।

पस्त्यं गृहनाम् (निघण्टु. ३।४)

अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं मातुर्गर्भं पितुरसुं युवानम्।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः।।

अथर्व. ७।२।१

(अथर्वाणं पितरः) अपने पास, अपने शरीर में जीवन पर्यन्त रहने वाले तथा पिता के समान रक्षा करने वाले (देव बन्धुं) देवों के बन्धु शरीर में सब देवों के अशों को बन्धुओं के समान अपने साथ रखने वाले (मातुः गर्भं) माता के गर्भ में (पितुः असु) जीवन रक्षक प्राण के साथ स्थित रहने वाले (युवानम्) सदा तरुण (इमं यज्ञं) इस पूजनीय आत्मा को (मनसा चिकेत) जो मन से जानता है वह (इह तं नः प्रवोचः) वह यहाँ उसके विषय में हमें उपदेश करे, बताये।

अथर्वा- थर्वः चरति कर्मा तत् प्रतिषेधः। (निरुक्त. २१।२।१९)
(निश्चल जीवन पर्यन्त शरीर में रहने वाला)
अथ अर्वाक्- यहीं शरीर के अन्दर रहने वाला आत्मा।

(देव बन्धुं) का अर्थ यह है कि जब तक शरीर में आत्मा रहता है, तब तक वह आत्मा समस्त देवताओं, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, जल, पृथिवी आदि के अंश अपने साथ शरीर में बाँध कर रखता है। आत्मा के जाने के साथ ही इन सभी देवताओं के अंश शरीर से निकल जाते हैं।

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतो-,
ऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता-,
न्य१न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्।।

ऋग्. १।१६४।३८, अथर्व. ९।१०।१६

(अमर्त्यः मर्त्येन सयोनिः) मरणधर्मा शरीर के साथ अमर आत्मा समान योनि में प्राप्त होकर (स्वधया गृभीतः) अपनी धारणा शक्ति तथा अपने कृत कर्मों के संस्कारों से, वासनाओं से युक्त होकर (अपाङ् प्राङ् एति) फल भोगने के लिये अधम अथवा उच्च योनि में जाता है। (ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता) विरुद्ध गति वाले वे दोनों अर्थात् मरणधर्मा शरीर और अमर आत्मा शाश्वत काल से विविध योनियों में विचरण करते हैं। तात्पर्य यह है कि आत्मा शाश्वत काल से विविध योनियों में विभिन्न शरीरों को प्राप्त करता है। (अन्यम् निचिक्युः) उनमें से एक को अर्थात् शरीर को हम जानते हैं, (अन्यं न निचिक्युः) दूसरे अर्थात् आत्मा को नहीं जानते।

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।।

अथर्व. १०।८।३२

(अन्ति सन्तं न जहाति) समीप रहते हुये यह जीवात्मा आजीवन शरीर को नहीं छोड़ता, उसके साथ ही रहता है, (अन्तिसन्तम् न पश्यति) पास रहते हुये भी इसे कोई देख नहीं पाता, (देवस्य पश्य काव्यं) भगवान् के काव्य, उसकी लीला अथवा उसके आश्चर्य जनक कर्म को देखो, (न ममार न जीर्यति) यह जीवात्मा न तो मरता है और न जीर्ण होता है।

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।
वमनमासीनं विश्वे देवा उपासते ।।

कठ 2। 3

जो प्राण को ऊपर की ओर ले जाता है, और अपान को नीचे की ओर ढकेलता है, हृदय के मध्य में रहने वाले उस वामन भजनीयकी सब देव उपासना करते हैं।

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।।

कठ 2। 2। 7

अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार कितने ही देहधारी तो शरीर धारण करने के लिये किसी योनि को प्राप्त होते है। और कितने ही स्थावर–भावको प्राप्त हो जाते हैं।

आत्मानः रथिनं विद्धि शरीरः रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥

कठोपनिषद्. १।३।३

जीवात्मा को रथ का स्वामी और शरीर को रथ समझो तथा बुद्धि को सारथि और मन को ही लगाम समझो जिससे इन्द्रिय रूपी अश्वों को नियन्त्रण में रखा जाता है।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाःस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

कठोपनिषद्. १।३।४

ज्ञानीजन इन्द्रियों को घोड़े, इन्द्रियों के विषयों को उन घोड़ों के विचरने का मार्ग तथा शरीर, इन्द्रियों और मन से युक्त जीवात्मा ही भोक्ता है, ऐसा कहते हैं।

आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

विदुर नीति. २।६४

मनुष्य को स्वयं वश में किये हुये अपने मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों की सहायता से अपने आत्मा को ढूँढ़ना चाहिये, अपने आत्मा को पहचानना चाहिये। निःसन्देह मनुष्य स्वयं ही अपना बन्धु और स्वयं ही अपना शत्रु है।

बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनैवात्माऽऽत्मना जितः।
स एव नियतो बन्धुः स एव नियतो रिपुः॥

विदुर नीति. २।६५

जिसने स्वयं अपने को अर्थात् अपने मन तथा इन्द्रियों को जीत लिया है, वह निश्चित रूप से अपने आत्मा का बन्धु है और जिसने अपने आप को नहीं जीता है वह निश्चय ही अपने आत्मा का शत्रु है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

गीता. ३।४२

इन्द्रियों को स्थूल शरीर से पर अर्थात् श्रेष्ठ, बलवान् और सूक्ष्म कहते हैं, इन इन्द्रियों से श्रेष्ठ मन है, मन से श्रेष्ठ बुद्धि है और बुद्धि से अत्यन्त श्रेष्ठ तथा सूक्ष्म वह आत्मा है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।

गीता. २।२७

जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का पुनर्जन्म निश्चित है। अतः जन्म मृत्यु की इस अपरिहार्य प्रक्रिया के विषय में तुम्हें शोक करना उचित नहीं है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।

गीता. २।२३

इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल गीला कर सकता है और न वायु सुखा सकती है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।

गीता१५।७

शरीर में जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही प्रकृति में स्थित मन तथा पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करके शरीर में रखता है।

तात्पर्य यह है कि बुद्धि, मन तथा इन्द्रियाँ सभी आत्मा पर ही आधारित हैं और आत्मा के साथ ही शरीर में रहती हैं।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।

गीता. ६।५

अपने द्वारा अपना तथा अपनी आत्मा का उद्धार करे और अपनी आत्मा को अधोगति में न डाले। यह जीवात्मा स्वयं ही अपना बन्धु है और स्वयं ही अपना शत्रु है।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ।।

गीता, ८।६

हे कुन्ती पुत्र ! यह जीव अन्त में जिस जिस भाव का स्मरण एवं चिन्तन करता हुआ शरीर छोड़ता है, वह (तद्भावभावितः) उसी भाव से भावित होकर अर्थात् सतत् चिन्तन करने के कारण उस भाव का अभ्यस्त होकर (सदा तं तं एव एति) सदैव उसी भाव को प्राप्त होता है।

इसीलिये यह आवश्यक है कि अपना कल्याण चाहने वाला पुरुष सदा नियमित रूप से ओ३म् का चिन्तन करे जिससे वह ओ३म् अर्थात् परमात्मा के भाव से युक्त होकर अन्त समय में भी ओ३म् का स्मरण करके परमात्मा को प्राप्त कर सके।

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥१०॥

इन्द्रियोंकी अपेक्षा उनके विषय श्रेष्ठ हैं, विषयोंसे मन उत्कृष्ट है, मनसे बुद्धि पर है और बुद्धिसे भी महान् आत्मा (महत्तत्त्व) उत्कृष्ट है॥१०॥

कठ 1।3।10

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

गीता. २।१३

जीवात्मा की इस देह में जिस प्रकार बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था होती है, उसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् आत्मा अन्य शरीर को प्राप्त करता है। धीर पुरुष इस विषय में मोहित नहीं होते।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

गीता. २।२२

जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, उसी प्रकार जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नये शरीर को धारण करता है।

वैदिक जीवन के प्रमुख सिद्धान्त

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

यजु. ४०।१

(जगत्यां जगत्) जगती में, सम्पूर्ण सृष्टि में (यत्किंच) जो कुछ भी है, (इदं सर्वम्) यह सब (ईशावास्यम्) ईश्वर से आच्छादित एवं व्याप्त है अर्थात् ईश्वर का है। (तेन त्यक्तेन) (उसका त्यागभाव से, समर्पित भाव से, अनासक्ति भाव से (भुञ्जीथाः) उपभोग करो, (कस्य स्विद् धनम्) किसी के धन को, स्वत्व को अथवा वस्तु को (मा गृधः) मत छीनो, उसकी अभिलाषा, आकांक्षा अथवा लिप्सा मत करो।

अथवा, (मा गृधः) लालच मत करो, (धनं कस्य स्वित्) धन किसका है? अर्थात् किसी का नहीं।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

यजु. ४०।२

(इह कर्माणि कुर्वन् एव) इस लोक में (वेदोक्त प्रशस्त) कर्मों को करता हुआ ही (शतम् समाः जिजीविषेत्) सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करे। (एवं त्वयि नरे कर्म न लिप्यते) इस प्रकार तुझ पुरुष में कर्म लिप्त नहीं होते। (इतः अन्यथा न अस्ति) इससे भिन्न अथवा इसके अतिरिक्त जीवन का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

प्रथम मन्त्र में उल्लिखित अनासक्ति भाव से उपभोग करना तथा जिजीविषा, जीवित रहने की इच्छा करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। किसी भी दशा में निराश होकर जीवित रहने की इच्छा नहीं छोड़नी चाहिये।

इस मन्त्र में उल्लिखित कर्म करने के विज्ञान के विषय में गीता के निम्नाङ्कित श्लोक अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं-

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।।

गीता. ३।९

यज्ञ के लिये किये गये कर्मों के सिवाय अन्य कर्मों से मनुष्य कर्मों के बन्धन में फँसता है। अतः हे अर्जुन! आसक्ति से रहित होकर यज्ञ के लिये, लोक कल्याण के लिये कर्म करो।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः।।

गीता. ३।१९

इसलिये तुम आसक्ति से रहित होकर कर्तव्य भावना से कर्म करो। आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ पुरुष परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।

यजु. ४०।७

(यस्मिन्) जिस अवस्था में (विजानतः) विशेष ज्ञानी की दृष्टि में (सर्वाणि भूतानि) समस्त प्राणी एवं पदार्थ (आत्मा एव अभूत्) आत्मा ही हो गये, परमात्मा का ही रूप हो गये। (तत्र) उस अवस्था में (एकत्वं अनुपश्यतः) एकत्व का अनुभव करने वाले उस ज्ञानी को (कः मोहः) कैसा मोह, (कः शोकः) कैसा शोक, अर्थात् उसे किसी प्रकार का मोह और शोक नहीं होता।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्।।

गीता. ३।२५

हे भारत ! कर्म में आसक्त हुये अज्ञानीजन जिस प्रकार अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये निरन्तर कर्म करते हैं, उसी प्रकार विद्वानों को आसक्ति रहित होकर लोक संग्रह के लिये, लोक कल्याण के लिये निस्वार्थ भाव से सतत् कर्म करना चाहिये।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि जुगुप्सते।।

यजु. ४०।६

माध्यन्दिन संहिता में 'विचिकित्सति' शब्द आया है।

(यः सर्वाणि भूतानि) जो समस्त प्राणियों अर्थात् सम्पूर्ण चराचर जगत् को (आत्मनि एव अनुपश्यति) परमात्मा में ही स्थित देखता है तथा (सर्व भूतेषु आत्मानम्) समस्त भूतों में, समस्त प्राणियों एवं पदार्थों में परमात्मा को देखता है, (ततः न विजुगुप्सते) वह किसी से घृणा नहीं करता, किसी का तिरस्कार नहीं करता, उसकी सर्वत्र समदृष्टि होती है, उसमें सबके प्रति समानता का भाव होता है।

विद्या चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।

यजु. काण्व. सं. ४०।११

(यः विद्यां च अविद्यां च तत् उभयं सह वेद) जो विद्या तथा अविद्या इन दोनों को साथ साथ जानता है अर्थात् दोनों का साथ साथ ज्ञान रखता है, वह (अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा) अविद्या से प्रकृति एवं सांसारिक विषयों जैसे साहित्य, इतिहास, गणित, भूगोल, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, इलेक्ट्रानिक्स आदि के ज्ञान से मृत्यु को पारकर अर्थात् इस मृत्यु लोक में सुखपूर्वक जीवन बिताकर (विद्यया अमृतं अश्नुते) विद्या से, ब्रह्मज्ञान से अथवा आत्मज्ञान से अमृतत्व को, मोक्ष को प्राप्त करता है।

यहाँ पर अविद्या का अर्थ कर्म अथवा उल्टी या गलत विद्या नहीं है, जैसा कि अनेक भाष्यकारों ने लिखा है।

संसार में आर्थिक उन्नति के लिये उन विषयों का ज्ञान आवश्यक है जिनसे धन, शक्ति तथा ऐश्वर्य प्राप्त किया जा सकता है।

मन्त्र से ही स्पष्ट है कि जिससे मोक्ष प्राप्त किया जाय वह विद्या, शेष सभी अविद्या।

यदृच्छालाभ सन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।।

गीता. ४।२२

बिना इच्छा किये हुये जो अपने आप प्राप्त हो, उसमें ही सदा सन्तुष्ट रहने वाला, ईर्ष्या रहित, हर्ष, शोक आदि द्वन्द्वों से सर्वथा मुक्त, सिद्धि एवं असिद्धि में सम भाव रखने वाला कर्मयोगी, कर्म करता हुआ भी कर्मों के बन्धन में नहीं बँधता।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्म कोटि शतैरपि ।।

गरुड़ पुराण,५।५८

अपने द्वारा किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। सैकड़ों, करोड़ों जन्मों में भी फल का भोग किये बिना कर्मों का क्षय नहीं होता।

कामनायें

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ।। मनु. २।२

न तो कामनाओं का अधिक होना और न उनका पूर्ण अभाव ही उचित है क्योंकि कामनाओं से ही तो पुरुष वेदों का ज्ञान प्राप्त करता है तथा कामनाओं की पूर्ति के लिये ही वेद विहित कर्मों का सम्पादन करता है।

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्प सम्भवाः ।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः ।।

मनु. २।३

कामना ही सारे संकल्पों का मूल है। यज्ञ भी संकल्प पर आधारित होते हैं। इसी प्रकार व्रत, यम नियम तथा सभी धार्मिक कृत्य संकल्प से ही उत्पन्न होने वाले हैं अर्थात् संकल्प पर ही आधारित होते हैं।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाऽभिवर्धते।।

मनुस्मति,२।९४

जिस प्रकार अग्नि में हवि अर्थात् घृत आदि डालने से वह और अधिक प्रदीप्त होता है ,उसी प्रकार कामनाओं के उपभोग से कामनायें शान्त नहीं होती बल्कि और अधिक बढ़ती हैं । इसीलिये इन्द्रियों का निग्रह आवश्यक है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य जीवन में कर्म, तप तथा संकल्प सबसे महत्वपूर्ण हैं। इनके बिना मनुष्य कोई उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। मन का शिव संकल्प, श्रेष्ठ कर्म तथा तप अर्थात् उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये किया गया कठोर परिश्रम, ये तीनों सफलता के आधार हैं। इसीलिये वेद में महत्वपूर्ण प्रार्थना की गयी है कि **तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु**।

भाग्य भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है किन्तु वह इनके बाद पाँचवे स्थान पर आता है।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ।।

गीता. १८।१४

कर्मों की सिद्धि में इन पाँच कारणों का योगदान होता है, प्रथम- अधिष्ठान अर्थात् कार्य करने वाले का आधार, द्वितीय- कर्ता के गुण, तृतीय- उसे प्राप्त होने वाले विविध प्रकार के उपकरण, साधन एवं सहायता, चतुर्थ- कर्ता द्वारा कर्मों के सम्पादन के लिये किये गये भिन्न भिन्न प्रकार के प्रयत्न तथा पाँचवा- उसका भाग्य। इस प्रकार स्पष्ट है कि मनुष्य की सफलता में भाग्य का पाँचवा स्थान होता है, प्रथम नहीं।

आकूतिः (संकल्प शक्ति)

आकूंतिं देवीं सुभगां पुरो दंधे चित्तस्यं माता सुहवा नो अस्तु।
यामाशामेंमि केवंली सा मैं अस्तु विदेंयमेनां मनंसि प्रविंष्टाम्॥

अथर्व. १९।४।२

(आकूतिः देवीं सुभगां) सौभाग्य प्रदा दिव्य संकल्प शक्ति को (पुरः दधे) मैं अपने सम्मुख रखता हूँ, उसे अपना आधार एवं मार्गदर्शक बनाता हूँ। (चित्तस्य माता) स्वस्थ एवं सबल चित्त का निर्माण करने वाली यह शक्ति (नः सुहवा अस्तु) हमारे लिये सुगमता से आह्वान किये जाने के योग्य हो। (यां आशां केवली एमि) जिस श्रेष्ठ कामना की पूर्ति के लिये मैं प्रयास करूँ, (सा मे अस्तु) मेरी वह इच्छा पूर्ण हो। (एनां मनसि प्रविष्टां विदेयं) मन में रहने वाली इस संकल्प शक्ति को मैं प्राप्त करूँ।

जीवन में उन्नति के लिये संकल्प शक्ति तथा इच्छा शक्ति की अत्यन्त आवश्यकता है।

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः
शिवसंकल्पमस्तु।। यजु. ३४।१

(यत् जाग्रतः दूरं उत् एति) जो जाग्रत अवस्था में दूर दूर जाता है, (तत् उ सुप्तस्य तथा एव दैवं एति) और जो सुप्तावस्था में उसी प्रकार आत्मा की ओर चला जाता है, (दूरङ्गमं ज्योतिषां एकं ज्योतिः) दूर-दूर जाने वाला, तथा सभी ज्ञानेन्द्रियों को प्रकाशित करने वाली एक मात्र ज्योति के रूप में स्थित (तत् मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव संकल्प वाला हो, सत् एवं कल्याणकारी सङ्कल्प वाला हो।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति
विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु।।

यजु.३४।२

(येन अपसः मनीषिणः धीराः यज्ञे विदथेषु कर्माणि कृण्वन्ति) जिसकी सहायता से धर्मनिष्ठ, सत्यवादी आप्त विद्वान् एवं मनीषी तथा धीर पुरुष यज्ञों में, विज्ञान सम्बन्धी कार्यों में तथा युद्धों अथवा जीवन के संघर्षों में विभिन्न कर्म करते हैं (यत् प्रजानां अन्तः अपूर्वं यक्षं) जो प्राणियों के अन्तःकरण में अपूर्व अर्थात् सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला अद्भुत पूजनीय यक्ष स्वरूप है, (तत् मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव सङ्कल्प वाला हो।

यत्प्रज्ञानंमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु।। यजु.३४।३

(यत् प्रज्ञानम् उत चेतः धृतिः च) जो ज्ञान, चेतना, स्मृति तथा धैर्य आदि मानवीय सद्गुणों एवं भावनाओं का आधार है, (यत् प्रजासु अन्तः अमृतं ज्योतिः) जो प्राणियों के अन्तःकरण में अमृत ज्योति स्वरूप है, (यस्मान् ऋते किं चन कर्म न क्रियते) तथा जिसके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता, (तत् मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव संङ्कल्प वाला हो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु।।

यजु.३४।४

(येन अमृतेन भूतं भुवनं भविष्यत् सर्वं इदं परिगृहीतम्) जिस अमृत स्वरूप मन से भूत, भविष्य तथा वर्तमान में स्थित सब कुछ भली प्रकार ग्रहण किया जाता है, जाना जाता है, (येन सप्तहोता यज्ञः तायते) शरीर में निरन्तर चलने वाला सप्तहोता यज्ञ जिसके द्वारा सम्पन्न होता है (तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव सङ्कल्प वाला हो।

सप्तहोता–प्राण, अपान, व्यान, चक्षु, श्रोत्र वाणी तथा मन, ये शरीर रूपी यज्ञ के सात होता हैं।(यजु.२२।२३)

यस्मिन्नृचः साम यजूंꣳषि यस्मिन् प्रतिंष्ठिता रथनाभाविंवाराः। यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु।।

यजु.३४।५

(यस्मिन् ऋचः साम यजूंषि) जिसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा (यस्मिन्) जिसमें अथर्ववेद (रथनाभौ अराः इव प्रतिष्ठिताः) इस प्रकार प्रतिष्ठित रहते हैं जिस प्रकार रथ के पहिये की नाभि में पहिये के आरे प्रतिष्ठित रहते हैं, (यस्मिन् प्रजानां सर्वं चित्तं ओतम्) तथा जिसमें प्रजाओं का सम्पूर्ण चित्त ओत प्रोत रहता है (तत् मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु)

वह मेरा मन शिव सङ्कल्प वाला हो।

सुषारथिरश्वांनिव यन्मंनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुंभि-र्वाजिनं इव। हृत्प्रतिंष्ठं यदंजिरं जविंष्ठं तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु।।

यजु.३४।६

(यत् सुषारथिः अश्वान् इव मनुष्यान् नेनीयते) जो मनुष्यों को इस प्रकार इधर उधर ले जाता है, जिस प्रकार कुशल सारथि अश्वों को ले जाता है (अभीशुभिः वाजिन इव) तथा जो इन्द्रियों एवं शरीर को इस प्रकार नियन्त्रण में रखता है जैसे कुशल सारथि रस्सियों से बलशाली एवं वेगवान् अश्वों को नियन्त्रण में रखता है, (यत् हृत्प्रतिष्ठं अजिरं जविष्ठं) जो हृदय में स्थित रहने वाला, कभी वृद्ध न होने वाला तथा अत्यन्त वेगवान् है (तत् मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव सङ्कल्प वाला हो।

काम क्रोध तथा लोभ

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।

गीता. १६।२१

आत्मा का नाश करने वाले अर्थात् उसे अधोगति में ले जाने वाले काम, क्रोध तथा लोभ रूपी नरक के तीन द्वार हैं। अतएव इन तीनों को त्याग देना चाहिये।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।।

गीता. ३।३९

हे अर्जुन ! कभी सन्तुष्ट न होने वाले नित्य वैरी इस कामरूप अग्नि से ज्ञानियों का ज्ञान आवृत्त हो जाता है, नष्ट हो जाता है।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।।

गीता. ३।४३

हे महाबाहो ! इस प्रकार बुद्धि से पर अर्थात् श्रेष्ठ, सूक्ष्म एवं बलवान आत्मा को जानकर और बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके, तुम अत्यन्त कठिनायी से जीते जाने वाले इस कामरूप शत्रु को मारो।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

गीता. २।६३

क्रोध से संमोह अर्थात् अत्यन्त अविवेक उत्पन्न होता है, संमोह से स्मृति का, विवेक का नाश होता है। स्मृति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि का नाश हो जाने से पुरुष का पतन होता है, नाश होता है।

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी।
विद्या कामदुहा धेनुः सन्तोषा नन्दनं वनं।।

चाणक्य नीति. ८।१४

क्रोध यमराज के समान है, तृष्णा वैतरणी नदी के समान है, विद्या कामधेनु के समान है तथा सन्तोष इन्द्र के नन्दन वन के समान सुख देने वाला है।

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः।
नास्ति क्रोधसमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम्।।

चाणक्य नीति. ५।१२

काम वासना (स्त्री संभोग की इच्छा) के समान कोई रोग नहीं है, मोह के समान कोई शत्रु नहीं है, क्रोध के समान कोई अग्नि नहीं है तथा ज्ञान के समान कोई सुख नहीं है।

तपते यतते चैव यच्च दानं प्रयच्छति।
क्रोधेन सर्वं हरति तस्मात् क्रोधं विवर्जयेत् ॥

वामन पुराण

मनुष्य जो तप, संयम तथा दान आदि करता है, उस सब को क्रोध हर लेता है, नष्ट कर देता है अतएव क्रोध को त्याग देना चाहिये।

क्रोधः प्राणहरः शत्रुः क्रोधोमितमुखो रिपुः।
क्रोधोऽसि महातीक्ष्णः सर्वं क्रोधोऽपकर्षति ॥

वामन पुराण

क्रोध प्राणनाशक शत्रु है, क्रोध अपरिमित मुख वाला वैरी है, क्रोध बड़ी तेज धार वाली तलवार है, क्रोध सब कुछ हर लेता है, नष्ट कर देता है।

माता–पिता

यन्मातापितरौ क्लेशं सहते संभवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्त्या कर्तुं वर्षशतैरपि ।।

मनु. २।२२७

बच्चे के जन्म और पालन पोषण में माता-पिता जो क्लेश सहन करते हैं उसका प्रत्युपकार, उसकी प्रतिपूर्ति सौ वर्ष तक उनकी सेवा करने से भी नहीं की जा सकती।

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः।
त एव ही त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः।।

मनु. २।२३०

माता पिता और आचार्य ही तीनों लोक हैं, ये ही तीनों आश्रम हैं, ये ही तीनों वेद हैं तथा ये ही तीनों अग्नियाँ हैं।

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ।।

मनु. २।२२८

माता, पिता तथा आचार्य इन तीनों की नित्य सेवा सुश्रूषा करनी चाहिये। इन तीनों को प्रसन्न करने से ही समस्त तप सम्पूर्ण हो जाते हैं।

तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परं तप उच्यते।
न तैभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्।।

मनु. २।२२९

इन तीनों की सेवा को परम तप कहा जाता है। इनकी आज्ञा के बिना, इनकी इच्छा के विपरीत कोई कार्य नहीं करना चाहिये।

देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिकाः पशुबुद्धयः।
मातापितृकृतद्वेषाः स्त्रीदेवा कामकिङ्कराः।।

अ.रामा. महात्म्य .११

यह लोग शरीर में आत्मबुद्धि वाले अर्थात् शरीर को ही आत्मा समझने वाले, मूर्ख, नास्तिक तथा पशुओं के समान बुद्धि वाले, माता पिता से द्वेष करने वाले और काम वासना के दास होकर स्त्री को ही देवता

पुत्र

'पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा।।

मनु. ९।१३८

(पुन्नाम्नः नरकात् त्रायते इति पुत्रः) पुम् नामक नरक (एवं वृद्धावस्था तथा अन्य कारणों से उत्पन्न दुःख) से पुत्र अपने माता पिता की रक्षा करता है, अतएव स्वयं प्रजापति ने ही उसे पुत्र कहा है।

परिवार

सहृदयं सांमनस्यामविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।

अथर्व. ३।३०।१

(वः सहृदयं सांमनस्यम् अविद्वेषम् कृणोमि) तुम्हारे लिये सहृदयता, एक समान मन तथा परस्पर द्वेष का अभाव, निर्धारित करता हूँ। (अन्यो अन्यम् अभिहर्यत) तुम लोग एक दूसरे की कामना करो तथा आपस में प्रेम करो जैसे (अघ्न्या जातं वत्समिव) गौ अपने नवजात वत्स से करती है।

भगवान् की आज्ञा है कि परिवार में सदा सहृदयता, परस्पर प्रेम तथा अविद्वेष से रहना चाहिये।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।।

अथर्व. ३।३०।२

(पुत्रः पितुः अनुव्रतः) पुत्र पिता के अनुकूल कर्म करने वाला हो और (मात्रा संमनाः भवतु) माता के साथ समान मन वाला हो। (जाया) पत्नी (पत्ये) पति के लिये (मधुमतीम् शन्तिवाम् वाचं वदतु) मधुर तथा शान्तिदायक वाणी बोले।

व्रतं कर्म नाम। निघण्टु. २।१

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।

अथर्व. ३।३०।३

(मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षत) भाई, भाई के साथ द्वेष न करे, (मा स्वसा स्वसारम्) बहिन, बहिन के साथ द्वेष न करे (सम्यञ्चः सव्रताः भूत्वा) और सम्यक् व्यवहार वाले तथा समान कर्मों वाले होकर (भद्रया वाचम् वदत) सुखदायक, शान्तिपूर्ण, कल्याण करने वाली वाणी बोलें।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः। अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनस्कृणोमि।।

अथर्व. ३।३०।५

(ज्यायस्वन्तः) वृद्धजनों के नियन्त्रण में (चित्तिनः) अपने अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत रहते हुये तथा (संराधयन्तः) एक साथ मिलकर कार्यों को सिद्ध करते हुये (सधुराः चरन्तः) एक बैलगाड़ी में जुते हुये बैलों के समान साथ साथ चलो, (मा वि यौष्ट) अलग अलग न हो, (अन्यो अन्यस्मै) परस्पर एक दूसरे के लिये (वल्गु वदन्तः एत) प्रिय वचन बोलते हुये जीवन व्यतीत करो। (सध्रीचीनान् वः) तुम्हें गृहकार्यों में साथ साथ चलते हुये (संमनसः कृणोमि) समान मन वाला, एक से मन वाला बनाता हूँ।

प्राणायाम

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ।

योग दर्शन, साधनपादः ,४९

आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास तथा प्रश्वास दोनों की गति का विच्छेद अथवा रोकना प्राणायाम कहलाता है।

प्राणायाम का शाब्दिक अर्थ है–प्राण+आयाम=प्राण का विस्तार, प्राण की पुष्टि। प्राणायाम से शरीर को निरोगिता तथा निर्मलता प्राप्त होती है और मन एवं इन्द्रियों का संयम होता है तथा स्वर में माधुर्य एवं शरीर में हलकापन आ जाता है, साथ ही बुद्धि तीव्र एवं सूक्ष्म हो जाती है।

प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः ।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥

मनुस्मृति,६।७०

ब्राह्मण द्वारा व्याहृतियों एवं ओंकार के साथ विधिवत् तीन प्राणायाम

भी किया जाना, परम तप समझना चाहिये।

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

मनुस्मृति ६।७१

जिस प्रकार अग्नि में तपाने से (स्वर्णादि) धातुओं का मल नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार प्राण के निग्रह अर्थात् प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष दूर हो जाते हैं।

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्विषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥

मनुस्मृति ६।७२

प्राणायम द्वारा दोषों कों दग्ध करे तथा धारणा अर्थात् परमात्मा में मन एवं चित्त लगाकर पापों का नाश करे, प्रत्याहार द्वारा लोभ मोह क्रोध आदि को दूर करे तथा भगवान् का ध्यान करके अनीश्वरवाद तथा नास्तिकता को दूर करे।

प्राणायाम का फल बताते हुये योग दर्शन में कहा गया है–

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ।

योग दर्शन, साधनपादः, ५२

प्राणायाम का अभ्यास करने पर आत्मा के ज्ञान को ढँकने वाला अज्ञान का आवरण उत्तरोत्तर क्षीण होता जाता है तथा ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जाता है।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायाम परायणाः।।

गीता,४।२९

कुछ योगीजन अपान में प्राण का हवन करते हैं तथा कुछ अन्य प्राण में अपान का हवन करते हैं। प्राण तथा अपान दोनों की गति को रोककर कुछ योगी प्राणायाम करने वाले हैं।

श्री शङ्कराचार्य जी के अनुसार पूरक करना अपान में प्राण का हवन है तथा रेचक करना प्राण में अपान का हवन है। प्राण तथा अपान दोनों की गतियों को रोकना कुम्भक नामक प्राणायाम है।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥

गीता,६।१३

शरीर अर्थात् रीढ़ की हड्डी, शिर और गर्दन को (समं) एक सीध में रखते हुये अचल एवं स्थिर होकर तथा अपनी नासिका के अग्रभाग को देखकर अर्थात् उसमें धारणा करके, (दिशः च अनवलोकयन्) नेत्रों से इधर उधर दिशाओं को न देखता हुआ बैठे। श्री शङ्कराचार्य जी ने लिखा है कि यहाँ नासिका के अग्रभाग को देखने का विधान करना अभिमत नहीं है। केवल नेत्रों की दृष्टि को विषयों की ओर से रोककर नासिका के अग्रभाग की ओर स्थापन करना ही इष्ट है क्योंकि यदि नासिका के अग्रभाग को देखने का विधान माना जाय, तो फिर मन वहीं स्थित होगा, आत्मा में नहीं।

यम –नियम

यमान सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ।।

मनु. ४।२०४

'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः' योगदर्शन. २।३०

(अहिंसा) समस्त प्राणियों के विरुद्ध हिंसा का त्याग, (सत्य) सत्य ही मानना, सत्य ही बोलना तथा सत्य का ही आचरण करना, (अस्तेय) मन, वचन तथा कर्म से चोरी का त्याग, (ब्रह्मचर्य) उपस्थेन्द्रिय का संयम, (अपरिग्रह) धन सम्पत्ति का अनावश्यक संग्रह न करना,यह पाँच यम हैं।

इन पाँच यमों का निरन्तर नित्य सेवन करना चाहिये, केवल नियमों का ही नहीं। जो यमों का परित्याग करके केवल नियमों का पालन करते हैं, उनका पतन हो जाता है।

शौचसन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।।

योग दर्शन. २।३२

मन एवं शरीर आदि की पवित्रता, सन्तोष, तप अर्थात् सभी के कल्याण एवं सत्याचारण आदि श्रेष्ठ कार्यों के लिये कष्ट सहन करना, स्वाध्याय अर्थात् वेद शास्त्र आदि का अध्ययन करना तथा ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वर की अनन्य भक्ति, ये पाँच नियम हैं।

ब्रह्म प्राप्ति

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।।

यजु. २०।२१,२७।१०,३५।१४,३८।२४
ऋग्. १।५०।१० (पाठभेद), अथर्व. ७।५५।७(पाठभेद)

(तमसः परि) पाप एवं अज्ञान रूपी अन्धकार से ऊपर उठते हुये (स्वः पश्यन्त उत्तरम्) तथा उस श्रेष्ठ ज्योति को ज्ञान दृष्टि से देखते हुये और प्रकाश स्वरूप परमात्मा के दर्शन के लिये इच्छा एवं प्रयास करते हुये, (वयं) हमने (देवं देवत्रा) देवों में सर्वश्रेष्ठ देव तथा (ज्योतिः उत्तमम्) सूर्य के समान सर्वोत्कृष्ट ज्योति स्वरूप (सूर्य) परब्रह्म को (उत् अगन्म) प्राप्त किया।

पाप्मा वै तमः।। शतपथ. ब्रा. १४।३।१।२८

पाप ही अन्धकार है।

इसीलिये प्रार्थना की गयी है-

असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतं गमय।

शतपथ.१४।४।१।३०

असत् से मुझे सत् को प्राप्त कराइये, अन्धकार से मुझे ज्योति को प्राप्त कराइये, मृत्यु से मुझे अमृत को प्राप्त कराइये।

यह जो कहा कि असत् से हटाकर सत् की प्राप्ति कराइये, तो असत् ही मृत्यु है, सत् अमृत है। इसका तात्पर्य यह है कि मुझे मृत्यु से हटाकर अमृत की प्राप्ति कराइये।

यह जो कहा कि अन्धकार से हटाकर ज्योति की प्राप्ति कराइये, तो मृत्यु ही अन्धकार है, अमृत ज्योति है। इसका तात्पर्य यह है कि मुझे मृत्यु से हटाकर अमृत की प्राप्ति कराइये।

यह जो कहा कि मृत्यु से हटाकर अमृत की प्राप्ति कराइये, यह तो स्पष्ट है।

कि मुझे मृत्यु से छुड़ाकर मोक्ष प्राप्त कराइये।

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु।
इच्छन्तीरुरुचक्षसम्।।

ऋग्. १।२५।१६

(इच्छन्तीः उरुचक्षसम्) उस सर्वदृष्टा, सर्वसाक्षी प्रभु की इच्छा करने वाली (मे धीतयः) मेरी बुद्धियाँ उस प्रकार (परा यन्ति) दूर दूर तक जाती हैं, (न) जिस प्रकार (गावः गव्यूतीः अनु) गौवें गोष्ठ की ओर, अपने आश्रय स्थान की ओर जाती हैं। गव्यूतीः गावो अत्र यूयन्ते इति।

बुद्धि का सांसारिक विषयों की ओर न भागकर परमात्मा की ओर, उसे प्राप्त करने की इच्छा से जाना, परमावश्यक है। बिना इसके साधना सफल हो ही नहीं सकती।

पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षा दिवमारुहम्।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्।।

यजु. १७।६७, (पाठभेद) अथर्व. ४।१४।३

(पृथिव्याः पृष्ठात्) पृथिवी के पृष्ठभाग से (अहम् अन्तरिक्षम् आरुहम्) मैं अन्तरिक्ष पर आरूढ़ हो गया हूँ, (अन्तरिक्षात् दिवम् आरुहम्) अन्तरिक्ष से द्युलोक पर आरूढ़ हुआ हूँ तथा (नाकस्य दिवः पृष्ठात्) सुख पूर्ण द्युलोक अथवा स्वर्ग के पृष्ठ से ऊपर उठकर (अहम् स्वः ज्योतिः अगाम) मैंने आनन्द मय ज्योति को प्राप्त किया है, परमात्मा को प्राप्त किया है।

स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्याꣳ रोहन्ति रोदसी।
यज्ञं ये विश्वतोधारꣳ सुविद्वाꣳसो वितेनिरे।।

अथर्व. ४।१४।४, यजु. १७।६८

(ये सुविद्वांसः विश्वतो धारं यज्ञं वितेनिरे) जो श्रेष्ठ विद्वान् समस्त विश्व को धारण करने वाले अथवा सब ओर से, सब प्रकार से धारण करने वाले यज्ञ का विस्तार करते हैं, ऐसे (स्वः यन्त) सर्वोत्कृष्ट ज्योति अथवा परमानन्द को प्राप्त करने वाले ज्ञानी जन (न अपेक्षन्ते) किसी अन्य वस्तु अथवा सांसारिक सुख एवं वैभव आदि की अपेक्षा नहीं करते प्रत्युत (रोदसी) पृथिवी एवं द्युलोक के बीच से ऊपर उठकर (द्यां आरोहन्ति) ज्योतिर्मय द्युलोक अथवा ब्रह्मलोक पर आरोहण करते हैं, उसे प्राप्त करते हैं।

परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा
परि लोकान् परिदिशः परिस्वः।
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य
तदपश्यत्तदभवत्तदासीत्।।

यजु 32। 12

(द्यावा पृथिवी) द्युलोक, पृथिवी लोक तथा (परि लोकान्) अन्य लोक लोकान्तरों और (परि दिशः) सब दिशाओं में व्याप्त (परि स्वः) आनन्द स्वरूप परमात्मा के (ऋतस्य तन्तुं) सत्य के स्वरूप को देखकर, उसका ज्ञान प्राप्त करके उपासक जब (तत् अपश्यत्) उस परब्रह्म का साक्षात्कार करता है, तब वह (सद्यः) तत्काल (तत् अभवत्) वही हो जाता है (तत् आसीत्) जैसा कि वह जन्म मृत्यु के चक्र में आने से पूर्व था अर्थात् ब्रह्म में लीन हो जाता है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्म का साक्षात्कार करके आत्मा ब्रह्म ही हो जाता है, उसका अलग अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते॥

कठोपनिषद्. १।३।८

जो विवेक सम्पन्न ज्ञानी अपने मन को वश में करने वाला तथा संयत चित्त एवं मन, वाणी तथा कर्मों की पवित्रता से सदा युक्त रहता है, वह उस पद को प्राप्त करता है, जिस पद की प्राप्ति के पश्चात् पुनर्जन्म नहीं होता।

नाऽयमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूꣳस्वाम्॥

कठोपनिषद्. १।२।२३, मुण्डक. ३।२।३

यह परमात्मा न प्रवचन से, न बुद्धि से और न बहुत ज्ञानोपदेश सुनने से प्राप्त होता है प्रत्युत् जिसे यह स्वीकार कर लेता है, चुन लेता है उसी को प्राप्त होता है, उसी के लिये यह अपने स्वरूप को प्रकाशित कर देता है, उसी को दर्शन देता है।

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति।

मुण्डकोपनिषद् ३।२।९

निश्चय ही, जो कोई भी उस परब्रह्म को जान लेता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है। तात्पर्य यह है कि उसकी आत्मा ब्रह्म में प्रवेश कर जाती है, वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।

रामचरित मानस, अयोध्याकाण्ड. १२६।३

परमात्मा को वही जान पाता है जिसे वह पात्र समझकर स्वयं अपना ज्ञान देते हैं। भगवान् को जानकर पुरुष भगवान् ही हो जाता है, मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान् नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्।।

कठोपनिषद्. १।३।९

जो मनुष्य विवेक पूर्ण बुद्धि रूपी सारथि वाला और मन रूपी लगाम को अपने अधिकार में रखने वाला होता है, वह मार्ग के उस पार अर्थात् जीवन के अन्त में विष्णु के उस सर्वश्रेष्ठ, परम उत्कृष्ट पद को प्राप्त होता है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

गीता 18/61

हे अर्जुन! ईश्वर समस्त प्राणियों के हृदय मे स्थित रहता है और उन्हें अपनी माया से इस प्रकार घुमाता रहता है जैसे कि वे किसी घूमने वाले यन्त्र पर बैठे हों।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।

गीता 18/62

हे भारत ! तुम सब प्रकार से उसी के शरण में जाओ। उसकी कृपा से तुम परम शान्ति को और परमात्मा के परम धाम में शाश्वत स्थान को प्राप्त करोगे।

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।

दृश्यते त्वग्रय्या बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।।

कठ. उप 1 । 3।12

सम्पूर्ण भूतोमें छिपा हुआ यह आत्मा दिखयी नहीं देता है। यह तो सूक्ष्मदर्शी पुरुषों द्वारा अपनी तीव्र और सूक्ष्म बुद्धि से ही देखा जाता है।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥१४॥

कठ. उप 1। 3। 4

उठो, जागो और श्रेष्ठ लोगो के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो। जिस प्रकार छुरे की धार तीक्ष्ण और दूस्तर होती है, ज्ञानी लोग ब्रह्म ज्ञान के उस मार्ग को उसी प्रकार दुर्गम बताते हैं।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥१४॥

जिस समय सम्पूर्ण कामनाएँ, जो कि इसके हृदयमें आश्रय करके रहती हैं, छूट जाती हैं उस समय वह मर्त्य (मरणधर्मा) अमर हो जाता है और इस शरीरसे ही ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है॥ १४॥

कठ. उप 2। 3। 14

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे-
ऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥८॥

जिस प्रकार निरन्तर बहती हुई नदियाँ अपने नाम-रूपको त्यागकर समुद्रमें अस्त हो जाती हैं उसी प्रकार विद्वान् नाम-रूपसे मुक्त होकर परात्पर दिव्य पुरुषको प्राप्त हो जाता है॥८॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥

गीता,६।२०

(यत्र योगसेवया निरुद्धम् चित्तम्) जिस अवस्था में योगाभ्यास से निरुद्ध हुआ, चंचलता रहित हुआ चित्त, (उपरमते उपरतिं गच्छति) शान्त हो जाता है, (च यत्र यस्मिन् काले) तथा जिस अवस्था में योगी (आत्मना) अपने निर्मल आत्मा से (आत्मानं पश्यन्) परमात्मा का दर्शन करता हुआ साक्षात्कार करता हुआ, (आत्मनि एव तुष्यति) अपने आप में ही परम तुष्टि को, परम आनन्द को प्राप्त करता है

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥

गीता, ६।२८

(एवं सदा आत्मानं युञ्जन्) इस प्रकार अपने आत्मा को परमात्मा के साथ निरन्तर संयुक्त करता हुआ (विगत कल्मषः योगी) पापरहित योगी (सुखेन) बिना किसी कठिनाई के अनायास ही (ब्रह्म संस्पर्शम्) परब्रह्म के संस्पर्श का, ब्रह्म की प्राप्ति का (अत्यन्तं सुखम् अश्नुते) अत्यन्त, असीम परमानन्द प्राप्त करता है।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।।

गीता. ८।२२

हे पार्थ ! वह परमात्मा जिसमें समस्त प्राणी स्थित हैं और जो समस्त संसार में व्याप्त है, अनन्य भक्ति द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य है।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

गीता, ९।२२

अनन्य भाव से चिन्तन करते हुये जो मेरी उपासना करते हैं उन, भक्तिभाव से मुझ में नित्य अभियुक्त होने वाले, भली प्रकार जुड़ जाने वाले, भक्तों के योग तथा क्षेम को मैं स्वयं वहन करता हूँ।

(अलब्धलाभो योगः) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति का नाम योग है तथा (प्राप्तस्य संरक्षणं क्षेमः) प्राप्त वस्तु के संरक्षण का नाम क्षेम है।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

गीता. १८।४६

जिससे समस्त प्राणी उत्पन्न हुये हैं तथा जिससे यह समस्त संसार व्याप्त है उस परमात्मा की अपने कर्मों के द्वारा अर्चना एवं उपासना करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

गीता. ९।२६

जो मेरे लिये भक्तिपूर्वक पत्र, पुष्प, फल अथवा जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुष द्वारा भक्तिपूर्वक अर्पित की गयी वस्तु को मैं खाता हूँ, स्वीकार करता हूँ।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्ष स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

अपवित्र अथवा पवित्र सभी अवस्थाओं में जो पुण्डरीकाक्ष भगवान् का स्मरण करता है, वह बाहर तथा अन्दर दोनों प्रकार से पवित्र हो जाता है।

श्रवणान्मननाच्चैव गीतिस्तुत्यर्चनादिभिः।
आराध्यं सदा ब्रह्म पुरुषेण हितैषिणा॥

महाभारत, अनुशासन पर्व अध्याय,१२४

(हितैषिणा पुरुषेण) अपना हित चाहने वाले पुरुष द्वारा (श्रवणात् मननात् च एव गीतिस्तुति अर्चनादिभिः ब्रह्म सदा आराध्यम्) श्रवण, मनन एवं गीति, स्तुति तथा अर्चना द्वारा सदैव ब्रह्म की आराधना की जानी चाहिये।

सदा मुक्तोऽपि बद्धोऽस्मि भक्तेषु स्नेहरज्जुभिः ।
अजितोऽपि जितोऽहं तैरवशोऽपि वशीकृतः ।।

आदि पुराण

सदा मुक्त हुआ भी मैं भक्तों की प्रेमरूपी डोरी से बँधा हुआ हूँ। अजित हुआ भी मैं उनके द्वारा जीता हुआ हूँ और किसी के वश न आने वाला होता हुआ भी उनके वश में हूँ।

नाऽहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदयेऽपि वा ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।।

आदि पुराण

हे नारद! न तो मैं वैकुण्ठ में निवास करता हूँ और न ही योगियों के हृदय में। मेरे भक्त जहाँ मेरा गान करते हैं मैं वहीं निवास करता हूँ।

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ।।

श्रीमद्भागवत. ९।४।६३

(सुदर्शम चक्र से व्याकुल हो शरणागत दुर्वासा ऋषि से विष्णु भगवान् कहते हैं-) 'हे द्विज! मैं पराधीन के समान भक्तों के वश में हूँ। भक्तजनों को प्रेम करने वाला मेरा हृदय मेरे श्रेष्ठ, सच्चरित्र भक्तों ने बाँध रखा है'।

योग

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्य सिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।

गीता.२।४८

हे अर्जुन! आसक्ति को त्यागकर सिद्धि तथा असिद्धि में समभाव रखते हुये योग में स्थित होकर कार्य करो। सफलता तथा असफलता में समबुद्धि तथा समत्वभाव ही योग कहा जाता है।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ।।

गीता. ६।७

अपने ऊपर संयम रखने वाले, शान्त अन्तःकरण वाले, अपने ज्ञान को केवल परमात्मा में समाहित करने वाले, शीत-उष्ण, सुख-दुःख तथा मान-अपमान में समान भाव रखने वाले-

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।।

गीता. ६।८

ज्ञान-विज्ञान से तृप्त अन्तःकरण वाले, विकार रहित इन्द्रियों पर

विजय प्राप्त करने वाले तथा मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण को एक समान समझने वाले योगी को युक्त कहा जाता है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ।।

गीता, ६।१५

(एवं आत्मानं सदा युञ्जन्) उक्त प्रकार से आत्मा को सदा परमेश्वर में स्थिर करता हुआ (नियतमानसः- नियतं संयतं मानसं मनो यस्य सः नियतमानसः) संयमित मन है जिसका ऐसा योगी (निर्वाणपरमां निर्वाणं मोक्षः तत्परमा निष्ठा यस्याः शान्तेः सा निर्वाणपरमा तां निर्वाणपरमां) निर्वाण है परम निष्ठा, अन्तिम स्थिति जिसकी अर्थात् जिसकी अन्तिम स्थिति मोक्ष है तथा जो (मत्संस्थां मदधीनाम् अधिगच्छति प्राप्नोति) जो मेरे अधीन है, मुझमें स्थित है, उस शान्ति को प्राप्त करता है।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः।।

गीता,६।१९

जिस प्रकार (निवातस्थो) वायुरहित स्थान में स्थित दीपक की ज्योति (न इङ्गते, न चलति) चलायमान नहीं होती (सा उपमा) वही उपमा (आत्मनः योगम् युञ्जतो) आत्मा के योग में लगे हुये अर्थात् अपने को परमात्मा के साथ संयुक्त कर देने वाले (योगिनो यतचित्तस्य संयत अन्तःकरणस्य) योगी के संयत चित्त की (स्मृता) कही गयी है।

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः।।

गीता, ६।२४

(संकल्पप्रभवान्, संकल्पः प्रभवो येषां कामानां ते संकल्पप्रभवाः कामाः तान् कामान्) संकल्प से उत्पन्न होने वाली समस्त कामनाओं को (अशेषतः) पूर्णरूप से त्याग कर, संसार से निर्लिप्त होकर तथा (मनसा

एव) विवेकयुक्त मन से (इन्द्रियग्रामम् इन्द्रिय समुदायम्) इन्द्रियों के समूह का, (समन्तत: विनियम्य) सब ओर से नियमन करके अर्थात् समस्त इन्द्रियों को भली प्रकार संयमित करके–

शनै: शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मन:कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ।।

गीता, ६।२५

(धृत्या धैर्येण गृहीतया धृतिगृहीतया धैर्येण युक्तया इत्यर्थः) धैर्य से धारण की हुई अर्थात् धैर्ययुक्त बुद्धि द्वारा (शनै: शनै: उपरमेत्) धीरे धीरे अभ्यास करता हुआ उपरति को, शान्ति को प्राप्त करे तथा (आत्मसंस्थं, आत्मनिसंस्थितम् मन: कृत्वा) मन को परमात्मा में स्थित करके (न किञ्चिदपि चिन्तयेत्) परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी का चिन्तन न करे।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ।।

गीता, ६।२७

जिसका मन भली प्रकार शान्त है, जो पाप रहित है तथा जिसका रजोगुण शान्त हो गया है (ब्रह्मभूतम् ब्रह्मएव सर्वम् इति एवं निश्चयवन्तं) यह सब कुछ ब्रह्म ही है ऐसे निश्चय वाले योगी को (उत्तमम् सुखम् उपैति) उत्तम आनन्द प्राप्त होता है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ।।

गीता, ६।२८

(एवं सदा आत्मानं युञ्जन्) इस प्रकार अपने आत्मा को परमात्मा के साथ निरन्तर संयुक्त करता हुआ (विगत कल्मषः योगी) पापरहित योगी (सुखेन) बिना किसी कठिनाई के अनायास ही (ब्रह्म संस्पर्शम्) परब्रह्म के संस्पर्श का, ब्रह्म की प्राप्ति का (अत्यन्तं सुखम् अश्नुते) अत्यन्त, असीम परमानन्द प्राप्त करता है।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।।

गीता. ६।४०

हे पार्थ! (योग की पूर्ण सिद्धि न होने पर भी) योग द्वारा भगवत्प्राप्ति का प्रयास करने वाले पुरुष का न तो इस लोक में और न परलोक में नाश होता है। हे तात् !कल्याणकारी कर्म करने वाला कोई भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।

गीता. ६।४१

योग भ्रष्ट पुरुष, पुण्य करने वालों के लोकों अर्थात् स्वर्गादि उत्तम लोकों को प्राप्त होकर, उनमें बहुत वर्षों तक निवास करके फिर शुद्ध आचरण वाले ऐश्वर्यवान् पुरुषों के घर में जन्म लेते हैं।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।।

गीता. ६।४५

प्रयत्न करने वाला योगी अत्यन्त प्रयत्न करके सभी पापों से मुक्त होकर, शुद्ध होकर, अनेक जन्मों में सिद्धि को प्राप्त करता हुआ अन्त में परमगति को प्राप्त होता है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

गीता,६।२९

(योग युक्तात्मा) योग से युक्त आत्मा अर्थात् समाहित अन्तः करण वाला तथा (समं निर्विशेषं दर्शनं ज्ञानं यस्य स सर्वत्र समदर्शनः) समस्त

भूतों को समत्व भाव से, समान रूप से देखने वाला योगी, (सर्वभूतस्थम् आत्मानम्) परमात्मा को समस्त भूतों में स्थित (च सर्वभूतानि आत्मनि) तथा समस्त भूतों को परमात्मा में स्थित (ईक्षते) देखता है।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥

समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनोंको इसी लोकमें त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तू समत्वरूप योगमें लग जा; यह समत्वरूप योग ही कर्मोंमें कुशलता है अर्थात् कर्मबन्धनसे छूटनेका उपाय है॥ ५०॥

तात्पर्य यह है कि योग के अनुसार कर्म करना ही कर्म करने की कुशलता है दक्षता है, कर्म को निस्वार्थ भाव से कर्तव्य समझकर लोक कल्याण के लिये करना चाहिये।

मन

इन्द्रियाणां तु सर्वेषामीश्वरं मन उच्यते।
प्रार्थनालक्षणं तच्च इन्द्रियं तु मनः स्मृतम् ॥

महाभारत, अध्याय, १४५

मन समस्त इन्द्रियों का स्वामी तथा नियन्त्रक कहलाता है। मन का लक्षण है प्रार्थना अर्थात् किसी वस्तु की इच्छा करना। मन को भी इन्द्रिय माना गया है।

मनः पूर्वागमा धर्मा अधर्माश्च न संशयः।
मनसा बद्ध्यते चापि मुच्यते चापि मानवः ॥
निगृहीते भवेत् स्वर्गो विसृष्टे नरको ध्रुवः ॥

महाभारत, अध्याय, १४५

इसमें सन्देह नहीं कि धर्म और अधर्म पहले मन में ही आते हैं। मन के कारण ही मनुष्य बँधन में पड़ता है और मन के कारण ही मुक्त होता है। यदि मन को वश में कर लिया जाय तो स्वर्ग प्राप्त होता है और यदि उसे मनमानी करने दी जाय तो नरक की प्राप्ति अवश्यम्भावी है।

यतोयतो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ।।

गीता. २।६०

यत्न करते हुये बुद्धिमान् पुरुष के मन को भी यह प्रमथन स्वाभाव वाली इन्द्रियाँ बलपूर्वक हर लेती हैं।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ।।

गीता, ६।२६

(चञ्चलम्) अत्यन्त चलायमान (अस्थिरम्) एवं कभी न स्थिर रहने वाला मन (यत: यत: निश्चरति) जिस जिस विषय में इधर उधर विचरण करता है, उस उस विषय से उसे बारम्बार रोककर (एतत् मन: आत्मनि एव वशं नयेत्) इस मन को आत्मा के ही वशीभूत करे, आत्मा में ही स्थिर करे, अन्य किसी ओर विचरण न करने दे।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।

गीता. ६।३४

हे कृष्ण! मन अत्यन्त चञ्चल स्वभाव वाला दृढ़ एवं बलवान् है। उसको वश में करना मैं वायु को वश में करने के समान अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

गीता. ६।३५

हे महाबाहो कुन्ती पुत्र अर्जुन! निःसन्देह मन चञ्चल और कठिनता से वश में होने वाला है परन्तु सतत् अभ्यास एवं वैराग्य से यह वश में किया जाता है।

गायत्री मन्त्र

(ओ३म्) भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

ऋग्. ३।६२।१०, यजु. ३६।३, ३।३५,२२।९ तथा ३०।२
साम. उत्तरा. १३।४।१ क्र. सं. १४६२

(ओ३म्) हे अन्तर्यामी ! हमारे हृदय, मन, प्राण तथा आत्मा में वसने वाले, सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान परमपिता परमात्मा ! (भूः=सत्) हे सर्वाधार ! (भुवः=चित्) हे ज्ञान स्वरूप, सर्वज्ञ ! हमारे समस्त दुःखों को दूर करने वाले (स्वः=आनन्द) हे सुख स्वरूप! परम आनन्द को देने वाले, (भूर्भुवः स्वः हे सच्चिदानन्द! (तत् सवितुः देवस्य) सकल ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाले, उसका पालन पोषण करने वाले तथा उसे प्रेरणा देने वाले उस सविता देव के, परब्रह्म के (वरेण्यं भर्गः वरण करने योग्य, श्रेष्ठ, कल्याणकारी पापनाशक तेज का हम (धीमहि) ध्यान करते हैं, उपासना करते हैं तथा उसके ज्योतिर्मय स्वरूप को अपने अन्तःकरण में धारण करते हैं । (धियो यो नः) जो परब्रह्म हमारी बुद्धि, वाणी तथा कर्मों को (प्रचोदयात्) कल्याणकारी मार्ग पर प्रेरित करे। अथवा, हे प्रभो! हमारी बुद्धि, वाणी तथा कर्मों को कल्याणकारी मार्ग पर प्रेरित कीजिये ।

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत्।
तदित्यृचाऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ।।

मनु.२।७७

परमेष्ठी प्रजापति ने ऋक्, यजु तथा साम रूपी त्रयी विद्या से इस सावित्री ऋचा का एक एक पाद दुहकर निकाला है। गायत्री मन्त्र का प्रथम पाद, 'तत्सवितुर्वरेण्यम्', द्वितीय पाद, 'भर्गो देवस्य धीमहि' तथा तृतीय पाद, 'धियो यो नः प्रचोदयात्' है।

एतदक्षरमेतांच जपन् व्याहृतिपूर्विकाम्।
सन्ध्योर्वेदविद् विप्रो वेद पुण्येन युज्यते ।।

मनुस्मृति, २।७८

(एतत् अक्षरम्) इस अविनाशी परब्रह्म के वाचक ओ३म् तथा (व्याहृति पूर्विकाम् एताम् च सन्ध्योः जपन्) भूः, भुवः, स्वः इन महाव्याहृतियों के साथ गायत्री मन्त्र का दोनों सन्ध्याओं में जप करते हुये, (वेद विद् विप्रः वेद पुण्येन युज्यते) वेदज्ञ विप्र वेदाध्ययन के पुण्य से युक्त होता है।

ओङ्कारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ।।

मनुस्मृति ,२।८१

जिसमें भूः भुवः स्वः इन तीन अव्यय महाव्याहृतियों के सहित आदि में ओङ्कार है, उस तीन पाद वाली सावित्री अथवा गायत्री को वेद का मुख समझना चाहिये।

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ।।

मनुस्मृति, २।८३

ओङ्कार परब्रह्म है, प्राणायाम परम तप है, सावित्री से श्रेष्ठ कुछ नहीं है तथा मौन रहने से सत्य भाषण श्रेष्ठ है । (अनेक स्मृतियों तथा पुराणों में भी इसी प्रकार का कथन है ।)

परब्रह्मस्वरूपा च निर्वाणपददायिनी ।
ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृ देवता ।।

देवी भागवत ९।१।४

गायत्री परब्रह्म स्वरूपा है तथा मोक्ष के परमपद को देने वाली है । यह ब्रह्म की तेजोमयी शक्ति है तथा परब्रह्म ही उसका अधिष्ठातृ देवता है।

दुर्लभा सर्व मन्त्रेषु गायत्री प्रणवान्विता ।
गायत्र्या नाधिकं किञ्चित् त्रयीषु परिगीयते ।।

स्कन्द पुराण, काशी खण्ड, ९।५१

समस्त मन्त्रों में प्रणव (ओ३म्) से युक्त गायत्री दुर्लभ है । चारों वेदों में, गायत्री से अधिक अन्य किसी मन्त्र का गान नहीं किया जाता ।

जपतां जुह्वतां नित्यं च प्रयतात्मनाम्।
ऋषीणां परमं जप्यं गुह्यमेतन्नराधिप ।।

महाभारत, अनुशासन पर्व, ७४०।१५

हे राजन् ! यह गायत्री, जप परायण, होमनिष्ठ तथा सदा सावधान चित्त वाले ऋषियों का परम जप्य एवं गुप्त मन्त्र है।

यानपात्रे च याने च प्रवासे राजवेश्मनि ।
परां सिद्धिमवाप्नोति सावित्रीं ह्युत्तमां पठन् ।।

महाभारत, अनुशासन पर्व १५०।६८

(यानपात्रे च) जहाज़ में (याने च) अथवा अन्य किसी सवारी में बैठकर (प्रवासे) विदेश में अथवा (राजवेश्मनि) राजद्वार में (उत्तमां हि सावित्रीं पठन्) उत्तम गायत्री मन्त्र का जप करने वाला व्यक्ति (परांसिद्धिं अवाप्नोति) परम सिद्धि को प्राप्त करता है। तात्पर्य यह है कि यात्रा करते समय अथवा राजकीय कार्यों में कठिनायी उत्पन्न होने पर, गायत्री जप से सफलता प्राप्त होती है और कठिनाइयाँ समाप्त हो जाती हैं।

हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ।
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो हृदये शुचिः ।।

शङ्ख स्मृति, १२।१२

(नरकार्णवे पततां हस्तत्राण प्रदा देवी) यह दिव्य गायत्री, नरक रूपी समुद्र में गिरने वालों को हाथ पकड़कर बचाने वाली है। (तस्मात् हृदये शुचिः ब्राह्मणः तां नित्यं अभ्यसेत्) अतः ब्राह्मण को शुद्ध हृदय से उस गायत्री का नित्य अभ्यास करना चाहिये, उसकी उपासना करनी चाहिये।

गायत्री उपासना से ब्रह्मप्राप्ति

स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

अथर्व.१९।७१।१

(मया वरदा प्रचोदयन्तां द्विजानां पावमानी वेदमाता स्तुता) मेरे द्वारा वर देने वाली, श्रेष्ठ प्रेरणा देने वाली तथा द्विजों को पवित्र करने वाली वेदमाता अर्थात् ज्ञान की माँ गायत्री की स्तुति की गयी। यह माँ (मह्यं आयुः, प्राणं, प्रजां, पशुं, कीर्तिं, द्रविणं, ब्रह्मवर्चसं दत्वा ब्रह्मलोकं व्रजत) मुझे पूर्ण आयु, स्वस्थ एवं शक्तिशाली प्राण तथा इन्द्रियाँ, उत्तम सन्तान, पशु, कीर्ति, धन एवं ब्रह्मतेज देकर अन्त में ब्रह्मलोक को ले जाती है।

अथवा, (हे माँ !) मुझे इस जीवन में पूर्ण आयु, स्वस्थ एवं शक्तिशाली प्राण तथा इन्द्रियाँ, उत्तम सन्तान, पशु, धन, कीर्ति एवं ब्रह्मतेज देकर अन्त में ब्रह्मलोक को ले जाओ।

यहाँ वेदमाता का अर्थ वेदों की माँ नहीं, प्रत्युत ज्ञान की माँ है।

यह है गायत्री मन्त्र की महिमा तथा उसकी उपासना का फल। यह वेद वाक्य है, स्वयं परब्रह्म की कल्याणमयी वाणी है, अतः इसमें संशय का कोई स्थान नहीं है।

इस प्रकार स्वयं वेद में ही यह स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रणव सहित गायत्री के जप से न केवल आध्यात्मिक उन्नति होती है, न केवल स्वर्ग तथा मोक्ष की ही प्राप्ति होती है, प्रत्युत इससे समस्त श्रेष्ठ सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के साथ साथ ज्ञान, लौकिक ऐश्वर्य,कीर्ति, धन, सन्तान,स्वस्थ जीवन एवं दीर्घ आयु की भी प्राप्ति होती है और अन्त में यह दिव्य ज्ञानस्वरूपा माँ अपने उपासक को ब्रह्मलोक की प्राप्ति कराती है।

उपासना

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याऽभरत्।।

श्वेताश्वतर उपनिषद्, २।१ यजुर्वेद,११।१

(तत्वाय) तत्व ज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये (प्रथमं) सर्वप्रथम (सविता मनः धियः युञ्जानः) समस्त जगत् के उत्पादक एवं प्रेरक सविता देव में, परमेश्वर में मन तथा धारणावती बुद्धि को युक्त करते हुये, लगाते हुये, (पृथिव्याः अधि) तथा पार्थिव पदार्थों से ऊपर उठकर, बाह्य विषयों से अलग होकर (अग्नेः ज्योतिः निचाय्य) परमात्मा की ज्योति को, उसके प्रकाश अथवा (भर्गः) तेज को जानकर प्राप्तकर (आभरत्) उसे अपने अन्दर धारण करे।

तत्व ज्ञान के लिये आवश्यक है मन तथा बुद्धि को स्थिर एवं एकाग्र करना और इसका एकमात्र उपाय है, इन्हे मंगलकारी प्रेरणा देने वाले सविता देव अर्थात् परमात्मा में लगाना और बाह्य विषयों से ऊपर उठकर परमात्मा के वरण करने योग्य तेज को, उसकी ज्योति को अपने अन्दर धारण करना। जितने अंश मे हम उस परम पिता परमात्मा के तेज को ग्रहण करके अपने अन्दर धारण कर सकेंगे उतने ही हम उसके निकट पहुँचने के योग्य बन सकेंगे।

प्रजापतिः ऋषिः। सविता देवता। शंकुमती गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे।
स्वर्ग्याय शक्त्या।

श्वेताश्वर उपनिषद्,२।२ यजुर्वेद,११।२

श्वेताश्तर उपनिषद् में 'स्वर्ग्याय' के स्थान पर 'सुवर्गेयाय' शब्द आया है।

(सवितुः देवस्य सवे) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले तथा प्रेरणा देने वाले सविता देव की, परब्रह्म की इस सृष्टि में (युक्तेन मनसा) योग युक्त निर्मल शान्त मन से (वयं स्वर्ग्याय शक्त्या) हम सुख अथवा परम आनन्द की प्राप्ति के लिये अपनी पूर्ण शक्ति से प्रयास करें।

अथवा, (युक्तेन मनसा) हम योग युक्त समाहित, संयमित तथा विषयों से विरक्त मन से (सवितुः देवस्य सवे) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले, उसको प्रेरणा देने तथा पालन पोषण करने वाले सविता देव की, परब्रह्म की आज्ञा में अर्थात् उसके निर्देशों, नियमों एवं वेदोक्त आदेशों के अनुसार (स्वर्ग्याय शक्त्या) सुवर्ग अर्थात् विशेष सुख, ऐश्वर्य एवं वैभव की प्राप्ति के लिये अपनी पूर्ण शक्ति से निरन्तर प्रयास करें।

पहले मन्त्र में मन तथा बुद्धि को परमात्मा में संयुक्त करने का निर्देश दिया गया है तथा इस मन्त्र में परमात्मा में युक्त मन से दिव्य एवं अलौकिक सुख की प्राप्ति के लिये सतत् प्रयास करने की शिक्षा दी गई है।

यही हमारे जीवन का लक्ष्य, कर्तव्य एवं जीवन दर्शन होना चाहिये।

योग युक्त मन का तात्पर्य हानि-लाभ, सुख-दुःख, जय-विजय आदि में समबुद्धि होना, प्रत्येक प्राणी के प्रति समत्व का भाव रखना तथा चित्त की वृत्तियों के निरोध एवं इन्द्रियों के निग्रह से प्राप्त, संयमित, निर्मल एवं शान्त मन की उस अवस्था से है जब वह पूर्ण रूपेण परमात्मा से संयुक्त हो जाता है।

युक्त्वाय॑ सवि॒ता दे॒वान्त्स्व॑र्य॒तो धि॒या दिव॑म् ।
बृ॒हज्ज्योति॑: करिष्य॒त: स॑वि॒ता प्र सु॑वाति॒ तान् ॥

श्वेताश्वतर, उपनिषद्,२।३ यजुर्वेद,११।३

जो सविता देव में, परमात्मा में अपने मन तथा इन्द्रियों को (युक्त्वाय) संयुक्त करके (स्व: यत:) सुख प्राप्त कराने वाली, सुखस्वरूप परब्रह्म की ओर जाने वाली (धिया) बुद्धि तथा (बृहत् ज्योति: दिवम्) महान् प्रकाश करने वाले दिव्य ज्ञान से (करिष्यत) भक्तिपूर्वक उपासना करने वाले हैं, (तान् देवान् सविता प्रसुवाति) उन विद्वान् उपासकों को

परम कारुणिक प्रभु प्रेरणा देता है, उत्साहित करता है, सहारा देता है।

स्वामी शङ्कराचार्य जी ने श्वेताश्वतर उपनिषद् के अपने भाष्य में 'देवान्' का अर्थ मन आदि इन्द्रियाँ किया है। शतपथ ब्राह्मण,६।३।१।१५ में कहा गया है, 'मनो वै सविता प्राणा देवा:।' मन सविता है, प्राण देव हैं तथा 'बृहत् ज्योति: करिष्यत:' का अर्थ है, बृहत् ज्योति उत्पन्न करने वाला। यह आदित्य ही बृहत् ज्योति है। इस प्रकार इस मन्त्र का अर्थ होगा-

जो सविता देव में, परमात्मा में अपने मन तथा संयमित इन्द्रियों एवं (स्व: यत:) सुखस्वरुप परब्रह्म की ओर चलने वाली बुद्धि को संयुक्त करते हैं, उन्हें (दिवं) द्युलोक में स्थित आदित्य रूपी बृहत् ज्योति को उत्पन्न करने वाला सविता अपनी ओर प्रेरित करता है, उनके हृदय में अपने दिव्य स्वरूप को प्रकाशित करता है। 'दिवं प्रसुवाति दिव्य स्वरूपं प्रकाशयति' स्वामी दयानन्द (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका)

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः।।

ऋग्वेद,५।८१।१
श्वेताश्वतर उपनिषद् २।४, यजुर्वेद,५।१४,११।४,३७।२

(विप्राः) मेधावी विद्वान् तथा ज्ञानीजन (बृहतः विपश्चितः विप्रस्य) महान्, अनन्त ज्ञान युक्त, सर्वज्ञ परमात्मा में अपने (मनः युञ्जते उत धियः युञ्जते) अपने मन को संयुक्त करते हैं तथा अपनी बुद्धि को संयुक्त करते हैं अर्थात् बाह्य विषयों से हटा कर अपने मन एवं बुद्धि को केवल एक मात्र परमात्मा में ही एकाग्ररूप से केन्द्रित कर देते हैं, उसी की भावना, उसी का ध्यान तथा उसी का अनन्य भाव से चिन्तन करते हैं। (वयुनावित् एकः इत् होत्राः विदधे) समस्त कर्मों, मनोभावों एवं चेष्टाओं को जानने वाले तथा अकेले ही समस्त यज्ञों को, समस्त जगत् को धारण करने वाले, (सवितुः देवस्य परिष्टुतिः मही) सविता देव की स्तुति महान् एवं श्रेष्ठ है।

तात्पर्य यह है कि केवल परमात्मा की ही स्तुति करनी चाहिये, वही कल्याणकारी है, अन्य किसी देवता अथवा पुरुष चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो, की स्तुति अथवा उपासना नहीं करनी चाहिये। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि जो लोग ब्रह्म से भिन्न अन्य देवताओं की उपासना करते हैं वे उन देवताओं के पशु के समान हैं और उन देवताओं को यह अच्छा नहीं लगता कि ये भक्त रूपी पशु उनसे छिन जायें, उनकी अर्चना एवं उपासना बन्द कर दें क्योंकि संसार में किसी व्यक्ति का यदि एक भी पशु खो जाता है अथवा उससे दूर चला जाता है, तो उस व्यक्ति को अत्यन्त दुःख होता है, अतः यदि उन देवताओं के इतने सारे भक्त रूपी पशु उनसे अलग हो जायँ, तो उन्हें कितना दुःख होगा।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोकं एतु पथ्येव सूरेः। शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥

ऋग्वेद, १०।१३।१

श्वेताश्वतर उपनिषद्,२।५ यजुर्वेद,११।५

(ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः वां युजे) हे बुद्धि तथा मन! मैं नमस्कार वचनों से, भक्ति पूर्वक की गयी स्तुतियों से तुम दोनों को उस (पूर्व्यं पूर्वं चिरन्तनम्) अनादि, अनन्त, पुरातन एवं सनातन ब्रह्म में संयुक्त करता हूँ। (सूरेः पथ्या इव श्लोकः वि एतु) परम विद्वानों के मार्ग के तुल्य, उनके श्रेष्ठ जीवन पथ का अनुसरण करते हुये मुझे सत्य कीर्ति प्राप्त हो अथवा (श्लोकः सूरेः पथ्या इव वि एतु) मेरा यह श्लोक, मेरे द्वारा वेद मन्त्रों से की गयी सुखदायी स्तुति देवों की कीर्ति की भाँति सब ओर फैल जाय। मेरी इस प्रार्थना को (दिव्यानि धामानि आ तस्थुः विश्वे अमृतस्य पुत्राः शृण्वन्तु) दिव्य धामों में स्थित समस्त अमृत पुत्र सुनें।

परमात्मा का अंश होने के कारण आत्मा यथार्थ में अमृत पुत्र है। वास्तव में हम सब अमृत पुत्र हैं किन्तु उस अमृतत्व की प्राप्ति के लिए हमें अपने अमृत स्वरूप परम पिता के साथ अपने मन तथा अपनी बुद्धि को

अनन्य भक्ति के साथ संयुक्त करना चाहिए और उन श्रेष्ठ पुरुषों के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए जो देवत्व प्राप्त करके परमात्मा के दिव्य धाम में स्थित हैं।

शतपथ ब्राह्मण ६।३।१।१७ में श्लोक का अर्थ कीर्ति किया गया है और कहा गया है कि प्रजापति अमृत है, सब देव उसके पुत्र हैं तथा यह लोक ही दिव्य धाम है और इसमें ये देव उपस्थित हैं।

तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः।
सत्यस्य युवानमद्रीघवाचं सुशेवम्।।

अथर्व. ६।१।२

(तं उ स्तुहि) उसी की स्तुति करो (यः सिन्धौ अन्तः) जो हमारे हृदय तथा इस संसार रूपी समुद्र के अन्दर (सत्यस्य सूनुः) सत्य की प्रेरणा देने वाला, (युवानम्) सदा युवा तथा (अ द्रोघ वाचं) दोषरहित वेद वाणी का स्वामी है और (सुशेवम्) उत्तम सुखदायक है।

शेवम् सुख नाम। निघण्टु. ३।६

सूनुः- षू प्रेरणे। (तुदादिः)

दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेहि।
आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम्।।

अथर्व. ६।१।१

(आथर्वण) हे स्थिर मन तथा बुद्धि वाले भक्त! (दोषो गाय) रात्रि के समय परमात्मा का गान करो, (बृहत् गाय) बहुत गान करो, (सवितारं देवं स्तुहि) सविता देव की स्तुति करो (द्युमत् धेहि) तथा भगवान् के ज्योतिर्मय स्वरूप को अपने हृदय में धारण करो।

थर्वतिः चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः।

निरुक्त. ११।२।१३

'थर्व' धातु का अर्थ है चंचल होना, चलना। उसका प्रतिषेध हुआ 'अथर्व'

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि ।।

साम. क्र.सं. १४६८, अथर्व. २०।४७।१०,२०।६९।९,२०।२६।४
ऋग्वेद,१।६।१, यजुर्वेद,२३।५

जो उपासक (ब्रध्नं सर्वानन्दवर्धकं महान्तं परमेश्वरम्) सबसे महान्, समस्त प्रकार के सुखों की वृद्धि करने वाले, (अरुषम्) क्रोध न करने वाले, किसी की हिंसा न करने वाले, सब को सुख देने वाले, परम करुणामय, आदित्यवर्ण, प्रकाशस्वरुप (तस्थुषः) समस्त स्थावर जङ्गम जगत् में (परिचरन्तं) सब ओर से व्याप्त होने वाले, सर्वज्ञ परमात्मा में (युञ्जन्ति) अपने मन, बुद्धि तथा आत्मा को भली प्रकार से संयुक्त कर देते हैं, वे (दिवि रोचना) द्युलोक में व्याप्त सूर्य की किरणों के समान यशस्वी तथा तेजस्वी होकर (रोचन्ते) प्रकाशित होते हैं, शोभायमान होते हैं, मोक्ष, सुख को प्राप्त करते हैं।

ब्रध्न महन्नामसु पठितम् । (निघण्टु 3। 3)

इन्द्र

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः।
इन्द्रं वाणीरनूषत।।

साम. क्रं.सं. १९८ तथा ७९६, ऋग्.१।७।१

(गाथिनः) हे साम गान करने वालो! तुम सर्वोत्तम गान से (बृहत् इन्द्रं इत् अनूषत) महान् इन्द्र का ही, परमेश्वर का ही स्तवन करो, (अर्किणः) हे वेदपाठी लोगो! (अर्केभिः इन्द्रं) वेद मन्त्रों से इन्द्र की अर्चना करो तथा हे मनुष्यो! तुम अपनी वाणी द्वारा इन्द्र की महिमा का गान करो, स्तुति करो।

अर्को मन्त्रो भवति यदेनेनार्चन्ति।

निरुक्त. ५।४

अर्क का अर्थ है मन्त्र, जिससे भगवान् की अर्चना की जाती है।

इन्द्रा॑य॒ सामं॑ गायत॒ विप्रा॑य बृ॒हते॒ बृ॒हत्।
ब्र॒ह्मकृ॑ते॒ विप॒श्चिते॑ पन॒स्यवे॑।।

साम.पूर्वा. क्र.सं. ३८८, साम. उत्त. ६।७२।११ क्र.सं. १०२५
ऋग्. ८।९८।१ (पाठभेद), अथर्व. २०।६२।५ (पाठभेद)

हे उद्गाताओ! (विप्राय) विविध कामनाओं को पूर्ण करने वाले, मेधावी (ब्रह्म कृते) वेद को उत्पन्न करने वाले, (विपश्चिते) सर्वदृष्टा, ज्ञानी तथा ज्ञान देने वाले (पनस्यवे) प्रशंसा एवं स्तुति के योग्य (बृहते इन्द्राय) महान इन्द्र के लिये, परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के लिये (बृहत् साम गायत) बृहत्साम का गान करो।

ऋग्वेद में 'ब्रह्मकृते' के स्थान पर 'धर्मकृते' अर्थात् धर्म को उत्पन्न करने वाले, शब्द आया है। इससे स्पष्ट है कि जो वेद में निर्देश दिया गया है, वही धर्म है।

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर।।

साम उत्त. १६।१(३)।२ क्र.सं. १५८०, ऋग्. ८।६१।६,
अथर्व. २०।११८।२

(देव) हे देव! हे प्रभो! (त्वम् अश्वस्य पौरः) आप अश्वों की पूर्ति करने वाले, (पुरुकृत गवां असि) गौओं को पुष्ट करने वाले एवं उनकी संख्या में वृद्धि करने वाले (हिरण्ययः उत्सः असि) तथा समस्त धनों के स्वर्णिम स्रोत हो। (त्व दानं न किः हि परिमर्धिषत्) आपके दान को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता। (यत् यत् यामि तत् आभर) हे प्रभु! मैं आपसे जो जो याचना करता हूँ, उसे पूर्ण कीजिये।

अद्याद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः।
विश्वा च नो जरितृन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः।।

साम. उत्त. १३।३।१, क्र.सं. १४५८, ऋग्.८।६१।१७

(इन्द्र) हे इन्द्र! (अद्य अद्य) आज आज (श्वः श्वः) कल कल तथा (परे च) कल के बाद के दिनों में भी (नः त्रास्व) हमारी रक्षा कीजिये। (सत्पते) हे सज्जनों के पालक! (विश्वा अहा) समस्त दिनों में अर्थात् सदैव (दिवा नक्तं च) दिन तथा रात्रि में (नः जरितृन्) स्तुति करने वाले हम लोगों का (रक्षिषः) संरक्षण कीजिये।

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश॥

ऋग्. ६।४७।१८

(रूपं रूपं प्रतिरूपः बभूव) प्रत्येक रूप में उसी प्रभु का रूप है, यह निराकार परब्रह्म समस्त प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से स्थित होकर उन्हीं के रूप वाला हो रहा है, (तदस्य रूपं) उसका बाह्य रूप (प्रति चक्षणाय) केवल देखने के लिये होता, वह तो निराकार है अर्थात् प्राणी का उसका रूप केवल बाहर से देखने के लिये है। (इन्द्रः मायाभिः पुरुरूपः ईयते) प्रभु अपनी अनन्त शक्तियों से अनेक रूप धारण करता है (ये समस्त प्राणी उसी के रूप हैं) (युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश) उसके रथ में हज़ारों घोड़े जुते हैं, उसकी अनन्त शक्तियाँ हैं, वह सहस्रों किरणों से प्रकाशित हो रहा है।

इन्द्र अपनी माया से पुरुरूप हो जाता है। एक सौ दश घोड़े के समान इन्द्रियाँ इसमें जुती हुयी हैं। यही इन्द्रियाँ हैं, यह दस इन्द्रियाँ हैं। यही हज़ारों इन्द्रियाँ हैं। यही अनन्त इन्द्रियों का रूप हैं। यह ऐसा ब्रह्म है जिसका न पर है, न अपर। जिसका न बाहर है न भीतर। यह आत्मा ब्रह्म है। यह सबको देखता है। यही अनुशासन है अर्थात् यही शास्त्र का मर्म है।

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्। संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतꣳ सेना अजयत् साकमिन्द्रः।।

सा. क्र.सं. १८४९, ऋग्. १०।१०३।१, यजु. १७।३३

(आशुः शिशानो) शीघ्रता से शत्रु पर आक्रमण करने वाला, (वृषभो न भीमः) वृषभ (सांड़) के समान भयंकर (घना घनः) शत्रु का नाश करने वाला, (चर्षणीनां क्षोभणः) द्वेष करने वाले दुष्टों में क्षोभ तथा भय उत्पन्न करने वाला, (संक्रन्दनः) शत्रुओं को रुलाने वाला, (अनिमिषः) सदा सावधान रहने वाला, आलस्य से रहित, (एकवीरः) एक अद्वितीय पराक्रमी वीर इन्द्र (शतं सेनाः साकं अजयत्) शत्रुओं की सैकड़ों सेनाओं पर एक साथ विजय प्राप्त करता है।

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अराव्णः।।

ऋग्. ९।६३।५

(इन्द्रं वर्धन्तः) इन्द्र का सम्मान, उनका महत्व बढ़ाते हुये, (अराव्णः अपघ्नन्ता) दान न देने वाले, सब कुछ अपने लिये अनावश्यक रूप से इकट्ठा करके रखने वाले समाज विरोधी तत्वों का नाश करते हुये (विश्वं) सबको (अप्तुरः) गतिशील तथा प्रगति करने वाला (कृण्वन्तः आर्यम्) आर्य बनायें।

हमारे जीवन का उद्देश्य ही (कृण्वन्तो विश्वमार्यम्) सबको आर्य बनाना होना चाहिये।

गायंन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।
ब्रह्माणंस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिंव येमिरे।।

साम. क्र.सं. तथा १३४४, ऋग्. १।१०।१

(शतक्रतो) सैकड़ों यज्ञ तथा श्रेष्ठ कर्म करने वाले हे इन्द्र (गायत्रिणः त्वा गायन्ति) गायक लोग आपके गुणों का गान करते हैं, (अर्किणः) वेदपाठी, पूजा करने वाले विद्वान् (अर्कं अर्चन्ति) पूजनीय आपका पूजन करते हैं तथा (ब्राह्मणः) ज्ञानी ब्राह्मण (वंशं इव) बाँस में लगे हुये झंडे के समान (त्वा उत येमिरे) आपकी कीर्ति को ऊँचा उठाते हैं, आपका यशोगान करके आपकी महानता का प्रचार करते हैं।

हमें सदैव अपने देवताओं का यशोगान करना चाहिये, उनकी श्रेष्ठता का वर्णन करना चाहिये किन्तु दुर्भाग्य से आजकल हम लोगों में बहुत से मूर्ख अपने देवताओं का अपमान करके दूसरे धर्म के देवताओं का, यहाँ तक कि दूसरे धर्मों के पुरुषों तथा महिलाओं को श्रेष्ठ बताकर उनका गुणगान करते हैं, उनके मन्दिर बनवाते हैं, उन्हें ब्रह्म के समान सच्चिदानन्द कहते हैं तथा उनका पूजन करते हैं।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ।।

साम. उत्त. ८।६ (२) । २ क्र. सं.११७०
ऋग्.८।९८।११ (पाठभेद), अथर्व. २०।१०८।२,

(शतक्रतो) सैकड़ों पराक्रम तथा यज्ञ करने वाले हे इन्द्र! (वसो) हे जगन्निवास! (त्वं हि नः पिता) निश्चय ही आप हमारे पिता तथा (त्वं माता बभूविथ) आप ही हमारी माता हो, (अधा ते सुम्नम् ईमहे) अतः हम आप से सुख की प्रार्थना करते हैं।

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।।

साम. ४।७।१० क्रम. सं. ४५६ (पाठभेद) यजु. ३६।८

परमात्मा का तेज ही समस्त जगत् को प्रकाशित करता है, जगत् में उसी का प्रकाश शोभायमान हो रहा है, वही इस विश्व पर शासन करता है। हमारे पुरुषों, पक्षियों तथा पशुओं आदि का कल्याण हो।

त्वयेदिंन्द्र युजा वयं प्रतिं ब्रुवीमहि स्पृधंः।
त्वमस्माकं तवं स्मसि ।।

ऋग्. ८।९२।३२

(इन्द्र) हे इन्द्र! (त्वया युजा इत्) आप से संयुक्त होकर, आपकी सहायता प्राप्त करके ही हम (स्पृधः) स्पर्धा तथा शत्रुता करने वालों को (प्रति ब्रुवीमहि) करारा उत्तर दे सकते हैं तथा शत्रुओं का नाश कर सकते हैं (त्वम् अस्माकम्) आप हमारे हैं और (तव स्मसि) हम आपके हैं।

भद्रंभंद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो। यदिंन्द्र मृडयांसि नः।।

साम. पूर्वा. २।८।९, क्र.सं. १७३, ऋग्. ८।९३।२८

(शतक्रतो इन्द्र) सैकड़ों श्रेष्ठ कार्य, सैकड़ों यज्ञ करने वाले हे इन्द्र! (नः भद्रं भद्रं इषं ऊर्जे) हमें कल्याणकारी तथा सुखदायक अन्न एवं रस तथा धन एवं बल (आभर) भरपूर दीजिये, (यत् मृडयासि नः) क्योंकि आप हमें सुख देने वाले हैं।

विष्णु

तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्।।

अथर्व. ७।२७।७, ऋग्. १।२२।२०, साम. ८।२।४, क्र.सं. १६७२, यजु. ६।५

(विष्णोः तत् परमं पदम्) विष्णु के उस परम पद को (सूरयः) ज्ञानी जन (दिवि आततम्) द्युलोक में स्थित (चक्षुः इव) सूर्य अथवा चारों ओर फैले हुये सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट रूप से देखते हैं।

पदम्- पद्यते गम्यते प्राप्यते इति पदम्।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूढ्हमस्य पां सुरे।।

ऋग्. १।२२।१७, साम. ८।२।१, क्र.सं. १६६९,
यजु. ५।१६ (पाठभेद), अथर्व. ७।२७।४

(विष्णुः इदं विचक्रमे) विष्णु ने यह विशेष पराक्रम किया है, यह समस्त विश्व उसी का पराक्रम है। (त्रेधा नि दधे पदम्) उसने द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी इन तीनों लोकों में अपने पद रखे हैं, अपने पराक्रम किये हैं किन्तु अन्तरिक्ष में विष्णु के जो श्रेष्ठ कर्म जैसे विद्युत और वायु आदि हैं, वह दिखायी नहीं देते, वह गुप्त रहते हैं।

अथवा,

जैसे (पांसुरे) धूलि भरे स्थान में पदचिन्ह (समूढम्) स्पष्ट नहीं दिखायी देते, उसी प्रकार सामान्य व्यक्ति को उसकी सत्ता का भान नहीं होता, यहाँ तक कि मूर्ख लोग कहते हैं कि संसार के समस्त कार्य अपने आप होते हैं, भगवान् तो हैं ही नहीं, यह तो केवल मनुष्यों की कल्पना है।

अथवा,

मध्याह्न कालीन सूर्य को विष्णु कहते हैं।

विष्णु रूपी सूर्य ने पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक, इन तीनों लोकों में विशेष पराक्रम किया है। पृथिवी पर यह अग्नि रूप में, अन्तरिक्ष में विद्युत रूप में तथा द्युलोक में सूर्य के रूप में स्थित होकर अपने पराक्रम से तीनो लोकों को धारण करता है, प्रकाशित करता है, उन्हें जीवनी शक्ति प्रदान करता है। अन्तरिक्ष में इसका विद्युत रूप दिखायी नहीं देता। इसी प्रकार इसकी Ultra violet तथा Infra red किरणें सामान्य रूप से दिखायी नहीं देती।

विष्णु पृथिवी पर अग्नि के रूप में, अन्तरिक्ष में विद्युत के रूप में और द्युलोक में सूर्य के रूप में स्थित है।

वाल्मीकि रामायण में भी इस तथ्य का उल्लेख किया गया है-

एकेन हि पदा कृत्स्नां पृथिवीं सोऽध्यतिष्ठत।
द्वितीयेनाव्ययं व्योम द्यां तृतीयेन राघव।।

वा. रामायण. १।३१।१९

त्रीणि॑ प॒दा वि च॑क्रमे॒ विष्णु॑र्गो॒पा अदा॑भ्यः।
अत॒ो धर्मा॑णि धा॒रय॑न्।।

अथर्व. ७।२७।५ (पाठभेद), ऋग्. १।२२।१८
साम. १८।२।२, क्र.सं. १६७०, यजु. ३४।४३

(विष्णुः गोपाः अदाभ्यः) सर्वव्यापक, सर्व रक्षक एवं सर्वजयी, जो किसी के द्वारा दबाया अथवा पराभूत नहीं किया जा सकता, ऐसे परमात्मा ने (त्रीणि पदा विचक्रमे) अपने पराक्रम से पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक इन तीनों लोकों तथा भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीन कालों का निर्माण किया है (अतः धर्माणि धारयन्) तथा इस संसार चक्र को चलाने के लिये समस्त शाश्वत सनातन एवं सत्य नियमों को धारण किया है।

अथर्ववेद में 'अतः' के स्थान पर 'इतो' शब्द आया है।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा।।

अथर्व. ७।२७।६, (पाठभेद) ऋग्. १।२२।१९
साम. १८।२।३, क्र.सं. १६७१, यजु. ६।४

(विष्णोः कर्माणि पश्यत) विष्णु के, भगवान् के कार्यों को देखो, (यतः व्रतानि पस्पशे) जिनसे सृष्टि के समस्त व्यापार, समस्त कार्य तथा समस्त शाश्वत नियम चलते हैं। (इन्द्रस्य युज्यः सखा) वह परमात्मा आत्मा का योग्य एवं परम मित्र है।

आत्मा में परमात्मा का मित्र बनने की समस्त योग्यतायें हैं, आवश्यकता है प्रयास, ज्ञान, कर्म, भक्ति एवं उपासना की।

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाꣳसः समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदम्।।

ऋग्. १।२२।२१, साम. १८।२।५, क्र.सं. १६७३, यजु. ३४।४४

(विष्णोः यत् परमं पदम्) विष्णु का जो सर्वोत्कृष्ट पद है, स्वरूप है

(तत्) उसे (जागृवाँसः) प्रमाद रहित होकर तथा जागरुक रहकर निरन्तर प्रयास करने वाले और (विपन्यवः) भक्ति पूर्वक भगवान् की प्रशंसा, स्तुति एवं उपासना करने वाले (विप्रासः) मेधावी विद्वान् ही (समिन्धते) अपने हृदय में श्रद्धा, सत्य एवं ज्ञान से भली प्रकार प्रकाशित करते हैं।

प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥

अथर्व. ७।२६।२ (पाठभेद), ऋग्. १।१५४।२, यजु. ५।२०

नाना प्रकार के (कुचरः) ऊँचे नीचे कठिनता से चलने योग्य स्थानों में विचरण करने वाले और (गिरिष्ठाः) पर्वत कन्दराओं में रहने वाले (भीमः मृगः न) भयानक सिंह के समान, (तत् विष्णुः) वह विष्णु, व्यापक प्रभु, (यस्य उरुषु त्रिषु) जिसके तीन विस्तृत विक्रमों में, तीन पदों में समस्त भुवन, समस्त प्राणी एवं पदार्थ स्थित रहते हैं, (विक्रमणेषु) अपने पराक्रमों के कारण सर्वत्र समस्त मनुष्यों द्वारा स्तुत किया जाता है, प्रशंसित होता है।

जब 'कुचरः' तथा 'गिरिष्ठाः' ये दोनों पद विष्णु भगवान् के विशेषण होंगे, तब 'कुचरः' का अर्थ होगा- 'सर्वत्र विचरण करने वाले,' सर्वगतः तथा 'गिरिष्ठाः' का अर्थ होगा 'मेघों में विद्यमान' सर्व व्यापक।

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा।।

ऋग्. १।१५४।४

(यस्य त्री पूर्णा मधुना पदानि) जिसके मधुरता से परिपूर्ण तीन पद (अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति) अपनी धारणा शक्ति से कभी नष्ट न होते हुये समस्त प्राणियों को सदा आनन्द देते हैं, जो (य उ त्रिधातु) अर्थात् सत्व, रजस् और तमस् तथा (पृथिवी उत द्यां) पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक और (विश्वा भुवनानि एकः दाधार) समस्त भुवनों को एक अकेला ही धारण करता है।

सरस्वती

सरस्वती जी के तीन मन्त्र प्रार्थना मन्त्र में आ चुके हैं दो अन्य मन्त्र निम्न प्रकार हैं। यह उल्लेखनीय है कि किसी भी मन्त्र में सरस्वती जी के विषय में की गयी पौराणिक कल्पनाओं का कोई उल्लेख नहीं है।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती।।

यजु. २०।८५, ऋग्.१।३।११

(सूनृतानां चोदयित्री) मधुरता पूर्ण सत्यवाणी एवं सत्य कर्मों की प्रेरणा देने वाली (सुमतीनाम् चेतन्ती) तथा उत्तम बुद्धियों को जाग्रत करने वाली, बढ़ाने वाली सरस्वती (यज्ञं दधे) यज्ञ अर्थात् समस्त श्रेष्ठ कर्मों को धारण करती है।

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना।
धियो विश्वा वि राजति।।

यजु. २०।८६, ऋग्.१।३।१२

(सरस्वती केतुना) सरस्वती उत्तम ज्ञान तथा कर्म के साथ (महः अर्णः) महान् शब्द सागर का (प्रचेतयति) ज्ञान कराती है तथा (विश्वाः धियः विराजति) समस्त बुद्धियों को ज्ञान से प्रकाशित करती है।

शिव तथा रुद्र

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः।
बाहुभ्यामुत ते नमः।।

यजु. १६।१

(नमः ते रुद्र मन्यव) हे रुद्र! आपके क्रोध को नमस्कार है, (उतो त इषवे नमः) आपके वाणों के लिये नमस्कार है (उत ते बाहुभ्याम् नमः) तथा आपकी दोनों भुजाओं को मेरा नमस्कार है।

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत्।।

यजु. १६।३

(गिरिशन्त) पर्वत पर निवास करने वाले अथवा मेघों से वृष्टि के द्वारा समस्त जगत् को सुख देने वाले तथा (गिरित्र गिरि वाचि स्थितः) वाणी में स्थित अर्थात् वेद वाणी में स्थित होकर समस्त प्राणियों की ज्ञान द्वारा रक्षा करने वाले, हे रुद्र! (यां इषुं अस्तवे हस्ते बिभर्षि) चलाने के लिये जो बाण आप अपने हाथ में धारण किये हुये हैं, (तां शिवां कुरु) उसे हमारे लिये कल्याणकारी कीजिये (मा हिंसीः पुरुषं जगत्) तथा जगत् के मनुष्यों, पशुओं एवं अन्य प्राणियों को कष्ट मत दीजिये, उनका नाश मत कीजिये।

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।
अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः।।

यजु. १६।८

(नमः अस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे) आकाश रूपी नीली ग्रीवा तथा असंख्य किरणों रूपी नेत्रों वाले एवं समस्त संसार में जीवनी शक्ति एवं सुख का सञ्चार करने वाले, वसुधा को वृष्टि द्वारा सींचने वाले आदित्य रूपी रुद्र को नमस्कार है, प्रणाम है (अथो ये अस्य सत्वानः) तथा इसकी जो सत्वरूपी जीवन एवं प्रकाश दायिनी किरणें हैं, (अहं तेभ्यः अकरम् नमः) मैं उन्हें भी प्रणाम करता हूँ।

अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे।
निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव।।

यजु. १६।१३

(सहस्राक्ष शतेषुधे) सहस्रों नेत्रों तथा सैकड़ों तूणीरों वाले हे रुद्र! (अवतत्य धनुः त्वं) आप अपने धनुष की प्रत्यञ्चा उतार कर (शल्यानां मुखाः निशीर्य) तथा वाणों के मुखों अर्थात् उन पर लगे हुये फालों को निकालकर (नः शिवः सुमनाः भव) हमारे लिये कल्याणकारी तथा सुन्दर कृपा पूर्ण मन वाले होइये।

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे।।

यजु. १६।४९

(रुद्र) हे रुद्र! (विश्वाहा शिवा भेषजी) संसार के दुःखों को सर्वथा दूर करने वाली कल्याणकारी औषधि के समान (या ते शिवा तनूः) जो आपका कल्याणकारी दिव्य स्वरूप है तथा (रुतस्य शिवा भेषजी) शरीर की व्याधियों को दूर करने वाली आपकी कृपा रूपी जो कल्याणकारी औषधि है, (तया नः मृड जीवसे) उससे आप हमें जीवित रहने के लिये सुखी कीजिये अर्थात् हमारे जीवन को सुखमय बनाइये जिससे हम भली प्रकार जीवित रह सकें।

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः।
तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि।।

यजु. १६।५३

(भगवः) हे ऐश्वर्य सम्पन्न रुद्र! (तव बाह्वोः सहस्राणि सहस्रशः हेतयः) आपकी भुजाओं में बहुत प्रकार के सहस्रों आयुध हैं। (ईशानः) हे संसार के स्वामी! आप (तासां मुखा पराचीना कृधि) उनके मुखों को हमसे दूर कर दीजिये।

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।।

यजु. १६।६२

(ये अन्नेषु) जो भोज्य पदार्थों में तथा जो (पात्रेषु) जल, दुग्ध आदि पीने वाले पात्रों में स्थित किन्तु सामान्य रूप से नेत्रों को न दिखायी देने वाले रोगाणु रूपी रुद्र (जनान् विविध्यन्ति) मनुष्यों को रोग ग्रस्त कर देते हैं, (तेषां धन्वानि सहस्र योजने अवतन्मसि) उनके धनुषों को हम हज़ारों योजन दूर हटाते हैं अर्थात् उन्हें समूल नष्ट करते हैं।

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।।

यजु. १६।५४

(ये असंख्याताः सहस्राणि रुद्राः भूम्यां अधि) जो असंख्य रुद्र पृथिवी के ऊपर स्थित हैं, (तेषां धन्वानि) उनके धनुषों को हम (सहस्र योजने अवतन्मसि) हज़ारों योजन दूर करें।

जो भिन्न भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणु आदि हैं, वे सब रुद्र हैं, हमें उन्हें अपने से दूर करने का, नष्ट करने का प्रयास करना चाहिये।

सो॑ऽर्य॒मा स वरु॑ण॒ः स रु॒द्रः स म॑हादे॒वः। अथर्व. १३।४।४

(सः अर्यमा, सः वरुणः, सः रुद्रः, सः महादेवः) वह सविता अर्थात् परमात्मा ही अर्यमा है, वही वरुण है, वही रुद्र है तथा वही महादेव है।

र॒श्मिभि॒र्नभ॒ आभृ॑तं महे॒न्द्र ए॒त्यावृ॑तः॥

अथर्व. १३।४।९

(रश्मिभिः नभ) उसके तेज की रश्मियों से आकाश (आभृतम्) भरा हुआ है, (महेन्द्रः आवृतः एति) वह महान् इन्द्र तेज से आवृत्त होकर चलता है।

यो अ॒ग्नौ रु॒द्रो यो अ॒प्स्व॑१॒॑न्तर्य ओष॑धीर्वी॒रुध॑ आवि॒वेश॑।
य इ॒मा विश्वा॒ भुव॑नानि चाक्लृ॒पे तस्मै॑ रु॒द्राय॒ नमो॑ अस्त्व॒ग्नये॑॥

अथर्व. ७।९१।१

(यः रुद्रः अग्नौ) जो रुद्र अग्नि में स्थित है, (यः अप्सु अन्तः) जो जलों के अन्दर है, (यः ओषधीः वीरुधः आविवेश) जो ओषधियों एवं वनस्पतियों में प्रविष्ट हुआ है, अर्थात् जो सर्वव्यापक है (यः इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे) तथा जो इन समस्त भुवनों को रचकर उन्हें समर्थ बनाता है, (तस्मै रुद्राय नमः अस्तु अग्नये) उस अग्नि के समान तेजस्वी तथा सर्वाग्रणी रुद्र के लिये नमस्कार है।

सत्य

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितंमुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ।ओ३म् खं ब्रह्म ।।

यजु. ४०।१७

(सत्यस्य मुखम् हिरण्मयेन पात्रेण अपिहितम्) सत्य का मुख हिरण्मय पात्र से ढंका हुआ है। (यो असौ आदित्ये पुरुषः) जो वह आदित्य में पुरुष अर्थात् पूर्ण परमात्मा है, (सः असौ अहम्) वही (असौ) प्राणों में रहने वाला मैं (जीवात्मा) हूँ। (ओ३म् खं ब्रह्म) आकाश के समान सर्वव्यापक ब्रह्म ओ३म् है, अर्थात् ओ३म् पद वाच्य है।

'आदित्ये पुरुषः' में आदित्य का उल्लेख प्रतीकात्मक है, शतपथ. ब्रा. १४।५।५।१२-२२ में आदित्य के स्थान पर पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, आदित्य, चन्द्र, समस्त दिशायें, विद्युत, बादलों का गरज़ना, धर्म, सत्य, मनुष्य तथा आत्मा का उल्लेख किया गया है क्योंकि पूर्ण पुरुष परमात्मा तो सर्वव्यापक है।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ।।

यजु. १।५

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (व्रतपते) आप हमारे व्रत की रक्षा करने वाले हैं, (व्रतं चरिष्यामि) मैं व्रत का आचरण करूँगा। (तत् शकेयम्) मुझे उसके लिये शक्ति दीजिये ताकि मैं व्रत पर आचरण कर सकूँ। (तत् मे राध्यताम्) मेरा वह व्रत आप पूर्ण कराइये। (इदं अहम् अनृतात् सत्यं उपैमि) व्रत यह है कि मैं असत्य से सत्य को प्राप्त होता हूँ।

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः ।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।।

चाणक्यनीति ५।१९

सत्य के द्वारा ही पृथ्वी को धारण किया गया है, सत्य से ही सूर्य तपता है, सत्य से ही वायु चलती है, सब कुछ सत्य में ही प्रतिष्ठित है। भगवान् के सत्य एवं अपरिवर्तनीय नियमों से ही प्रकृति की सारी क्रियायें चलती हैं।

सत्यमेव जयते नानृतं,
सत्येन पन्था विततो देवयानम् ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा,
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ॥

मुण्डकोपनिषद्. ३।१।६

सत्य की ही जय होती है, असत्य की नहीं। सत्य से ही वह देवयान मार्ग बना हुआ है जिस पर चलकर आप्तकाम ऋषि वहाँ पहुँचते हैं जहाँ सत्यस्वरूप परमात्मा का परमधाम है।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥

मनु. ४।१३८

सत्य और प्रिय बोलना चाहिये, अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये। प्रिय बोलना चाहिये किन्तु असत्य नहीं बोलना चाहिये, यही सनातन धर्म है।

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ॥

महाभारत, अध्याय १४१

सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ।।

ईशावास्योपनिषद्. १५ यजु.. काण्व संहिता ४०।१५

सोने के पात्र से सत्य का मुख ढंका हुआ रहता है। हे पालन पोषण करने वाले प्रभो! मेरे द्वारा सत्य धर्म का दर्शन किये जाने के लिये आप उस आवरण को हटा दीजिये।

सत्येन वायुरावति, सत्येनाऽऽदित्यो रोचते दिवि, सत्यं वाचः प्रतिष्ठा, सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं, तस्मात् सत्यं परमं वदन्ति।

तैत्तिरीय आरण्यक, प्रपा. १० अनु. ६२

सत्य से अथवा सत्य रूपी ब्रह्म से अथवा ब्रह्म के सत्य नियमों से ही वायु रक्षा करती है, सत्य से आदित्य द्युलोक में प्रकाशित होता है, सत्य ही वाणी की प्रतिष्ठा है, सत्य में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है, अतएव सत्य को परम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।

इस महत्वपूर्ण मन्त्र से यह स्पष्ट है कि जो सत्य है वही धर्म है, असत्य कभी धर्म नहीं हो सकता।

तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यम् प्रतिष्ठितम्।

प्रश्नोपनिषद्. १।१५

उनका ही यह ब्रह्मलोक है जिनमें तप एवं ब्रह्मचर्य है तथा जिनमें सत्य प्रतिष्ठित रहता है अर्थात् जो सत्याचरण पर दृढ़ रहते हैं।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।

तैत्तिरीय उप. २।१

ब्रह्म सत्य, ज्ञानमय तथा अनन्त है।

सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम्।
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः॥

वाल्मीकि रामायण, अयोध्या. १०९।१०

सत्य का पालन करना एवं अत्याचार न करना ही राजाओं का सनातन धर्म है, आचार है। अतः राज्य सत्यात्मक होता है। सत्य में ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है।

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते।।

अथर्व. ८।४।१३

(सोमः वृजनम् न वा उ हिनोति) सोम अर्थात् परमात्मा निश्चय ही पाप और पापी की वृद्धि में सहायता नहीं देता, (मिथुया धारयन्तम् क्षत्रियम्) वह मिथ्या व्यवहार करने वाले, अनुचित आचरण करने वाले, छल कपट करने वाले क्षत्रिय की भी सहायता नहीं करता। (रक्षः हन्ति) वह राक्षसों का हनन करता है (असत् वदन्तम् हन्ति) तथा असत्य बोलने वाले का भी हनन करता है। (उभौ इन्द्रस्य प्रसितौ शयाते) वह दोनों अर्थात् राक्षस स्वभाव वाले तथा असत्य बोलने वाले लोग इन्द्र के बन्धन में रहते हैं।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।।

यजु. १९।३०

(व्रतेन दीक्षाम् आप्नोति) व्रतों अर्थात् यमों एवं नियमों के पालन करने से दीक्षा अर्थात् ज्ञान एवं योग्यता प्राप्त होती है, (दीक्षया दक्षिणाम् आप्नोति) योग्यता होने से पुरुष, दक्षिणा अर्थात् सम्मान एवं धन प्राप्त करता है, (दक्षिणा श्रद्धाम्) दक्षिणा से श्रेष्ठ आचरण एवं सत्य के प्रति श्रद्धा प्राप्त होती है (श्रद्धया सत्यं आप्यते) और श्रद्धापूर्वक प्रयास करने पर सत्य स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति होती है। श्रद्धा के बिना सत्य तथा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

यम तथा नियम व्रत हैं, जिनका पालन करना मनुष्य की उन्नति के

लिये आवश्यक है। अपने कार्य, उद्देश्य, देश तथा धर्म एवं परमात्मा के प्रति श्रद्धा के बिना मनुष्य न उन्नति प्राप्त कर सकता है और न ही जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः।।

अथर्व. १४।१।१, ऋग्.१०।८५।१

(सत्येन भूमिः उत्तभिता) सत्य स्वरूप परब्रह्म ने अथवा भगवान् के सत्य नियमों ने पृथिवी को आकाश में ऊपर धारण किया है, (सूर्येण द्यौः उत्तभिता) सूर्य ने द्युलोक को धारण किया है अर्थात् अपनी आकर्षण शक्ति से गृहों तथा नक्षत्रों आदि की क्रियाओं को नियन्त्रित करता है। (ऋतेन आदित्याः तिष्ठन्ति) भगवान् के सत्य नियमों से आदित्य आदि सभी देवता अपना अपना निर्धारित कार्य करते हुये स्थित रहते हैं। (दिवि सोमः अधि श्रितः) द्युलोक में सोम अर्थात् परमात्मा ऊपर परम व्योम में स्थित है।

तात्पर्य यह है कि सारा ब्रह्माण्ड सत्य तथा ऋत अर्थात् भगवान् के सत्य नियमों पर आधारित है।

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः। अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाꣳ सत्ये प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥

यजु. १९।७७

(प्रजापतिः ऋतेन सत्यानृते दृष्ट्वा वि आ अकरोत्) प्रजापति ने अपने सत्य ज्ञान से सत्य और असत्य के वास्तविक स्वरूप को देखकर उनको अलग अलग किया और (अनृते अश्रद्धां अदधात्) असत्य में अश्रद्धा तथा (सत्ये श्रद्धाम्) सत्य में श्रद्धा को स्थापित किया। (ऋतेन सत्यम्) भगवान् के सत्य नियमों का आचरण करने से, यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करने से (विपानं इन्द्रियं अन्धसः शुक्रं इन्द्रस्य इन्द्रियं इदं पयः अमृतं मधु)

पान करने योग्य विविध प्रकार के रस, श्रेष्ठ मार्ग में चलने वाली इन्द्रियाँ, पवित्र अन्न, इन्द्र के समान ऐश्वर्य, दुग्ध तथा यह अमृत के समान मधु अथवा जीवन का माधुर्य एवं सुख प्राप्त होता है।

भगवान् का निर्देश है कि हमें केवल सत्य में श्रद्धा करना चाहिये, असत्य में नहीं, चाहे वह कितना ही आकर्षक क्यों न हो, कितने ही स्वर्णिम सजावट तथा वैभव से युक्त दिखायी देता हो।

'सत्यस्य नावः सुक्रतमपीपरन्'। -ऋग्. ९।७३।१

सत्य की नाव पर बैठ कर श्रेष्ठ कर्म करने वाले पुरुष ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं, सफलता प्राप्त करते हैं।

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

गीता,१७।३

(भारत! सर्वस्य श्रद्धा सत्वानुरूपा भवति) हे भारत! सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है। (अयं पुरुषः श्रद्धामयः) यह पुरुष श्रद्धामय है। (यः यत् श्रद्धः सः एव सः) जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही होता है।

सत्यं वै चक्षुः सत्यछं हि वै चक्षुः। शतपथ. १।३।१।२७

सत्य चक्षु है। सत्य चक्षु ही है क्योंकि किसी विषय में विवाद उत्पन्न हो जाय और एक कहे कि मैने देखा है और दूसरा कहे मैने सुना है तो देखे हुये की बात पर श्रद्धा की जाती है।

ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे।
सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन् परं गच्छति चाक्षयम्।।

वाल्मीकि रामायण, अयोध्या. १०९।११

ऋषियों तथा देवताओं ने सदा सत्य का ही आदर किया है। इस लोक में सत्यवादी मनुष्य मृत्यु के उपरान्त अक्षय परम धाम को जाता है।

उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः।
धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते।।

वाल्मीकि रामायण, अयोध्या. १०९।१२

झूठ बोलने वाले मनुष्य से सब लोक उसी प्रकार डरते हैं जैसे साँप से। संसार में सत्य ही धर्म की पराकाष्ठा है और वही सब का मूल कहा जाता है।

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्।।

वाल्मीकि रामायण, अयोध्या. १०९।१३४

जगत् में सत्य ही ईश्वर है। सत्य के ही आधार पर धर्म की स्थिति रहती है। सत्य ही सब का मूल अथवा आधार है। सत्य से श्रेष्ठ अन्य कोई परम पद नहीं है।

दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत्।।

वाल्मीकि रामायण, अयोध्या. १०९।१४

दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद, इन सब का आधार सत्य ही है, इसलिये सब को सत्य परायण होना चाहिये।

भूमिः कीर्तियशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थयन्ति हि।
सत्यं समनुवर्तन्ते सत्यमेव भजेत् ततः।।

वा। रा। 109। 22

भूमि कीर्ति यश और लक्ष्मी सब सत्यवादी पुरुष की इच्छा करती हैं अतः मनुष्य को सदा सत्य का अनुसरण करना चाहिये।

ऋत

ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः।।

ऋग्. ७।६६।१३

(ऋतावानः ऋतजाताः) सत्य परायण, सत्य निष्ठा के लिये प्रसिद्ध, (ऋतावृधः घोरासः अनृतद्विषः) सत्य को बढ़ाने वाले और असत्य से घोर द्वेष करने वाले (ये च) जो लोग हैं, (तेषां सुच्छर्दिः तमे सुम्ने वः) उनके सुख देने वाले उत्तम मार्ग में तुम लोग चलो और प्रयास करो कि (सूरयः नरः स्याम) हम उनके समान तेजस्वी हो जायँ।

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः।।

ऋग्. ४।२३।८

(ऋतस्य हि शुरुधः पूर्वीः सन्ति) निःसन्देह ऋत अर्थात् भगवान् के सत्य नियमों की शक्तियाँ पूर्ण तथा सनातन हैं, (ऋतस्य धीतिः वृजिनानि हन्ति) ऋत से पूर्ण बुद्धि, ऋत का चिन्तन अथवा विचार वर्जन करने योग्य पापों का नाश करता है। (ऋतस्य बुधानः शुचमानः श्लोकः) ऋत की महिमा, ऋत के पवित्र ज्ञान मय स्तोत्र (आयोः कर्णा बधिरा ततर्द) बहरे मनुष्य के कानों को भी खोल देते हैं।

अगले मन्त्र में कहा गया है-

'ऋतस्य दृढ़ा धरुणानि सन्ति'। ऋत की धारक शक्तियाँ दृढ हैं।

'ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः'। -ऋग्. ९।७३।६

बुरे कर्म करने वाले लोग सत्य के मार्ग को पार नहीं कर सकते अर्थात् सत्य पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते।

श्रद्धा

श्रद्धयाग्निः समिंध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगंस्य मूर्धनि वचसा वेंदयामसि।।

ऋग्वेद. १०।१५१।१

(श्रद्धया अग्निः समिध्यते) श्रद्धापूर्वक यज्ञ की अग्नि प्रदीप्त की जाती है, (श्रद्धया हविः हूयते) श्रद्धापूर्वक ही उसमें हवि की आहुति दी जाती है। (श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा आ वेदयामसि) श्रद्धा को भग अर्थात् ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य में वाणी के द्वारा सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है।

श्रद्धा सत्यनाम। निघण्टु. ३।७

भग ऐश्वर्यादिषट्कम् 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।' समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य, ये छः भग के अङ्ग हैं।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः।।

ऋग्. १०।१५१।५

(श्रद्धां प्रातः हवामहे) हम प्रातःकाल श्रद्धा का आवाहन करते हैं, श्रद्धा पूर्वक कार्य करते हैं,(मध्यन्दिनं परि श्रद्धाम्) मध्याह्न में श्रद्धा का आवाहन करते हैं, (सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धाम्) सूर्यास्त के समय श्रद्धा का आवाहन करते हैं। (श्रद्धे) हे श्रद्धे! (नः इह श्रद्धापय) इस संसार में हमें श्रद्धावान् बनाओ।

अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः

यजुर्वेद, १९।७७

प्रजापति ने असत्य में अश्रद्धा एवं सत्य में श्रद्धा को स्थापित किया है।

अतएव हमें केवल सत्य में ही श्रद्धा रखना चाहिये, असत्य में नहीं, चाहे वह कितना ही आकर्षक क्यों न प्रतीत हो रहा हो।

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

गीता, १७।३

(भारत! सर्वस्य श्रद्धा सत्वानुरूपा भवति) हे भारत! सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है। (अयं पुरुषः श्रद्धामयः) यह पुरुष श्रद्धामय है। (यः यत् श्रद्धः सः एव सः) जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही होता है।

स्वस्तिवाचन

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ।।

ऋग्. १।१।९, यजुर्वेद. ३।२४

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ! (पितेव सूनवे) जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के लिये सुगमता से प्राप्त होने योग्य होता है, उसी प्रकार (स नः वह आप हमें (सूपायनो) (सु+उपायनः सुखेन उपैतुं शक्यः) सुख से प्राप्त होने योग्य तथा सुख पहुँचाने वाले (भव) होइये और (सचस्वा नः स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये हमें श्रेष्ठ कर्मों से सम्बद्ध कीजिये, हमारे ऊपर कृपा दृष्टि रखिये।

सचत इति सेवमानस्य। निरुक्त. ३।४।२१

सेवन करने वाले कृपालु।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽ–
दब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्न-
प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे।।

यजु. २५।१४, ऋग्. १।८९।१

(अदब्धासः) किसी के द्वारा नष्ट न किये जा सकने वाले, विघ्नरहित, (अपरीतासः) अन्य लोगों के द्वारा प्राप्त न किये जा सकने वाले अर्थात् सर्वश्रेष्ठ अथवा शत्रुओं द्वारा अवरुद्ध न किये जा सकने वाले, (उद्भिदः) शत्रुओं का तथा दुष्टों का नाश करने वाले (भद्राः क्रतवः) कल्याणकारी यज्ञ, संकल्प, विचार तथा बल (नः विश्वतः आयन्तु) हमारे पास सब ओर से आयें (यथा अप्रायुवः) जिससे आलस्य रहित होकर (दिवे दिवे रक्षितारः देवाः) दिन प्रतिदिन रक्षा करने वाले देवगण (सद इत् नः वृधे असन्) सदैव हमारी अभिवृद्धि करने के लिये तत्पर रहें।

अथवा, जिस प्रकार देवगण आलस्य रहित होकर दिन प्रतिदिन हमारी रक्षा करने के लिये तत्पर रहते हैं, उसी प्रकार हम श्रेष्ठ, कल्याणकारी तथा शक्तिशाली विचार, संकल्प, बुद्धि, बल तथा यज्ञ अर्थात् श्रेष्ठतम कर्म अपने पास सब ओर से लाते रहें।

हमें श्रेष्ठ विचार संकल्प एवं कर्म सब ओर से प्राप्त करना चाहिये तथा यह ध्यान रखना चाहिये कि देवगण हमारी रक्षा तभी करेंगे जब हम सद्विचारों को सब ओर से प्राप्त करके उनके अनुसार श्रेष्ठ कर्म करेंगे।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां-
देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्तताम्।
देवानाꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं-
देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे।।

यजु. २५।१५, ऋग्. १।८९।२

(ऋजूयतां देवानाम्) सरलता एवं सत्यता से युक्त देवों की (भद्रा सुमतिः) कल्याणकारी सुमति तथा (देवानां रातिः) देवों के विभिन्न दान (नः अभि निवर्तताम्) हमारे सामने निरन्तर रहें, हमें सब ओर से निरन्तर प्राप्त हों। (वयं देवानां सख्यम् उप सेदिम) हम देवों की मित्रता प्राप्त करें, (देवाः नः आयुः जीवसे आ प्रतिरन्तु) देवगण हमें जीवित रहने के लिये दीर्घ आयु प्रदान करें।

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं
धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे
रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥

ऋग्.१।८९।५, यजुर्वेद. २५।१८

(वयम्) हम (जगतः तस्थुषः पतिम्) चराचर जगत् का पालन पोषण तथा रक्षा करने वाले, (धियं जिन्वम्) बुद्धि को पवित्र करने वाले, उसे प्रसन्न एवं तृप्त करने वाले (तम् ईशानम्) सब पर शासन करने वाले उस ईश्वर का (अवसे हूमहे) अपनी रक्षा के लिये आह्वान करते हैं, (यथा पूषा) जिससे कि सब का पोषण करने वाला परमात्मा (नः वेदसाम् वृधे) हमारे ज्ञान, धन एवं ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाला तथा (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये (अदब्धः रक्षिता पायुः असत्) हनन न करने वाला एवं अपराजित होकर हमारी रक्षा करने वाला तथा हमारा पालन करने वाला हो।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ऋग्. १।८९।६, साम. उत्त. २१।९।३ क्र. सं. १८७५, यजु. २५।१९

(वृद्धश्रवाः) महान यश तथा प्रचुर अन्न एवं धन वाले (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (नः स्वस्ति) हमारे लिये कल्याणकारी हों, (स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः) सर्वज्ञ तथा सबका पालन पोषण करने वाले परमात्मा हमारा कल्याण करें, (अरिष्टनेमिः) कभी नष्ट न होने वाले दृढ़ वज्र को धारण करने वाले तथा (तार्क्ष्यः) भक्तों के प्रयोजनों को शीघ्र पूर्ण करने वाले प्रभु (नः स्वस्ति) हमारा कल्याण करें, (स्वस्ति नः बृहस्पतिः दधातु) सूर्य चन्द्र आदि महान देवों एवं महान शक्तियों के स्वामी परब्रह्म हमारे लिये सुख एवं कल्याण को धारण करें।

श्रवः श्रवणीयं यशः अर्थात् श्रवण करने योग्य यश। **वृद्धश्रवाः वृद्धं प्रभूतं श्रवः श्रवणीयं यशः अन्नं धनं कीर्तिं वा यस्य सः।** महान अन्न धन तथा यश है जिनका, वह परमात्मा वृद्धश्रवाः हैं। (तार्क्ष्यः—**तूर्णं अर्थं रक्षति इति तार्क्ष्यः**, निरुक्त १०। ३। १७ हमारी प्रार्थना एवं प्रयोजन को शीघ्र पूरा करने वाले परमात्मा तार्क्ष्य हैं।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभि-
र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

ऋग्.१।८९।८, (पाठभेद), साम. उत्त. २१।९।२ क्र. सं. १८७४, यजु.२५।२१

(यजत्राः देवाः) हे यजनीय देवो! (भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम) हम अपने कानों से कल्याणकारी तथा प्रिय वचनों को सुनें, (भद्रं पश्येम अक्षभिः) हम अपनी आँखों से कल्याणकारी तथा मनोहारी दृश्यों को देखें तथा (स्थिरैः अङ्गैः) हृष्ट पुष्ट अङ्गों से युक्त (तनूभिः) शरीरों से हम (तुष्टुवांसः) परमात्मा की स्तुति करते हुये (देवहितं) देवों एवं विद्वानों के लिये हितकारी (यदायुः) जो हमारी आयु है, (वि अशेमहि) उसे भली प्रकार प्राप्त करें अर्थात् हम अपने जीवन पर्यन्त देवों एवं विद्वानों का हित रक्षण करते रहें।

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना
भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः
स्वस्ति द्यावा पृथिवी सुचेतुना।।

ऋग्. ५।५१।११

(अश्विना) सूर्य एवं चन्द्रमा (नः स्वस्ति मिमीताम्) हमारा कल्याण करें, (भगः स्वस्ति) स्वयं ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य प्रदान करने वाले भगवान् हमारा कल्याण करें, (देवी अदितिः) हमें समस्त साधन उपलब्ध कराने वाली तथा सुख देने वाली और स्तुति एवं प्रशंसा के योग्य पृथिवी हमारा कल्याण करे, (अनर्वणः असुरः पूषाः नः स्वस्ति दधातु) हमें प्राण एवं बल देने वाला अप्रतिम एवं अपराजित पूषा अर्थात् पोलन पोषण करने वाले भगवान् हमारा कल्याण करें, (द्यावा पृथिवी सुचेतुना) द्युलोक एवं पृथिवी ज्ञान से अर्थात् ज्ञान देकर हमारा कल्याण करें।

स्वस्तयें वायुमुपं ब्रवामहै
सोमं स्वस्ति भुवंनस्य यस्पतिंः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तयें
स्वस्तयं आदित्यासो भवन्तु नः॥

ऋग्. ५।५१।१२

(स्वस्तये वायुम् उप ब्रवामहै) हम अपने कल्याण के लिये वायु की स्तुति एवं प्रार्थना करें। (यः भुवनस्य पतिः) जो समस्त भुवन का स्वामी है, उस (सोमं स्वस्ति) परमात्मा की कल्याण के लिये स्तुति करें। (स्वस्तये) हम कल्याण के लिये (सर्वगणं बृहस्पतिं) समस्त प्राणि समूह के सबसे महान् स्वामी एवं रक्षक अर्थात् परमात्मा की स्तुति करें, (आदित्यासः नः स्वस्तय भवन्तु) आदित्य हमारे लिये कल्याणकारी हों।

विश्वें देवा नो अद्या स्वस्तयें वैश्वानरो वसुंरग्निः स्वस्तयें।
देवा अवन्त्वृभवंः स्वस्तयें स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहंसः॥

ऋग्. ५।५१।१३

(विश्वे देवाः नः अद्या स्वस्तये) समस्त देव आज हमारे कल्याण के लिये हों, (वैश्वानरः वसुः अग्निः स्वस्तये) समस्त विश्व को गति देने वाला तथा समस्त प्राणियों को वसाने वाला अर्थात् उनके जीवन का आधार अग्नि हमारे कल्याण के लिये हो। (देवाः ऋभवः स्वस्तये अवन्तु) दिव्य गुणों से युक्त ऋभुगण कल्याण के लिये हमारी रक्षा करें। (रुद्रः नः स्वस्ति) दुष्टों को रुलाने वाले रुद्र हमारे लिये कल्याणकारी हों तथा (अंहसः पातु) पापों से हमारी रक्षा करें।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि।।

ऋग्. ५।५१।१४

(मित्रावरुणा) हे मित्र एवं वरुण! (स्वस्ति) हमारा कल्याण कीजिये। (रेवति) धन एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न हे देवि! (पथ्ये स्वस्ति) जीवन मार्ग में हमारा कल्याण कीजिये, (इन्द्रः च अग्निः च स्वस्ति) इन्द्र और अग्नि हमारा कल्याण करें। (अदिते) हे अदिति! (नः स्वस्ति कृधि) हमारा कल्याण कीजिये।

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि।।

ऋग्. ५।५१।१५

हम सूर्य एवं चन्द्रमा के समान जगत् का कल्याण करने वाले मार्ग पर चलें, बार बार दान देने वालों, हिंसा न करने वालों तथा विद्वानों के साथ चलें अर्थात् उनके सम्पर्क में आयें और उनके अनुरूप आचरण करें।

ये देवानां यज्ञियां यज्ञियानां

मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः।

ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं

पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

अथर्व. १९।११।५ (पाठभेद), ऋग्. ७।३५।१५

(ये देवानां यज्ञियानां) जो देवों, श्रेष्ठ विद्वानों तथा यज्ञ करने वालों में (यज्ञिया) पूजनीय हैं, (मनोः यजत्राः) जो मनस्वी तथा आदरणीय एवं यजनीय हैं, जो निकट समागम एवं सम्पर्क किये जाने के योग्य हैं, (अमृता) जो अमृतत्व को प्राप्त करने के योग्य हैं, जीवन मुक्त हैं, (ऋतज्ञाः) जो ऋत एवं सत्य के ज्ञाता हैं, (ते अद्य नः) वे आज (उरुगायम् रासन्ताम्) बहुतों द्वारा गाया हुआ, बहुत से विद्वानों द्वारा उपदिष्ट किया गया प्रशंसनीय ज्ञान हमें दें। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप सब देव एवं श्रेष्ठ विद्वान् कल्याणकारी उपायों से सदैव हमारी रक्षा करें।

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते
पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्स्वप्नसस्ताँ
आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये॥

ऋग्. १०।६३।३

(येभ्यः) जिनके लिये (माता अदितिः) माता अदिति तथा (अद्रिबर्हाः द्यौः) मेघों से आच्छादित अन्तरिक्ष (मधुमत्) माधुर्य युक्त (पीयूषं पयः) अमृत तुल्य दुग्ध, जल तथा अन्य भोज्य पदार्थ (पिन्वते) प्रदान करता है, (तान्) ऐसे उन (उक्थ शुष्मान्) प्रशंसनीय बल वाले (वृषभरान्) सुखों की वर्षा करने वाले (सु अप्नसः) तथा उत्तम कर्म करने वाले आदित्यों की (स्वस्तये) अपने कल्याण के लिये (अनुमदा) स्तुति करते हैं, प्रार्थना करते हैं।

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा
बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो
दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये।।

ऋग्. १०।६३।४

(अनिमिषन्तः) बिना पलक झपकाये हुये अर्थात् सदैव जागरुक रहकर (नृचक्षसः) मनुष्यों के कर्मों पर दृष्टि रखने वाले तथा उन्हें सही मार्ग दिखाने वाले, (देवासः अर्हणा) पूजनीय देवों ने, विद्वानों ने भक्ति एवं उपासना द्वारा (बृहत् अमृतत्वं आनशुः) महान् अमृतत्व को, मोक्ष को प्राप्त किया है। (ज्योतिः रथाः) ज्ञान रूपी ज्योतिर्मय रथ वाले, (अहिमायाः) प्रज्ञावान्, अप्रतिहत बुद्धि वाले (अनागसः) पाप रहित (दिवः वर्ष्माणं) द्युलोक में उच्च स्थान पर अथवा भगवान् के आनन्दमय परम धाम में (वसते) स्थित देव (स्वस्तये) हमारा कल्याण करें।

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये।।

ऋग्. १०।६३।९

(भरेषु) हम जीवन के संग्रामों में (सुहवं शोभनाह्वानम्) सुगमता से बुलाये जा सकने वाले अथवा सुन्दर नाम वाले तथा सुख एवं उत्तम पदार्थों को देने वाले (अंहः मुचम्) पापों से छुड़ाने वाले (इन्द्रं हवामहे) इन्द्र का आह्वान करते हैं तथा (सुकृतं दैव्यं जनम्) श्रेष्ठ कर्म करने वाले, दिव्य शक्तियों से सम्पन्न (अग्निं मित्रं वरुणं भगं द्यावा पृथिवी मरुतः) अग्नि, मित्र, वरुण, ऐश्वर्य प्रदान करने वाले भग, द्युलोक, पृथिवी तथा मरुतों को (सातये स्वस्तये) अन्न आदि प्राप्त करने के लिये एवं अपने कल्याण के लिये (हवामहे) आदर पूर्वक बुलाते हैं।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये।।

ऋग्. १०।६३।१०

(सुत्रामाणं पृथिवीं) उत्तम प्रकार से रक्षा करने वाली, विस्तृत (अनेहसं) पाप रहित, (द्याम्) प्रकाशयुक्त (सुशर्माणं) उत्तम सुख देने वाली (अदिति) नष्ट न होने वाली (सुप्रणीतिम्) उत्तम रूप से निर्मित, (स्वरित्राम्) उत्तम चप्पुओं से युक्त (अनागसं) पाप रहित (अस्रवन्ती) न रिसने वाली, छिद्र रहित, (दैवीं नावम्) दैवी नाव पर हम अपने कल्याण के लिये (आरुहेम) आरोहण करें।

शान्तिपाठ

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं
बृहस्पतिर्मे तद्दधातु । शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥

यजुर्वेद. ३६।२

(मे) मेरे (चक्षुषः) नेत्र की तथा (हृदयस्य) हृदय एवं अन्तःकरण तथा बुद्धि की (यत्) जो (छिद्रम्) न्यूनता अथवा दोष है (वा) तथा मेरे (मनसः) मन की (अतितृण्णम्) जो व्याकुलता एवं दोष है, (मे तत्) मेरे उस दोष को, न्यूनता को (बृहस्पतिः) सूर्य आदि महान देवों के स्वामी परमात्मा (दधातु) पूर्ण करें, ठीक करें। (भुवनस्य यः पतिः) समस्त संसार का जो स्वामी एवं रक्षक है (शं नः भवतु) वह परमेश्वर हमारे लिये कल्याणकारी हो।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥

अथर्व.१९।९।६, (पाठभेद) ऋग्.१।९०।९,
यजु. ३६।९

(मित्रः नः शं) सब का प्रिय मित्र, जगदीश्वर हमारे लिये कल्याणकारी हो, (शं वरुणः) सर्व साक्षी तथा सर्वश्रेष्ठ परमात्मा हमारे

लिये कल्याणकारी हो। (शं नः भवतु अर्यमा) न्यायकारी ईश्वर हमारे लिये कल्याणकारी हो। (बृहस्पतिः) वेदवाणी एवं महान ब्रह्माण्ड का रक्षक (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नः शम्) हमारे लिये कल्याणकारी हो (उरुक्रमः विष्णुः नः शम्) महान पराक्रम अथवा विस्तृत पद वाला सर्वव्यापक परमात्मा हमारे लिये कल्याणकारी हो।

व्याप्नोतीति विष्णुः। सर्वव्यापक होने से भगवान् का नाम विष्णु है।

शं नो वातः पवताꣳ शं नस्तपतु सूर्यः।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु॥

यजुर्वेद. ३६।१०

(शं नः वातः पवताम्) वायु हमारे लिये सुखकारी होकर बहे, (शं नः तपतु सूर्यः) सूर्य हमारे लिये सुखकारी होकर तपे (शं नः कनिक्रदत् देवः) कड़कड़ाने वाला विद्युत् देव हमारे लिये सुखकारी हो (पर्जन्यः अभि वर्षतु) तथा मेघ हमारे ऊपर चारों ओर से सुखकारी वर्षा करें।

अहा॑नि॒ शं भव॑न्तु नः॒ शꣳ रात्री॒: प्रति॑ धीयताम्।
शं न॑ इन्द्रा॒ग्नी भव॑ता॒मवो॑भि॒: शं न॒ इन्द्रा॒ वरु॑णा
रा॒तह॑व्या। शं न॑ इन्द्रापू॒षणा॒ वाज॑सातौ॒ शमिन्द्रा॒सोमा॑
सु॒वि॒ता॒य॒ शं योः॥

ऋग्. ७।३५।१ (पाठभेद), अथर्व. १९।१०।१ (पाठभेद), यजु. ३६।११

(अहानि शं भवन्तु नः) दिन हमारे लिये कल्याणकारी हों, (शं रात्रीः प्रतिधीयताम्) रात्रि हमारे लिये कल्याण को धारण करें, (इन्द्राग्नी नः शं भवतां अवोभिः) समस्त रक्षाओं के साथ इन्द्र एवं अग्नि हमारे लिये कल्याणकारी हों, (शं नः इन्द्रा वरुणा रातहव्या) जिन्हें हवि अर्पित की गयी है, ऐसे इन्द्र एवं वरुण हमारे लिये सुखकारी हों, (शं न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ) इन्द्र एवं पूषा युद्ध में हमारा कल्याण करने वाले हों। (शं इन्द्रा सोमा सुविताय) इन्द्र एवं सोम हमारे कल्याण के लिये शान्ति दायक हों (शं योः) तथा रोगों का शमन करके एवं भय को दूर करके हमारे लिये

सुखकारी हों।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु
शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु
शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥

अथर्व. १९।१०।८, (पाठभेद) ऋग्.७।३५।८

(शं नः सूर्यः उरुचक्षा उदेतु) विस्तृत तेज एवं प्रकाश वाला सूर्य हमारे लिये सुखकारी होकर उदित हो, (शं नः चतस्रः प्रदिशो भवन्तु) चारों दिशायें एवं प्रदिशायें हमारे लिये सुखकारी हों। (शं नः पर्वताः ध्रुवयः भवन्तु) अचल पर्वत हमारे लिये शान्ति एवं सुख देने वाले हों, (शं नः सिन्धवः) नदियाँ एवं समुद्र हमारे लिये सुखकारी हों, (शं उ नः सन्तु आपः) तथा जल हमारे लिये शान्ति एवं सुख देने वाले हों।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः।।

अथर्व. १९।१०।९, ऋग्.७।३५।९

(अदितिः व्रतेभिः नः शम् भवतु) देव माता अदिति अथवा प्रकृति अपने श्रेष्ठ नियमों के साथ हमें सुख दें, (सु अर्काः मरुतः नः शं भवन्तु) उत्तम स्तुति योग्य तेजस्वी बलवान् मरुत हमारे लिये सुखकारी हों, (शं नः विष्णुः) विष्णु हमारे लिये कल्याणकारी हों (शं उ पूषा नः अस्तु) तथा पालन पोषण करने वाले पूषा देव हमें शान्ति देने वाले हों, (शं नः भवित्रं शं उ अस्तु वायुः) जल हमारे लिये शान्ति दायक हों तथा वायु हमारे लिये सुखकारी हो।

भवित्रम् उदकम् अन्तरिक्षं वा। सायण भाष्य

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शं योरभि स्रवन्तु नः ।।

ऋग्. १०।९।४, यजु. ३६।१२

अथर्व. १।६।१, साम. पूर्वा. १।३।१३, क्र.सं. ३३

(देवी आपः) दिव्य गुणों से युक्त जल (पीतये नः अभिष्टये) पीने के लिये तथा हमारे अभीष्ट कार्यों की सिद्धि के लिये (शं भवन्तु) सुखकारी हों, शान्तिदायक हों (शं योः अभिस्रवन्तु नः) तथा रोग एवं भय आदि का शमन करके हमारे ऊपर चारों ओर से सुख की वर्षा करें।

शंयोः शमनं च रोगाणाम् यावनं च भयानाम्।

निरुक्त. ४।३।२१।४८

शंयोस्। इसमें शं और योस् दो पद हैं। शम् का अर्थ है रोगों का शमन तथा योस् का अर्थ है भयों का दूरीकरण। इसलिये शंयोः का अर्थ हुआ रोग तथा भय आदि को दूर करना।

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ।।

अथर्व. १९।९।१०

(शं नः ग्रहाः चान्द्रमसाः) चन्द्रमा तथा उससे संबन्धित ग्रह हमारे लिये शान्ति दायक हों (च आदित्यः राहुणा च) तथा राहु के साथ आदित्य हमारे लिये शान्ति दायक हो। (शं नः मृत्युः धूमकेतुः) मृत्यु के समान दुःखदायी धूमकेतु अथवा केतु हमारे लिये शान्ति दायक अथवा हानि रहित हो, (शं रुद्राः तिग्मतेजसः) तीक्ष्ण तेज अथवा उग्र स्वभाव वाले रुद्रगण अथवा एकादश रुद्र हमारे लिये शान्ति दायक हों।

(शं नः मृत्युः) कभी कभी ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं कि मृत्यु भी मनुष्य के लिये सुखदायी हो जाती है। ऐसी बीमारी की स्थिति में, जो अत्यन्त कष्ट एवं दुःखदायी हो और जिसके ठीक होने की कोई आशा न हो, मृत्यु ही सुखदायी होती है, वही असहनीय कष्ट, आपत्ति अथवा

अपमान से मुक्ति दिला सकती है।

फलित ज्योतिष के अनुसार निम्नाङ्कित ग्रह मनुष्य जीवन पर विशेष प्रभाव डालते हैं, (रवि) सूर्य (सोम) चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु। दश प्राण तथा जीवात्मा, ये एकादश रुद्र मनुष्य शरीर में निवास करते हैं।

शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः।।

अथर्व. १९।९।११

(शं रुद्राः शं वसवः) एकादश रुद्र हमारे लिये शान्दि दायक हों, अष्ट वसु हमारे लिये शान्ति दायक हों, (शम् आदित्याः शम् अग्नयः) द्वादश आदित्य हमारे लिये शान्ति दायक हों, अग्नियाँ हमारे लिये शान्ति दायक हों, (शं नः महर्षयः देवाः) मन्त्रदृष्टा महर्षि हमारे लिये शान्ति दायक हों, (शम् देवाः शं बृहस्पतिः) समस्त देव हमारे लिये शान्ति दायक हों, महती वेद वाणी के प्रणेता एवं रक्षक तथा महान् ब्रह्माण्ड के स्वामी परमपिता परमेश्वर हमें शान्ति प्रदान करें।

'ब्रह्म वै बृहस्पतिः।' (ब्रह्म ही बृहस्पति है।) ऐतरेय. ब्रा.१।४।२१

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः।।

ऋग्. १।२२।१५ (पाठभेद), यजु. ३५।२१,३६।१३

(पृथिवी) हे पृथिवी, (नः स्योना अनृक्षरा) हमारे लिये सुख देने वाली तथा निष्कंटक एवं (निवेशनी भव) निवास के लिये उत्तम स्थान देने वाली होइये (नः सप्रथाः शर्म यच्छ) तथा हमें विस्तृत सुख एवं सुखदायी निवास स्थान प्रदान कीजिये।

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु।।

अथर्व. १९।१०।२, ऋग्.७।३५।२

(शं नः भगः) ऐश्वर्य प्रदान करने वाले भगवान् हमारे लिये सुखकारी हों (उ) तथा (शं नः शंसः अस्तु) प्रशंसित देव हमें सुख एवं शान्ति प्रदान करने वाले हों, (पुरंधिः नः शं) विशाल बुद्धि हमें सुख देने वाली हो (उ) तथा (शं रायः सन्तु) विभिन्न प्रकार के धन हमें शान्ति एवं सुख देने वाले हों, (शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः) उत्तम नियम पूर्वक बोला जाने वाला प्रशंसनीय सत्य हमें सुख देने वाला हो (पुरुजातः अर्यमा नः अस्तु) तथा अत्यधिक प्रशंसित न्यायकारी भगवान् हमारे लिये कल्याणकारी हों।

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
शं राजन्नोषधीभ्यः।।

साम. उत्त. १।३, क्र.सं.६५३, ऋग्.९।११।३

(राजन्) हे प्रभो! (स नः पवस्व) वह आप हमें पवित्र कीजिये, (शं गवे शं जनाय शम् अर्वते) हमारी गौवों के लिये, हमारे पुत्र, मित्र आदि जनों के लिये तथा हमारे अश्वों के लिये शान्ति एवं सुख हो। (शं ओषधीभ्यः) हमारी ओषधियों के लिये, हमारे अन्न के लिये कल्याणकारी होइये अर्थात् अन्न की हमारी फसलें उत्तम हों तथा उनसे हमें पौष्टिक अन्न प्राप्त हो।

गेहूँ, जौ, चना, चावल आदि सभी ओषधियाँ हैं। यहाँ 'गो' का अर्थ ज्ञानेन्द्रियाँ तथा 'अर्व' का अर्थ कर्मेन्द्रियाँ भी हो सकता है।

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ।।

अथर्व. १९।९।२

(शान्तानि पूर्वरूपाणि) कार्यों तथा घटनाओं के पूर्वरूप हमारे लिये शान्तिदायक हों, (शान्तं नः अस्तु कृताकृतम्) हमारे कृत एवं अकृत अर्थात् किये हुये कर्म तथा जो कर्तव्य करने से रह गये हैं, वे सब हमारे लिये शान्ति दायक हों, (शान्तं भूतं च भव्यं च) भूत, भविष्य तथा वर्तमान हमारे लिये शान्ति दायक हों, (सर्वम् एव शम् अस्तु नः) सभी कुछ हमारे

लिये शान्ति दायक हो।

पूर्व रूपाणि का अर्थ है- (१) कार्य करने से पूर्व के विचार तथा संकल्प (२) उनकी तैयारी का प्रारम्भ अथवा स्वरूप (३) संभावित घटनाओं का पूर्वरूप अर्थात् उनके पहले का घटना क्रम (४) किसी कार्य के होने से पहले की परिस्थितियाँ। उदाहरणार्थ, न केवल पुत्र जन्म हमारे लिये शान्तिदायक हो बल्कि उसके होने से पहले की परिस्थितियाँ तथा घटनायें भी हमारे लिये शान्तिदायक हों। सायणाचार्य ने इसका अर्थ पूर्व जन्म के पाप कर्म किया है, जो उचित प्रतीत नहीं होता।

इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता।
ययैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ।।

अथर्व. १९।९।३

(परमेष्ठिनी) परम अर्थात् सर्वोत्कृष्ट स्थान में अथवा जीवात्मा के आश्रय में स्थित रहने वाली, (ब्रह्म संशिता) वेद द्वारा प्रशंसित तथा वेद मन्त्रों एवं ज्ञान से सशक्त एवं ओजस्वी बनने वाली (इयं या वाक् देवी) दिव्य गुणों से युक्त यह जो वाणी है, (यया एव ससृजे घोरं) जिसके अमर्यादित एवं असंयमित हो जाने से घोर अर्थात् भयंकर एवं निकृष्ट कार्यों का जन्म होता है, (तया एव नः शान्तिः अस्तु) उससे ही हमें शान्ति प्राप्त हो।

हम ऐसी संयमित एवं मर्यादित वाणी बोलें जिससे हम सभी को शान्ति एवं सुख प्राप्त हो तथा किसी को कोई दुःख न हो और किसी घोर कार्य करने के लिये न तो प्रोत्साहन प्राप्त हो और न बाध्य होना पड़े। जिस वाणी से दुःखदायक शाप दिया जा सकता है, उसी से मङ्गलकारी आशीर्वाद दिया जाय, मधुर वचन बोला जाय।

इदं यत्परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥

अथर्व. १९।९।४

(परमेष्ठिनं) उत्कृष्ट स्थान में स्थित अथवा आत्मा के श्रेष्ठ आश्रय में स्थित रहने वाला तथा (ब्रह्म संशितम्) वेद द्वारा प्रशंसित अथवा ज्ञान एवं वेद मन्त्रों द्वारा सशक्त, ओजस्वी एवं तीक्ष्ण किया जाने वाला (वाम् इदं यत् मनः) आप दोनों (स्त्री तथा पुरुष) का यह जो मन है, (येन एव) जिसके विकृत हो जाने पर (ससृजे घोरं) घोर अर्थात् भयंकर एवं निन्दनीय कर्मों का जन्म होता है (तेन एव) उस मन से ही (नः शान्तिः अस्तु) हम सबको शान्ति एवं सुख प्राप्त हो।

जब हमारा मन शिव संकल्प वाला होगा, तब हमसे कोई निकृष्ट कार्य नहीं होगा क्योंकि मन से ही समस्त कार्य किये जाते हैं और इसी से मनुष्य को सुख दुःख तथा मोक्ष अथवा बन्धन प्राप्त होता है।

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि। यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः।।

अथर्व. १९।९।५

(मे हृदि) मेरे हृदय में स्थित तथा (ब्रह्मणा संशितानि) ज्ञान द्वारा सशक्त एवं तीक्ष्ण बनायी जाने वाली अथवा आत्मा द्वारा अपने अपने कार्यों में प्रवृत्त की जाने वाली (इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि) चक्षु, श्रोत्र, नासिका, जिह्वा तथा त्वचा, ये जो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा छठा मन है, (यैः एव) असंयमित तथा विकृत हो जाने पर जिनके द्वारा ही (ससृजे घोरं) समस्त भयंकर एवं निकृष्ट कार्यों का जन्म होता है, (तैः एव) उनसे ही, उन्हें संयमित, सुसंकृत एवं श्रेष्ठ बनाकर (नः शान्तिः अस्तु) हमें शान्ति प्राप्त हो।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

यजु.३६।१७

(द्यौः शान्तिः) द्युलोक हमें शान्ति प्रदान करे, अन्तरिक्ष हमें शान्ति प्रदान करे (पृथिवी शान्तिः) पृथिवी हमें शान्ति प्रदान करे, (आपः शान्तिः) जल हमें शान्ति प्रदान करें, (ओषधयः शान्तिः) ओषधियाँ हमें शान्ति प्रदान करें, (वनस्पतयः शान्तिः) वनस्पतियाँ हमें शान्ति प्रदान करें, (विश्वे देवाः शान्तिः) समस्त देव एवं विद्वान् हमें शान्ति प्रदान करें, (ब्रह्म शान्तिः) ब्रह्म तथा वेद हमें शान्ति प्रदान करें, (सर्वं शान्तिः) समस्त जगत हमें शान्ति प्रदान करे (शान्तिः एव शान्तिः) चारों ओर शान्ति ही शान्ति हो (सा शान्तिः मा एधि) तथा वह परम शान्ति मुझे प्राप्त हो।

ब्रह्मचर्य

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥

अथर्ववेद, ११।५।३

(ब्रह्मचारिणं उपनयमानः आचार्यः) उपनयन संस्कार द्वारा ब्रह्मचारी को अपने समीप प्राप्त करता हुआ, अपने निकट रखता हुआ आचार्य (कृणुते गर्भम् अन्तः) उसे मानो गर्भ के समान स्नेह पूर्वक अपने अन्दर धारण करता है तथा (तं तिस्रः रात्रीः उदरे बिभर्ति) उसे तीन रात्रि तक मानो अपने उदर में रखता है। (तं जातं द्रष्टुम् अभिसंयन्ति देवाः) तत्पश्चात् उपनयन संस्कार द्वारा आचार्य के गर्भ से उत्पन्न होने वाले उस द्विजन्मा ब्रह्मचारी को देखने के लिये विद्वान् लोग आते हैं।

जिस प्रकार नवजात शिशु को देखने के लिये इष्ट मित्र तथा सम्बन्धी आते हैं, उसी प्रकार इस नवजात, नव-सुसंस्कृत ब्रह्मचारी को देखने के लिये विद्वान् लोग आते हैं और उसे आशीर्वाद देते हैं। गुरु तथा शिष्य के सम्बन्ध का कैसा अलौकिक एवं आलंकारिक वर्णन है यह! वैदिक धर्म एवं संस्कृति का कैसा सुन्दर रूप है यह!

यह उल्लेखनीय है कि कठोपनिषद् के अनुसार नचिकेता भी अपने गुरु यम के यहाँ तीन रात्रि तक रहा था जिसके पश्चात् ही यम ने उसे ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा दी थी।

यह आलंकारिक वर्णन आचार्य तथा उसके ब्रह्मचारी के बीच पवित्र तथा अत्यन्त निकट संबंध का दिग्दर्शन कराता है। आचार्य अपने शिष्य का इसी प्रकार पालन पोषण करता है, जैसे माँ अपने बच्चे को गर्भ में धारण करती है। इसीलिये शिक्षा पूर्ण हो जाने के पश्चात् ब्रह्मचारी का पुनर्जन्म होना कहा गया है। त्रयी विद्या रूपी वेदों की शिक्षा में लगने वाले समय को यहाँ तीन रात्रि कहा गया है, जिसके पश्चात् यह ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करता है, ज्ञान के प्रकाश से युक्त दिन में जन्म लेता है।

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने ।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ।। मनु. २।१६९

वेद के अनुसार द्विज के तीन जन्म होते हैं । प्रथम माता से, द्वितीय उपनयन संस्कार से तथा तृतीय यज्ञ दीक्षा से ।

तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम्।
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ।।

मनुस्मृति २।१७०

इनमें यज्ञोपवीत संस्कार से ब्राह्मण का जो जन्म होता है, उसमें उसकी माता सावित्री तथा पिता आचार्य कहा जाता है ।

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद् वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा ॥

मनुस्मृति २।१४८

वेद का ज्ञाता आचार्य उपनयन संस्कार के समय विधिपूर्वक गायत्री मन्त्र के उपदेश से जो जन्म प्रदान करता है, वह सत्य, अजर और अमर होता है।

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी॥

अथर्व. ११।५।१६

(आचार्यः ब्रह्मचारी) आचार्य को ब्रह्मचारी होना चाहिये, (प्रजापतिः) प्रजापति अर्थात् प्रजा का पालक राजा भी ब्रह्मचारी होना चाहिये। इस प्रकार का प्रजापालक (विराजति) विशेष शोभा को प्राप्त होता है। (विराट्) ऐसा तेजस्वी (वशी) जितेन्द्रिय राजा, इन्द्र के समान होता है।

(इदि परमैश्वर्ये) इन्द्र का अर्थ है परम ऐश्वर्य सम्पन्न।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥

अथर्व, ११।५।१७

ब्रह्मचर्य तथा तप से राजा राष्ट्र की विशेष रूप से रक्षा करता है। आचार्य स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये ब्रह्मचारी शिष्य की इच्छा करता है।

स्पष्ट है कि भोगी, विलासी तथा दुराचारी राजा राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सकता। इसी प्रकार कोई दुराचारी व्यक्ति शिक्षक बनकर शिष्य को ज्ञान नहीं दे सकता।

व्यास जी ने योगदर्शन के भाष्य में स्पष्ट रूप से लिखा है कि ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा वाला सिद्ध योगी ही शिष्यो में ज्ञान धारण कराने में समर्थ होता है। इसीलिये आचार्य को ब्रह्मचारी होना आवश्यक बताया गया है।

ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति।।

अथर्व. ११।५।१८

(ब्रह्मचर्येण कन्या) ब्रह्मचर्य धारण करने के उपरान्त कन्या (युवानं) युवा पुरुष को (पतिम् विन्दते) पति के रूप में प्राप्त करती है। (अनड्वान् अश्वः) बैल तथा अश्व (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य की शक्ति से ही (घासं जिगीर्षति) घास खाकर भी बलवान् तथा वीर्यवान् होता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वरा भरत्॥

अथर्ववेद, ११।५।१९

ब्रह्मचर्य तथा तप से देवों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की है। इन्द्र ने ब्रह्मचर्य के द्वारा ही देवों के लिये स्वर्ग, सुख तथा तेज उपलब्ध कराया है।

इन्द्र को भोग विलासी के रूप में चित्रित करने वाले मूर्ख लोग इस मन्त्र को ध्यान पूर्वक पढ़ें।

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः॥

अथर्व. ११।५।२०

(ओषधयः वनस्पतयः) ओषधियाँ, वनस्पतियाँ (ऋतुभिः सह संवत्सरः) ऋतुओं के साथ वर्ष, (अहोरात्रः) दिन रात, (भूतं च भव्यं च) भूत और भविष्य, (ते जाता ब्रह्मचारिणः) ये सब ब्रह्मचारी ही हैं अर्थात् सत्य नियमों के अनुसार ही संयमित रूप से अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचर्य ही प्रकृति का नियम है और प्रकृति के सभी अङ्ग, सभी स्वरूप ब्रह्मचारी होते हैं।

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः।।

अथर्व. ११।५।२१

(पार्थिवाः) पृथिवी पर उत्पन्न होने वाले, (आरण्या ग्राम्याश्च) अरण्य में रहने वाले, ग्रामवासी, (अपक्षाः पशवः) बिना पंखों के पशु तथा जो (दिव्याः पक्षिणः) आकाश में विचरण करने वाले पक्षी हैं, वे भी सब (जाता ब्रह्मचारिणः) जन्म से ही ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करने वाले हैं, वे समयानुसार सन्तान उत्पन्न करके उनकी रक्षा करते हैं।

प्रथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम्।।

अथर्व. ११।५।२२

(सर्वे प्राजापत्याः) प्रजापति से उत्पन्न हुये समस्त प्राणी (आत्मसु प्राणान्) अपने शरीरों में प्रथक् प्रथक् प्राणों को (बिभ्रति) धारण करते हैं। (तान् सर्वान्) उन सब प्राणियों की (ब्रह्मचारिणि आभृतं ब्रह्म) ब्रह्मचारी में स्थित ज्ञान (रक्षति) रक्षा करता है।

देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम्।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम्।।

अथर्व. ११।५।२३

(देवानां एतत्) देवों का यह (अन् अभ्यारूढं) सर्वश्रेष्ठ (परिषूतम्

रोचमानम् चरति) निचोड़ अर्थात् सार रूप उत्साहवर्धक तेज ब्रह्मचारी के रूप में चलता है। (तस्मात्) उससे (ब्राह्मणं ज्येष्ठ ब्रह्म) ब्रह्म सम्बन्धी श्रेष्ठ ज्ञान (जातम्) प्रकट होता है तथा (सर्वे देवाश्च) समस्त देव अपनी अमृत अर्थात् कभी नष्ट न होने वाली शक्तियों से उस ब्रह्मचारी के साथ मिलकर कार्य करते हैं, उसे अपनी शक्तियाँ प्रदान करते हैं।

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥

अथर्ववेद, ११।५।२४

(ब्रह्मचारी भ्राजत् ब्रह्म बिभर्ति) ब्रह्मचारी देदीप्यमान् वेद ज्ञान को धारण करता है। (तस्मिन् विश्वे देवाः अधि समोताः) उस वेद में समस्त देव सम्यक् रूप से ओत प्रोत होकर निवास करते हैं। वह ब्रह्मचारी अपने प्राण, अपान, व्यान, वाणी, मन तथा हृदय पर नियन्त्रण करता है और तदनन्तर (ब्रह्म मेधाम् जनयन्) ब्रह्म को प्राप्त कराने वाली पवित्र धारणावती बुद्धि को उत्पन्न करता है, प्राप्त करता है।

विवाह

अथर्व वेद के चौदहवें काण्ड में विवाह का वर्णन आलंकारिक रूप से अत्यन्त सुन्दर एवं शिक्षाप्रद ढंग से किया गया है। इन सभी १३९ मंत्रों की ऋषि सावित्री सूर्या हैं, जिससे वैदिक संस्कृति में महिलाओं की विद्वता तथा उनकी उच्च स्थिति का दिग्दर्शन होता है।

विवाह के इस रूपक में सूर्य की पुत्री सूर्या अर्थात् सूर्य की किरणों का विवाह सोम अर्थात् चन्द्रमा से होना दिखाया गया है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि चन्द्रमा में अपना प्रकाश नहीं होता, वह सूर्य की किरणों से ही प्रकाशित होता है। जिस प्रकार किसी नव युवक का जीवन विवाह के उपरान्त ही सम्पूर्ण आनन्द से प्रकाशित होता है, उसी प्रकार चन्द्रमा भी अपनी पत्नी सूर्या से मिलने के उपरान्त ही न केवल स्वयं प्रकाशित होता है, प्रत्युत समस्त संसार को शोभायमान करता है, प्रेम रस में भिगोने वाला अलौकिक आनन्द प्रदान करता है।

काण्ड के प्रथम मंत्र में सत्य एवं ऋत अर्थात् सरलता एवं भगवान् के सत्य नियमों के पालन का उल्लेख करके यह बताया गया है कि वैवाहिक जीवन में सत्य, सरलता, सदाचार, पवित्रता एवं कल्याणकारी नियमों के पालन का अत्यन्त महत्व है। इससे न केवल मनुष्य जीवन की प्रत्युत उसकी मातृभूमि की भी उन्नति होती है।

सत्येनोत्तभिता भूमिः- सत्य ने भूमि को ऊपर उठाया हुआ है। मनुष्यों के सत्य आचरण से मातृभूमि का उत्थान होता है।

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादंदात्।।

अथर्व. १४।१।९

सोम वधू की इच्छा करने वाला था, (उभौ अश्विनौ वरौ आस्तां) दोनों अश्वि देव अर्थात् वर तथा कन्या के माता पिता उपस्थित थे, जब पति की प्रशंसा करती हुयी, कामना करती हुयी सूर्या को (मनसा) प्रसन्नता पूर्वक सविता अर्थात् सूर्य नें उसके पति को सौंप दिया।

इससे स्पष्ट है कि वर वधू द्वारा एक दूसरे की कामना करने पर अर्थात् उनकी पूर्ण सहमति के साथ ही विवाह संस्कार सम्पन्न किया जाना चाहिये। ब्रह्म विवाह में माता पिता की भी सहमति आवश्यक है। यह ब्रह्म विवाह का आदर्श है, जो आज भी भारतवर्ष में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

अश्विनौ का अर्थ द्यावा पृथिवी अर्थात् माता पिता भी होता है (अश्विनौ द्यावा पृथिवी वित्येके) निरुक्त. १२।१।१

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ।।

अथर्व. १४।१।२२

(इह एव स्तम्) इस गृह में ही साथ साथ रहना, (मा वियौष्टम्) कभी अलग न होना (पुत्रैः नप्तृभिः क्रीडन्तौ) तथा अपने पुत्र पौत्रों के साथ खेलते हुये, (मोदमानौ स्वस्तकौ) आनन्द मनाते हुये अपने गृहस्थ जीवन को कल्याणमय तथा उत्तम बनाते हुये (विश्वं आयुः व्यश्नुतम्) सम्पूर्ण आयु का उपभोग करना।

युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम्।।

ऋग्. १४।१।३१

(युवम् ऋत उद्येषु ऋतं वदन्तौ) तुम दोनों सत्य तथा सरल व्यवहार करते हुये एवं सत्य बोलते हुये (समृद्धं भगं संभरन्तं) समृद्धि तथा सौभाग्य को प्राप्त करो। हे ब्रह्मणस्पते! हे ईश्वर! (अस्यै पतिं रोचय) यह वधू सदा अपने पति को प्रेम करने वाली, उसके कार्यों में रुचि लेने वाली रहे (संभलः एतां वाचं चारु वदतु) तथा इसका पति इसके साथ सम्यक् भाषी होकर, इससे सभ्यता पूर्ण व्यवहार करते हुये प्रिय एवं मधुर वाणी बोले।

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम्।।

अथर्व. १४।१।४२

(सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिं आशासाना) मन की प्रसन्नता, परस्पर सौहार्द, सन्तान, सौभाग्य तथा धन की आशा करने वाली तुम, (पत्युः अनुव्रता भूत्वा) पति के अनुकूल आचरण वाली होकर (अमृताय कं सं नह्यस्व) मोक्ष प्राप्त करने के उद्देश्य से सुख पूर्वक गृहस्थ धर्म के पालन हेतु संनद्ध हो जाओ, तत्पर हो जाओ।

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः।।

अथर्व. १४।१।४४

वैदिक संस्कृति में नव वधू को इतना सम्मान दिया जाता है कि उससे कहा गया है कि (श्वशुरेषु सम्राज्ञी एधि) अपने श्वशुर के घर में सम्राज्ञी के समान रहो (उत देवृषु सम्राज्ञी) और अपने देवरों में भी सम्राज्ञी होकर रहो, (ननान्दुः सम्राज्ञी एधि) ननद के साथ भी सम्राज्ञी के समान रहो (उत) तथा (श्वश्र्वाः सम्राज्ञी) अपनी सास के साथ भी सम्राज्ञी के समान रहो।

गृह्णामिं ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदंष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा संविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः।।

अथर्व. १४।१।५०

(गृह्णामि ते हस्तं सौभगत्वाय) मैं सौभाग्य के लिये तुम्हारा हाथ गृहण करता हूँ, (यथा मया पत्या जरदष्टिः असः) जिससे तुम मुझ पति के साथ वृद्धावस्था तक रहने वाली हो। (भगः अर्यमा सविता पुरन्धिः देवाः) भग, अर्यमा, सविता तथा पुरन्धि, इन सब देवों ने (त्वा मह्यं गार्हपत्याय अदुः) तुमको मुझे गृहस्थाश्रम के लिये दिया है।

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद्बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम्।।

अथर्व. १४।१।५२

(इयं मम पोष्या अस्तु) यह वधू मेरे द्वारा पोषणीय हो, मैं सब प्रकार इसका पोषण करुँ, इसकी रक्षा करुँ। (बृहस्पतिः त्वा मह्यं अदात्) बृहस्पति ने तुम्हें मुझको दिया है। (प्रजावति) सन्तान से सम्पन्न होने वाली तुम, (मया पत्या शरदः शतं संजीव) मुझ पति के साथ सौ वर्ष तक जीवित रहो।

प्रति॑ तिष्ठ वि॒राड॑सि॒ विष्णु॑रि॒वेह सर॑स्वति।
सिनीवालि॒ प्र जा॑यता॒ं भग॑स्य सु॒मता॑वसत्।।

अथर्व. १४।२।१५

हे वधू! (प्रतितिष्ठ) तुम इस गृह में प्रतिष्ठा के साथ रहो, (विराट् असि) तुम विशेष तेजस्वी हो, (विष्णुः इव इह) तुम यहाँ विष्णु के समान सब का पालन पोषण करने वाली हो, (सरस्वति सिनीवालि) हे ज्ञान की देवि! हे अन्नपूर्णा! (प्रजायतां) तुम सन्तान उत्पन्न करने वाली बनो तथा तुम दोनों पति पत्नी (भगस्य सुमतौ असत्) सौभाग्य के देवता की सुमति में रहो।

अघो॑रचक्षु॒रप॑तिघ्नी स्यो॒ना श॒ग्मा सु॒शेवा॑ सु॒यमा॑ गृ॒हेभ्यः।
वी॒र॒सू॒र्देवृ॑का॒मा सं त्वयै॑धिषीमहि सुमन॒स्यमा॑ना।।

ऋग्. १०।८५।४४, अथर्व. १४।२।१७

वहीं नव वधू को शिक्षा देते हुये कहा गया है कि (अघोरचक्षुः) तुम्हारी दृष्टि कभी क्रूर न हो, (अपतिघ्नी) ग्रह कलह अथवा अन्य किसी प्रकार से पति को मारने वाली अर्थात् उसे दुःखी करने वाली न

बनना, (स्योना) सब को सुख देने वाली बनना, (शग्मा) सब के लिये कल्याणकारी, (सुशेवा) अपने से बड़ों की सेवा करने वाली तथा सेवकों से भली प्रकार सेवित होने वाली अर्थात् सेवकों को भी कष्ट न देने वाली (सुयमा) परिवार में यम नियम के अनुसार रहने वाली अर्थात् उच्छृङ्खल न होने वाली, (वीरसूः) वीर पुत्रों को जन्म देने वाली, (देवृकामा) देवरों को प्रेम करने वाली तथा (सुमनस्यमाना) अच्छे मन वाली बनना, (त्वया सम् एधिषीमहि) जिससे तुम्हारे उपरोक्त गुणों के कारण हम सब सुखी एवं सम्पन्न हों।

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव।।

अथर्व. १४।२।२७

(श्वशुरेभ्यः स्योना भव) श्वशुरों के लिये सुख देने वाली हो, (पत्ये गृहेभ्यः स्योना) पति तथा अन्य परिवार वालों के लिये सुख देने वाली हो, (अस्यै सर्वस्यै विशे स्योना) इन सभी लोगों के लिये सुख देने वाली हो (स्योना एषां पुष्टाय भव) तथा सब परिवार वालों के लिये सुखदायक और पुष्टि करने वाली हो।

पत्नी

कुसुरुविन्दु-ऋषिः, देवता-पत्नी

इड॒े रन्ते॒ हव्ये॒ काम्ये॒ चन्द्रे॒ ज्योते॑ऽदिं॒ते सर॑स्वति॒ महि॒ विश्रु॑ति।ए॒तात॑ेअघ्न्ये॒ नाम॑ानि दे॒वेभ्यो॑ मा सु॒कृत॑ं ब्रूतात्।।

यजु. ८।४३

(इड़े) प्रशंसनीय गुणों से युक्त, स्तुति करने योग्य, (रन्ते) रमणीय, (हव्ये) स्वीकार करने योग्य, (काम्ये) सुन्दर कमनीय (चन्द्रे) अत्यन्त आनन्द देने वाली, (ज्योते) तेजोमयी, (अदिते) देवमाता अदिति के समान सम्माननीय, (विश्रुति) विशेष विद्या एवं ज्ञान से युक्त, बुद्धिमान (महि) श्रेष्ठ मानवीय गुणों से युक्त होने के कारण महान्, (सरस्वति) सरस्वती के समान ज्ञान का श्रेष्ठ मार्ग दिखाने वाली तथा कल्याण करने वाली, (अघ्न्ये) किसी प्रकार का कष्ट न दिये जाने योग्य हे पत्नी! ये सब तुम्हारे नाम हैं, (देवेभ्यः) तुम देवों के लिये, विद्वानों के हित के लिये (सुकृतं) मुझे श्रेष्ठ कर्म करने के लिये (ब्रूतात्) कहो, श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा दो।

श्री सातवलेकर जी ने इस मन्त्र की व्याख्या पत्नी के स्थान पर गौ के वर्णन के रूप में की है, जो उचित प्रतीत नहीं होती, विशेष रूप से जब कि मन्त्र की देवता पत्नी है और मन्त्र में प्रयुक्त अनेक विशेषण गौ के विषय में उपयुक्त प्रतीत नहीं होते।

देवता

देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानो भवतीति वा। यो देवः सा देवता।

निरुक्त. ७।४।१५

दान, दीपन या द्योतन करने से अथवा द्युस्थानीय होने से देव कहा जाता है। दाता, प्रदीपक, द्योतक या द्युस्थानीय पदार्थ को देव कहा जाता है।

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवता दित्याऽऽदेवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता॥

यजु. १४।२०

अग्नि देवता, वायु देवता, सूर्य देवता, चन्द्रमा देवता, (वसवः देवताः) आठ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा तथा नक्षत्र, (रुद्रा देवताः) ग्यारह रुद्र अर्थात् रुलाने वाले, दश प्राण तथा जीवात्मा, जो शरीर से निकलने के समय प्रियजनों को रुलाते हैं, (आदित्याः देवताः) त्वष्टा, सविता, भग, सूर्य, पूषा, विष्णु, विश्वानर,

वरुण, केशी (केशिनः), वृषाकपि, यम तथा अज एकपात् अथवा वर्ष के बारह मास, मरुत देवता, विश्वेदेव देवता, बृहस्पति देवता, इन्द्र देवता तथा (वरुणः देवता) वरुण देवता।

यह समझना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सविता, प्रजापति आदि भगवान् के ही भिन्न भिन्न नाम हैं, ये कोई अलग अलग देवता नहीं हैं।

उपरोक्त ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र तथा प्रजापति, ये तैंतीस देवता हैं।

आठ वसु-

अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा तथा नक्षत्र।

'वसु आच्छादने धातु' से 'वसु'। इन्होंने सम्पूर्ण जगत् का आच्छादन किया हुआ है, इसलिये वसु हैं, अथवा, ये सब को बसाते हैं, इनके आधार पर ही सब जावित रहते हैं, अतः ये वसु हैं।

द्वादश आदित्य-

त्वष्टा, सविता, भगः, सूर्यः, पूषा, विष्णुः, विश्वानरः, वरुणः, केशी (केशिनः) वृषाकपि, यमः, अज, एकपात्।

निघण्टु. ५।६

इस विषय में शतपथ ब्राह्मण. १४।६।९।७-१० में कहा गया है कि याज्ञवल्क्य ने शाकल्य के प्रश्न करने पर बताया कि मुख्य देवता निम्न प्रकार हैं-

१. देव ६ हैं- अग्नि, पृथिवी, वाय. अन्तरिक्ष, आदित्य तथा द्युलोक।

२. देव तीन हैं- यह तीन लोक तीन देव हैं।

३. देव डेढ़ हैं। वायु ही डेढ़ देव हैं क्योंकि इन्हीं से समृद्धि होती है।

४. देव एक है, वह ब्रह्म है, जिसको त्यद् कहते हैं।

इसके स्थान पर बृहदारण्यक उपनिषद् ३।९।९ में निम्नाङ्कित वाक्य आया है-

शाकल्य- कतं एको देव इति- एक देव कौन है।

याज्ञवल्क्य- प्राण इति, स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते।

प्राण, यह ब्रह्म है, उसको त्यद् कहते हैं।

इस प्रकार स्वयं ब्रह्म को ही प्राण कहा गया है। प्राणों का भी प्राण होने से ब्रह्म महाप्राण है।

परोक्ष कामा हि देवाः। शतपथ. १४।१।१।१३

देव परोक्ष प्रिय होते हैं।

परोक्ष प्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्ष द्विषः। शतपथ. १४।६।२।६

देव परोक्ष प्रिय होते हैं, प्रत्यक्ष से उनको द्वेष होता है।

देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं तस्माद् सत्यमेव वदेत्। शतपथ. १४।१।१।३३

देवता सत्य का व्रत रखते हैं, अतः सत्य ही बोले।

अग्नि के द्वारा ही देवों में जो ब्रह्मा हुआ, वही मनुष्यों में ब्राह्मण। इसलिये लोग देवों में अग्नि से और मनुष्यों में ब्राह्मण से लोक अर्थात् कल्याण की कामना करते हैं।

शतपथ. १४।४।२।२६

सविता वै देवानां प्रसविता। शतपथ. १।१।३।६

सविता देवों का प्रेरक है।

भूमिः, भवन्ति पदार्था अस्यामिति।

उणादि सूत्र. ४।४६

इसमें पदार्थ उत्पन्न होते हैं, अतः यह भूमि कही जाती है। फैली होने के कारण इसे पृथिवी कहते हैं। (पृथ विस्तारे धातु से पृथिवी)

एने हीदꣳ सर्वं कुर्वन्ति देवानां हृदयेस्य इत्यग्निर्वायुरादित्य।

यही तो सब कुछ करते हैं। अग्नि वायु और आदित्य। ये देवों के हृदय हैं।

न मृषः श्रान्तं पदवन्ति देवा। ऋग्. १।१।७९।३

जिसकी रक्षा देव करते हैं, उसका तप व्यर्थ नहीं जाता।

श्रमेण ह स्म वै तद्देवा जयन्ति येदेषां जय्यमास ऋषयश्च।

शतपथ. १।६।२।३

श्रम से ही देवों ने जो कुछ जीतना चाहा जीता और ऋषियों ने भी।

जिस ब्रह्म के तेज से प्रकाशित होकर आत्मा इस शरीर में प्रविष्ट हुआ है, वही विश्व को बनाने वाला और सबक कर्ता है, उसी का यह सब प्रकाश है, वह स्वयं प्रकाश है। (शतपथ. १४।७।२।१७)

ब्रह्म की महिमा नित्य है, वह कर्म से न बढ़ती है, न घटती है। इसलिये विश्रान्त होकर तथा दमन करके सब कामनाओं को त्यागकर श्रद्धापूर्वक आत्मा में आत्मा को देखे।

शतपथ. १४।७।२।२८

वही एक महान्, अज, अजर, अमर, अभय, अमृत आत्मा है। ब्रह्म अभय है। जो इस रहस्य को समझता है, वह भी अभय और ब्रह्म के समान हो जाता है।

शतपथ. शतपथ. १४।७।२।३१

तमि॒दं निग॑तं॒ सहः॒ स ए॒ष एक॑ एक॒वृदेक॑ ए॒व॥

अथर्व. १३।४।१२

(तं इदं निगतं सहः) यह बल उस परब्रह्म में प्रविष्ट है, उसमें आश्रित है। (सः एषः एकः एव) वह ब्रह एक है, एक ही है, (एकवृत् एक एव) समस्त विश्व उसमें एक रूप हो जाता है।

ए॒ते अ॑स्मिन् दे॒वा ए॑क॒वृतो भवन्ति॥

अथर्व. १३।४।१३

(एते देवाः अस्मिन् एकवृतः भवन्ति) ये सब देव इस सविता में, परब्रह्म में एकरूप हो जाते हैं।

भगवान पिता हैं, मित्र हैं।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे॥ अथर्व. २०।१०८।२,

ऋग्. ८।९८।११(पाठभेद), साम. उत्त. ८।६ (२)।२ क्र. सं.११७०,(पाठभेद)

(शतक्रतो) सैकड़ों पराक्रम तथा यज्ञ अर्थात् श्रेष्ठ कर्म करने वाले हे इन्द्र! (वसो) हे जगन्निवास! (त्वं हि नः पिता) निश्चय ही आप हमारे पिता तथा (त्वं माता बभूविथ) आप ही हमारी माता हो, (अधा ते सुम्नम् ईमहे) अतः हम आप से सुख की प्रार्थना करते हैं।

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः।
सखा सख्यभ्य ईड्यः॥

साम. उत्त. १५।१।२, क्र.सं. १५३६, ऋग्. १।७५।४

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (त्वं जनानम् जामिः) आप सब मनुष्यों के बन्धु तथा (प्रियः मित्रः असि) प्रिय मित्र हैं और (सख्यभ्यः ईड्यः सखा) मित्रों के द्वारा स्तुति किये जाने योग्य सखा हैं।

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये।।

यजु. ११।१४, ऋग्. १।३०।७, अथर्व. २०।२६।१
साम. पूर्वा. २।७।९, क्र.सं. १६३, साम. उत्त. क्रं.सं. २।३।३।१,७४३

(सखायः) परस्पर मित्रता को प्राप्त करते हुये हम लोग (योगे योगे) प्रत्येक अवसर पर, प्रत्येक कर्म में (वाजे वाजे) तथा जीवन के प्रत्येक संग्राम में (तवस्तरं) अत्यन्त बलशाली (इन्द्रम् ऊतये) इन्द्र का अपनी रक्षा के लिये (हवामहे) आवाहन करते हैं।

शास इत्था महाँ असयमित्रखादो अद्भुतः।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन।।

ऋग्. १०।१५२।१

हे प्रभो! (शास) आप शासन करने वाले, (महान्) महान्, (अमित्र खादः) शत्रुनाशक एवं (इत्था अद्भुतः असि) ऐसे अद्भुत हैं, (यस्य सखा न हन्यते) जिनका मित्र न तो मारा जाता है और (न जीयते कदाचन) न कभी पराजित होता है अथवा कष्ट भोगता है।

भगवान् अपने कृपा पात्रों के शत्रुओं को स्वयं ही नष्ट कर देते हैं और स्वयं ही उनके योग तथा क्षेम को वहन करते हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

गीता, ९।२२

अनन्य भाव से चिन्तन करते हुये जो मेरी उपासना करते हैं उन, भक्तिभाव से मुझ में नित्य अभियुक्त होने वाले, भली प्रकार जुड़ जाने वाले, भक्तों के योग तथा क्षेम को मैं स्वयं वहन करता हूँ।

(अलब्धलाभो योगः) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति का नाम योग है तथा (प्राप्तस्य संरक्षणं क्षेमः) प्राप्त वस्तु के संरक्षण का नाम क्षेम है।

तथा॒ तदंस्तु सोमपाः सखे॑ वज्रिन् तथा॑ कृणु ।
यथा॑ त उ॒श्मसी॒ष्टये॑ ।। ऋग्वेद. १।३०।१२

(सोमपाः सखे वज्रिन्) हे सोम पान करने वाले वज्रधारी मित्र! (तथा तदस्तु) वैसा ही हो, वही हो (तथा कृणु) तथा आप वैसा ही करें, (यथा त) जैसा हम आपसे (इष्टये उश्मसि) अपने इष्ट की, अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिये इच्छा करें, प्रार्थना करें।

यदं॑ग्ने॒ स्याम॒हं त्वं त्वं वा॑ धा॒ स्या अ॒हम्।
स्युष्टे॑ स॒त्या इ॒हाशिषः॑।। ऋग्. ८।४४।२३

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप प्रभो! (यत् अहं त्वं स्याम्) जब मैं तुम हो जाऊँ (वा धा) अथवा (त्वम् अहम् स्याः) तुम मैं हो जाओ (ते इह आशिषः) तब इस संसार में तुम्हारे समस्त आशीर्वाद (सत्याः स्युः) सत्य हो जायँ। यह भक्ति की पराकाष्ठा है। भक्त भगवान् के साथ एकाकार होना चाहता है।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा।।

अथर्व. ७।२७।६, ऋग्. १।२२।१९
साम. १८।२।३, क्र.सं. १६७१, यजु. ६।४

(विष्णोः कर्माणि पश्यत) विष्णु के, भगवान् के कार्यों को देखो, (यतः व्रतानि पस्पशे) जिनसे सृष्टि के समस्त व्यापार, समस्त कार्य तथा समस्त शाश्वत नियम चलते हैं। (इन्द्रस्य युज्यः सखा) वह परमात्मा, जीवात्मा का योग्य एवं अनुकूल मित्र है।

आत्मा में परमात्मा का मित्र बनने की समस्त योग्यतायें हैं, आवश्यकता है प्रयास, ज्ञान, कर्म, भक्ति एवं उपासना की।

आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये।
सखा सख्ये वरेण्यः।।

ऋग्. १।२६।३

(आ वरेण्यः पिता) श्रेष्ठ पिता जिस प्रकार अपने पुत्र की, (अपिः आपये) बन्धु अपने बन्धु की तथा (सखा सख्ये) मित्र अपने मित्र की (आयजति) सहायता करता है, (हि स्म) उसी प्रकार हे प्रभो! आप हमारी सहायता कीजिये।

इस प्रकार स्पष्ट है कि परमात्मा हमारा पिता, बन्धु तथा मित्र है। परमात्मा और आत्मा का सम्बन्ध स्वामी और दास के समान नहीं है।

मनुष्य शरीर में देवता

प्राणपानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्चया।
व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूतिमावहन्।।

अथर्व. ११।८।४

(प्राण, अपान, चक्षुः, श्रोत्रं) प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, (अक्षितिः च क्षितिः च) न क्षीण होने वाली ज्ञान शक्ति, क्षीण होने वाली कर्म शक्ति, (व्यान उदानौ वाङ् मनः) व्यान, उदान, वाणी तथा मन निश्चय ही (ते वै आकूतिं आवहन्) ये दश देव ही शरीर में संकल्प शक्ति को धारण करते हैं।

संसिचो नाम ते देवा ये सम्भारान्त्समभरन्।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन्।।

अथर्व. ११।८।१३

(ते देवाः संसिचः नाम) वे देव संसिच अर्थात् सींचने वाले इस नाम के हैं। (ये संभारान् समभरन्) जिन्होंने शरीर में समस्त सामग्री अर्थात् सभी अङ्ग प्रत्यङ्गों रोम, त्वचा, मांस, मज्जा, केश, अस्थियों, स्नायुओं आदि को भरा है। (सर्वं मर्त्यं संसिच्य) समस्त मरणधर्मा शरीरों को पूर्णतया सींचकर, (देवाः पुरुषं आविशन्) वे देव शरीर में ही प्रविष्ट हो गये।

सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधूः सती।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत्।।

अथर्व. ११।८।१७

(सर्वे देवाः उपाशिक्षन्) सभी देव साथ मिलकर शरीर में रहना चाहते थे, (तत् अजानात् सती वधूः) सती वधू ने उनकी इस इच्छा को जान लिया, (ईशा वशस्य या जाया) वह वधू समस्त जगत् को वश में रखने वाली ईश्वरी शक्ति रूपी ब्रह्म की पत्नी है, (जो इस शरीर को उत्पन्न करके जीवित रखती है तथा भगवान् के सत्य नियमों के अनुसार चलाती है।) (सा अस्मिन् वर्णम् आभरत्) उसी ने सब देवताओं के साथ मिलकर इस शरीर में वर्ण अर्थात् रूप, रंग एवं शोभा आदि को भरा है, जिससे यह रुचिकर लगता है।

यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविंशन्।।

अथर्व. ११।८।१८

(यः त्वष्टुः पिता उत्तरः त्वष्टा) त्वष्टा का पिता जो उच्चतर श्रेष्ठ त्वष्टा अर्थात् परमात्मा है, (यदा व्यतृणत्) उसने जब शरीर में छिद्र कर दिये तब (मर्त्यं गृहं देवाः पुरुषं आविशन्) उन छिद्रों से मरणधर्मा शरीर को गृह बनाकर देवों ने पुरुष शरीर में प्रवेश किया।

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्।।

ऐतरेयोपनिषद्. १।२।४

अग्नि वाक् इन्द्रिय बनकर मुख में प्रविष्ट हो गया, वायु प्राण बनकर नासिका के छिद्रों में प्रविष्ट हो गया, सूर्य नेत्र इन्द्रिय बनकर आँखों के गोलकों में प्रविष्ट हो गया, दिशाओं के अभिमानी देवता श्रोत्र इन्द्रिय बनकर कानों में प्रविष्ट हो गये, ओषधि और वनस्पतियों के अभिमानी देवता रोयें बनकर त्वचा में प्रविष्ट हो गये, चन्द्रमा मन बनकर हृदय में प्रविष्ट हो गया, मृत्यु देवता अपान वायु बनकर नाभि में प्रविष्ट हो गये, जल का अभिमानी देवता वीर्य बनकर लिङ्ग में प्रविष्ट हो गया।

या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः।।

अथर्व. ११।८।३०

(यः आपः याः च देवताः) जो जल तथा जो देवता हैं और (या विराट् ब्रह्मणा सह) जो ब्रह्म के साथ रहने वाली विविध रूपों में दीप्यमान ईश्वरकी शक्ति है, (जिसे मन्त्र सं. अथर्व. ११।८।१७ में ब्रह्म की जाया अथवा उत्पन्न करने वाली शक्ति कहा गया है।) उन सब के साथ (शरीरं ब्रह्म प्राविशन्) वह ब्रह्म शरीर में प्रविष्ट हुआ और प्रजापति रूपी शरीर का अधिष्ठाता हुआ।

ब्रह्म का जो अंश जीव भाव से शरीर में आता है, वही प्रजापति संज्ञक शरीर का अधिष्ठाता बनता है।

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये।।

अथर्व. ११।८।३१

(पुरुषस्य चक्षुः सूर्यः) पुरुष की चक्षु सूर्य से तथा (प्राणं वातः वि भेजिरे) वायु को विशेष रूप से विभक्त करके प्राण बनाये गये हैं (अथ अस्य इतरं आत्मानं देवाः) और इस शरीर की जो अन्य इन्द्रियाँ तथा अन्य भाग हैं उन्हें (देवाः अग्नये प्रयच्छन्) देवों ने अग्नि को दे दिया अर्थात् शरीर में स्थित वैश्वानर अग्नि इनका पालन पोषण करता है।

तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते।।

अथर्व. ११।८।३२

(तस्मात् वै विद्वान्) इसीलिये निश्चित रूप से विद्वान् (इदं पुरुषं ब्रह्म इति मन्यते) इस पुरुष को यह ब्रह्म है, ऐसा मानते हैं (हि सर्वाः देवता अस्मिन् आसते) क्योंकि समस्त देवता इस पुरुष शरीर में उसी प्रकार निवास करते हैं (गावः इव गोष्ठे) जैसे गौवें गोष्ठ अर्थात् गायों के रहने के स्थान में रहती हैं।

अनेक तथाकथित विद्वान्, जो वास्तव में मूर्ख हैं, शरीर को मल मूत्र आदि गंदगी से भरा हुआ अपवित्र पिंजड़ा मानते हैं जब कि वेद में शरीर को कितना पवित्र तथा पुरुष को कितना श्रेष्ठ माना गया है यह दर्शनीय है। अस्तु हम सभी का कर्तव्य है कि निन्दनीय विचारों एवं कर्मों से ऊपर उठकर मनसा, वाचा, कर्मणा भगवान् के द्वारा बताये गये श्रेष्ठ मार्ग पर चलें और अपने शरीर को पवित्र रखकर मोह तथा अन्धकार आदि से ऊपर उठते हुये ब्रह्म का साक्षात्कार करने, मोक्ष प्राप्त करने का प्रयास करें।

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोधि शीर्षतः।।

अथर्व. १०।२।२६

(अथर्वा) स्थिर मन एवं चित्त वाला योगी (अस्य मूर्धानं) अपने सिर (यत् च हृदयं) और जो हृदय है उनको (संसीव्य) आपस में जोड़कर अर्थात् अपने विचारों तथा ज्ञान को भावनाओं और भक्ति के साथ जोड़कर, तर्क वितर्क से ऊपर उठकर (पवमानः शीर्षतः अधि) अपने प्राण को शिर में (मस्तिष्कात् ऊर्ध्वं प्रैरयत्) मस्तिष्क के ऊपर प्रेरित करता है।

श्री सातवलेकर जी ने लिखा है कि सिर में, मस्तिष्क के उच्चतम भाग में ब्रह्मलोक है। इस ब्रह्म लोक में प्राण के साथ आत्मा जाता है, जहाँ उसे ब्रह्म के दर्शन होते हैं, ब्रह्म से साक्षात्कार होता है। इसके लिये प्राण को मूलाधार से ऊपर उठकर स्वाधिष्ठान आदि चक्रों से होते हुये सहस्रार चक्र तक ले जाया जाता है।

पृष्ठवंश अथवा मेरुदण्ड में स्थित ये आठ चक्र निम्नाङ्कित हैं-

१. मूलाधार चक्र- गुदा के पास पृष्ठवंश समाप्ति के स्थान में है, यही इस शरीर रूपी नगरी का मूल आधार है। २. स्वाधिष्ठान चक्र- उसके ऊपर है, ३. मणिपूरक चक्र- नाभि स्थान में है, ४. अनाहत चक्र- हृदय स्थान में है, ५. विशुद्धि चक्र- कंठ स्थान में है, ६. ललना चक्र- जिह्वा मूल में है, ७. आज्ञा चक्र- दोनों भौहों के बीच में है, ८. सहस्रार चक्र- मस्तिष्क में है।

तद् वा अथर्वणः शिरः देवकोशः समुब्जितः।
तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः।।

अथर्व. १०।२।२७

(तद् वा अथर्वणः शिरः) निश्चय ही योगी का वह शिर (समुब्जितः देवः कोशः) देवों का सुरक्षित कोश है, सुरक्षित स्थान है। (तत् शिरः प्राणः अन्नं अथो मनः अभि रक्षति) उस शिर की रक्षा प्राण, अन्न तथा मन के द्वारा की जाती है।

प्राणायाम, सात्विक पौष्टिक अन्न तथा वश में किये गये शिव संकल्प वाले मन के द्वारा देवताओं के कोश रूपी इस शिर की रक्षा होती है।

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषा वृतः।।

अथर्व. १०।२।३१

(अष्टाचक्रा) यह पुरुष शरीर आठ चक्र तथा (नव द्वारा) नौ द्वारों वाली (देवानां पूः अयोध्या) देवों की अयोध्या नगरी है, समस्त देव इसमें निवास करते हैं। (तस्यां हिरण्ययः कोशः ज्योतिषा आवृतः स्वर्गः) उस शरीर रूपी अयोध्या नगरी में ज्योति से आवृत्त अर्थात् तेज से परिपूर्ण एक स्वर्णिम कोश रूपी स्वर्ग है।

इस शरीर रूपी अयोध्या नगरी में, दो आँखें, दो नासिका, दो कान, मुख, जननेन्द्रिय तथा गुदा, ये छिद्र रूपी नौ द्वार हैं।

पुण्डरीकं नवंद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृंतम्।
तस्मिन् यद् यक्षमांत्मन्वत् तद्वै ब्रंह्मविदो विदुः।।

अथर्व. १०।८।४३

(नवद्वारम्) नौ द्वारों वाले शरीर में स्थित् (पुण्डरीकम्) हृदय कमल (त्रिभिः गुणोभिः) तीन गुणों द्वारा (आवृतम्) ढका हुआ है।

(तस्मिन) उस हृदय कमल में (यद्) जो जीवात्मा रूपी पूजनीय यक्ष है उसे (वै) निश्चय से (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी (विदुः) जानते ह।

प्रभ्राजंमानां हरिंणीं यशंसा संपरीवृताम्।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विंवेशापंराजिताम्।।

अथर्व. १०।२।३३

(प्रभ्राजमानां) आनन्द अथवा प्रकाश से युक्त, (हरिणीम्) दुःखों का का नाश करने वाली, (यशसा संपरीवृताम्) यश से सब ओर से आवृत्त तथा परीपूर्ण, (हिरण्ययीं) स्वर्ण के समान चमकीली, मनोहारिणी,

(अपराजित) अजेय हृदय रूपी पुरी में (ब्रह्म आविवेश) ब्रह्म प्रविष्ट हुआ है।

तस्मिंन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः।।

अथर्व. १०।२।३२

(तस्मिन् हिरण्यये कोशे) उस स्वर्णिम तेजस्वी हृदय रूपी कोश में (त्रि अरे) तीन अरों से युक्त (यत् आत्ममन्वत् यक्ष) जो आत्मा रूपी यक्ष (त्रि प्रतिष्ठिते) तीन प्रकार से स्थित रहता है, (तद् वै ब्रह्मविदः विदुः) उसे ब्रह्मज्ञानी ही निश्चित रूप से जानते हैं।

चक्र की नाभि को परिधि से जोड़ने वाले अवयवों को 'अरे' कहते हैं। मन्त्र में उल्लिखित 'अरे' सत्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण हैं, जिनमें से युक्त होकर आत्मा शरीर में निवास करता है। यह अरे एक समान नहीं हैं प्रत्युत अलग अलग तीन प्रकार के हैं, इसीलिये 'त्रिप्रतिष्ठि' शब्द का प्रयोग हुआ है। कोई भी मनुष्य अपने जीवन काल में इन तीन गुणों से मुक्त नहीं हो सकता क्योंकि आत्मा इनके ही शरीर में रहता है।

मनुष्य शरीर में सप्तर्षि

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ।।

यजु. ३४।५५

आध्यात्मिक अर्थ-

(सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे) सात ऋषि अर्थात् मन तथा बुद्धि सहित पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ शरीर तथा जीवात्मा में निहित हैं। (सप्त अप्रमादं सदं रक्षन्ति) ये सातों ऋषि प्रमाद रहित होकर शरीर की रक्षा करते हैं, (सप्त आपः स्वपतः लोकं ईयुः) शरीर में व्याप्त रहने वाले ये सात ऋषि मनुष्य अथवा जीवात्मा के सो जाने पर, प्रगाढ़ निद्रा में होने पर हृदयाकाश में स्थित विज्ञानात्मा अर्थात् उसी जीवात्मा में चले जाते हैं, स्थित हो जाते हैं। (तत्र) उस समय (अस्वप्नजौ सत्र सदौ च देवौ) कभी न सोने वाले तथा शरीर की रक्षा के लिये सदैव तत्पर रहने वाले प्राण और अपान (जागृतौ) जागृत रहते हैं।

आपः आप्नुवन्ति व्याप्नुवन्ति।

निरुक्त. १२।४।२५ में कहा गया है-

अत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ प्राज्ञश्चात्मा तैजसश्च-इत्यात्मगतिमाचष्टे।

अर्थात् जीवात्मा तथा प्राण ये दो देव जागते रहते हैं। तात्पर्य यह है कि जीवात्मा का सोना केवल व्यावहारिक दृष्टि से कहा जाता है, यथार्थ में जब जीवात्मा सो जाता है तब मृत्यु हो जाती है।

१. प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः।

यजु. १३।५४, शतपथ. ८।१।१।६

श्रेष्ठ होने से प्राण वसिष्ठ है अथवा इसके द्वारा वसते हैं, जीवित रहते हैं, इसीलिये प्राण वसिष्ठ हैं।

२. मनो वै भरद्वाज ऋषिः।

यजु. १३।५५, शतपथ.८।१।१।९

वाज कहते हैं अन्न को। जिसके पास मन है, वह अन्न प्राप्त करने की चेष्टा करता है। समस्त प्राणी अपने मन के अनुरुप अन्न को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करत हैं।

३. चक्षुर्वै जमदग्निः ऋषिः।

यजु. १३।५६, शतपथ.८।१।२।३

इससे जगत् को देखता है और मनन करता है।

४. श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः।

यजु. १३।५७, शतपथ.८।१।२।६

श्रोत्र ही विश्वामित्र ऋषि हैं। क्योंकि इसी से सब ओर सुनते हैं और इसके लिये सब ओर मित्र मिल जाते हैं।

५. वाग्वै विश्वकर्म ऋषिः।

यजु. १३।५८, शतपथ.८।१।२।९

वाणी ही इस सबको बनाती है।

६. मुख वाची अत्रि शब्द का निर्वचन है- अत्तीति अत्रिः। खाता है, इसलिये अत्रि।

७. अन्न प्राण भृत है क्योंकि अन्न ही प्राणों को धारण करता है।

शतपथ ब्राह्मण में इसका उल्लेख निम्न प्रकार से भी किया गया है।

ये कान ही गोतम तथा भरद्वाज हैं। एक कान गोतम है, दूसरा भरद्वाज। ये नेत्र ही विश्वामित्र तथा जमदग्नि हैं। यह आँख विश्वामित्र है, वह आँखा जमदग्नि है। ये नाक के दो नथुने वसिष्ठ तथा कश्यप हैं। यह एक वसिष्ठ है, दूसरा कश्यप। वाणी अत्रि है, वाणी से ही खाया जाता है। अत्ति का अत्रि हो गया।

शतपथ. १४।५।२।६

मुख में ही वाणी तथा जिह्वा होती है, अतएव मुख के स्थान पर वाणी कहा गया है।

प्राण मुख में रहता है, इसीलिये इसको अयास्य तथा अङ्गिरस कहते हैं क्योंकि यह अंगों का रस है।

शतपथ. १४।४।१।९

प्राण ने अन्न को अपने लिये रख लिया। यह जो अन्न खाया जाता है, वह इसी प्राण द्वारा खाया जाता है, इसी में प्रतिष्ठित होता है। शरीर में रहने वाले अन्य देवता इसी से तृप्त हो जाते हैं।

शतपथ. १४।४।१।१८-१९

प्राण

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्।।

अथर्ववेद,११।४।१

(प्राणाय नमः) प्राण को नमस्कार है, (यस्य सर्वं इदं वशे) जिसके वश में यह सब कुछ है, (यः सर्वस्य ईश्वरः भूतः) जो समस्त स्थावर जङ्गम जगत् का ईश्वर है (यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्) तथा जिसमें यह सब प्रतिष्ठित है।

प्राण परमात्मा की प्रमुख जीवनी शक्ति है। इसीलिये यहाँ ब्रह्म को ही प्राण के रूप में वर्णित किया गया है।

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः।।

अथर्व, ११।४।७

मन्त्र में प्राणायाम का वर्णन है।

(नमस्ते अस्तु आयते) अन्दर आने वाले (पूरक) प्राण को प्रणाम, (नमस्ते अस्तु परायते) बाहर जाने वाले (रेचक) प्राण को प्रणाम, (नमस्ते प्राण तिष्ठत) शरीर के अन्दर स्थिर किये गये (आभ्यन्तर कुम्भक) प्राण को प्रणाम (उत आसीनाय ते नमः) तथा बाहर रोके हुये प्राण तुम्हें प्रणाम है।

यहाँ 'आयते प्राण' का तात्पर्य पूरक से है, 'परायते प्राण' का तात्पर्य रेचक से है, 'तिष्ठत प्राण' का तात्पर्य अन्तः कुम्भक से है तथा 'आसीन प्राण' का तात्पर्य शरीर से बाहर रोके हुये प्राण अर्थात् बाह्य कुम्भक से है।

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न।।

अथर्व. ११।४।१०

(पिता प्रियं पुत्रं इव) जिस प्रकार पिता अपने प्रिय पुत्र के साथ रहता है, उसी प्रकार (प्राणः प्रजाः अनुवस्ते) प्राण सब प्रजाओं अर्थात् प्राणियों तथा पदार्थों के साथ रहता है, (यत् प्राणिति) जो प्राण लेते हैं और (यत् च न) जो प्राण धारण नहीं करते, (प्राणः सर्वस्य ईश्वरः) प्राण सब का ईश्वर है।

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम्।।

अथर्व. ११।४।१२

(प्राणः विराट्) प्राण विराट् है, विशेष प्रकार से दीप्तिवान् है, (प्राणः देष्ट्री) प्राण सब को प्रेरणा देने वाला है, (प्राणं सर्वे उपासते) प्राण की सब लोग उपासना करते हैं। (प्राणः ह सूर्यः चन्द्रमाः) प्राण ही निश्चय से सूर्य तथा चन्द्रमा है, (प्राणं प्रजापतिं आहुः) प्राण को प्रजापति कहते हैं।

यहाँ प्राण के रूप में परमात्मा का वर्णन है क्योंकि जिस प्रकार प्राण शरीर की रक्षा करता है, उसी प्रकार परमात्मा समस्त जगत् की रक्षा करता है।

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।।

अथर्व. ११।४।१५

(प्राणं मातरिश्वानं आहुः) प्राण को मातरिश्वा कहते हैं (वातः ह प्राणः उच्यते) तथा वायु को ही प्राण कहते हैं। (प्राणे ह भूतं भव्यं च) प्राण में ही भूत, भविष्य तथा वर्तमान हैं, (सर्वं प्राणे प्रतिष्ठितम्) सब कुछ प्राण में प्रतिष्ठित है।

समष्टि वायु शरीर में प्रवेश करने पर प्राण कहलाती है, अन्तरिक्ष में उसी वायु को मातरिश्वा कहते हैं। समस्त संसार प्राण पर ही आधारित है क्योंकि प्राण न रहने पर प्राणी के लिये भूत, भविष्य तथा वर्तमान सब कुछ नष्ट हो जाता, समाप्त हो जाता।

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम्।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः।।

अथर्व. ११।४।१७

(यदाः प्राणः महीं पृथिवीं अभ्यवर्षीद्) जब प्राण वर्षा के द्वारा इस महती पृथिवी को सींचता है, तब (ओषधयः वीरुधः याः काः च) ओषधियाँ, वनस्पतियाँ तथा लतायें और झाड़ियाँ आदि जो कुछ हैं (प्रजायन्ते) वे प्रकर्ष रूप से उत्पन्न होती हैं, बढ़ती हैं।

गेहूँ, जौ, चना, धान आदि की फसलों को ओषधियाँ कहते हैं।

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उद्चरन्।
यदङ्ग स तमुत्खिदनैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न
व्युच्छेत् कदाचन।।

अथर्व. ११।४।२१

(सलिलात् हंस उद्चरन्) हृदय रूपी मानसरोवर के जल से ऊपर उठता हुआ प्राण रूपी हँस अपना (एकं पादं न उत्खिदति) (अपने दो पादों में से) एक पाद ऊपर नहीं उठाता है। (अंग) हे प्रिय! (यत् स तं उत्खिदेत्)

यदि वह इस दूसरे पैर को भी उठा ले, उसे हृदय में न छोड़ दे अर्थात् शरीर से पूर्ण रूप से बाहर चला जाय तो व्यक्ति के लिये (न एव अद्य स्यात्) न आज रहेगा, (न श्वः न रात्रीः न अहः स्यात्) न कल होगा, न रात्रि होगी, न दिन होगा और (न कदाचन व्युच्छेत्) न कभी उषा चमकेगी अर्थात् उसके लिये न कभी रात्रि का अन्धकार होगा और न दिन का प्रकाश होगा।

श्वास के शरीर के अन्दर जाते समय 'स' की ध्वनि होती है और उच्छ्वास अर्थात् बाहर जाते समय 'हं' की ध्वनि होती है। इन्हीं 'हं' तथा 'स' को मिलाकर श्वास-उच्छ्वास रूपी प्राण को 'हंस' कहा जाता है।

इन्हीं 'स' तथा 'ह' में 'ओम्' मिलाकर 'सोऽहम्' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है जीवात्मा। शरीर में आत्मा तथा प्राण के संम्बन्ध पर ही आधारित है, ब्रह्मा का वाहन हंस तथा उनके कमलासन की कल्पना।

ब्रह्म	परमात्मा
पुत्र- ब्रह्मा, ब्रह्मदेव-	जीवात्मा, आत्मा
वाहन- हंस	वाहन-प्राण
आसन- कमल	आसन-हृदय कमल
हंस का निवास स्थान- मानसरोवर	प्राण का निवास स्थान- हृदय रूपी मानसरोवर
सृष्टि के नियन्ता-ब्रह्माजी	शरीर का नियन्ता जीवात्मा

इसी प्रकार का रूपक राम तथा हनुमान का भी है।

जिस प्रकार शरीर में वायु का पुत्र प्राण, जीवात्मा की सेवा करता है, उसी प्रकार संसार में वायु पुत्र हनुमान, राम रूपी परमात्मा की सेवा करते हैं। जिस प्रकार शरीर की समस्त शक्ति वायु पुत्र प्राण में रहती है, उसी प्रकार संसार में सबसे अधिक शक्ति वायु पुत्र हनुमान में रहती है।

यो अस्य विश्वजंन्मन ईशे विश्वंस्य चेष्टंतः।
अन्येषु क्षिप्रधंन्वने तस्मैं प्राण नमोऽस्तु ते।।

अथर्व. ११।४।२३

(यः अस्य विश्व जन्मनः) जो नाना प्रकार से जन्म लेने वाले तथा (चेष्टतः) चेष्टा करने वाले (अस्य विश्वस्य) इस विश्व का (ईशे) ईश्वर है, स्वामी है तथा (अन्येषु क्षिप्र धन्वने) अन्य पदार्थों की अपेक्षा शीघ्र गति वाला है, (तस्मै प्राण नमः अस्तु) उस प्राण के लिये प्रणाम हो, नमन हो।

यो अस्य सर्वजंन्मन ईशे सर्वंस्य चेष्टंतः।
अतंन्द्रो ब्रह्मंणा धीरंः प्राणो माऽनुं तिष्ठत।।

अथर्व. ११।४।२४

(यः अस्य सर्वजन्मनः चेष्टतः सर्वस्य ईशे) जो प्राण धारण करने वाले तथा चेष्टा करने वाले सब प्राणियों का ईश्वर है, स्वामी है, वह (अतन्द्रः ब्रह्मणा धीरः) आलस्य रहित, धैर्यवान् आत्मशक्ति तथा ज्ञान से युक्त प्राण (मा अनुतिष्ठतु) मेरे पास रहे।

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् निपद्यते।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन।।

अथर्व. ११।४।२५

(सुप्तेषु) सोते हुये प्राणियों में भी यह प्राण (ऊर्ध्वः) खड़ा रहकर (जागार) जागता रहता है। (ननु तिर्यङ् निपद्यते) कभी तिरछा होकर लेटता नहीं है, सोता नहीं है, (सुप्तेषु अस्य) सोते हुये मनुष्य के भी प्राण को (कश्चन सुप्तं न अनुशुश्राव) कभी किसी ने सोता हुआ नहीं सुना।

इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम्।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः।।

अथर्व. ३।११।६

(प्राणापानौ) हे प्राण और अपान! (युवम्) तुम दोनों (इह एव) इस शरीर में ही (स्तम्) रहो, (इतः मा अप गातम्) इस शरीर से दूर न जाओ तथा (अस्य शरीरं अङ्गानि पुनः जरसे वहतम्) इस शरीर और इसके अंगों को वृद्धावस्था तक के लिये फिर से ले चलो।

सोऽयास्य अङ्गिरसोऽङ्गानां हि रसः।

शतपथ.१४।४।१।९

(अयास्य= प्राण क्योंकि यह मुख में रहता है।) वह प्राण आंगिरस है क्योंकि वह अंगों का रस है।

प्राणा वै समिधः। शतपथ. १।५।४।१

प्राण ही समिधा है। यह पुरुष प्राणों द्वारा ही प्रज्वलित किया जाता है। प्राण से पुरुष का शरीर गरम रहता है।

प्राणा वै समिधः प्राणा हीदं सर्वं समिन्धते यदिदं किं च।

ऐतरेय. द्वितीय पंचिका. १।४

समिधा प्राण हैं क्योंकि जगत् में जो भी प्राणी हैं, वह सभी प्राण से ही प्रकाशित होते हैं।

प्रजयति इति प्राणः।

ऐतरेय. २५. ६ पंचम पंचिका.५।६

आदित्य सब को प्रेरणा देते हैं, सभी प्राणियों को चेष्टा प्रदान

क्रते हैं। इसीलिये आदित्य को (प्राणः प्रजानाम्) समस्त प्राणियों का प्राण कहा गया है।

प्रश्नोपनिषद 1। 8

वेदवाणी

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते।।

ऋग्. १०।७१।३

विद्वान् लोग (वाचः पदवीयं यज्ञेन आयन्) उत्कृष्ट वाणी में निहित ज्ञान को यज्ञमय जीवन व्यतीत करके, निःस्वार्थ भाव से श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक पवित्र अन्तःकरण से चिन्तन एवं मनन करके प्राप्त करते हैं। (ऋषिषु प्रविष्टां तां अविन्दन्) इस प्रकार तत्वदर्शी ऋषियों में प्रविष्ट हुयी उस वाणी को विद्वानों ने प्राप्त किया (तां आभृत्य पुरुत्रा व्यदधुः) और उसे प्राप्त करके बहुत प्रकार से प्रचारित किया तथा (तां सप्त रेभाः अभि सं नवन्ते) उस वाणी को गायत्री आदि सात छन्दों में भली प्रकार छन्दोबद्ध किया।

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं१ वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥

ऋग्. १०।७१।४

(उत त्वः वाचं पश्यन् न ददर्श) कोई तो वेदवाणी को देखता हुआ भी (अज्ञानता के कारण) नहीं देख पाता, (उत त्वः एनां शृण्वन् न शृणोति) दूसरा इस वाणी को सुनकर भी (मूर्खता के कारण) नहीं सुन पाता। (उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे) वह वेद वाणी श्रद्धा से युक्त अर्थ को जानने वाले विद्वान् को अपने ज्ञान रूपी स्वरूप को इस प्रकार प्रकट कर देती है, (पत्ये सुवासाः उशती जाया इव) जैसे सुन्दर वस्त्र पहने हुये पत्नी पति के प्रेम की कामना करते हुये अपने शरीर को उसके समक्ष प्रकट कर देती है, स्वेच्छा से खोलकर दिखा देती है।

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति मायया एष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम्॥

ऋग्. १०।७१।५

वेदवाणी के अर्थ जानने वाले को विद्वानों के मध्य स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है।

(वाजिनेषु अपि एनं न हिन्वन्ति) वाणी पर अधिकार रखने वाले शब्दों तथा अर्थों का सही अर्थ जानने वाले, उनके रहस्य को समझने वाले ऐसे विद्वान् से श्रेष्ठ कोई नहीं होता किन्तु जो (वाचं अफलां अपुष्पां शुश्रुवान्) वाणी के फल और फूल को, उसके अर्थ तत्व और रहस्य को न समझकर केवल पढ़ता अथवा सुनता है, (एषः अधेन्वा मायया चरति) वह संसार में अज्ञान फैलाते हुये बन्ध्या गौ के समान निरर्थक जीवन व्यतीत करता है।

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः।
अत्राहं त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे॥

ऋग्. १०।७१।८

(यत् सखायः ब्राह्मणः) जब वेदोक्त कर्मों के कर्ता समान योग्यता वाले वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मण (हृदा तष्टेषु मनसः जवेषु) हृदय से सूक्ष्मीकृत बुद्धियों की दौड़ों में अर्थात् हृदय तथा बुद्धि से गम्य वेदार्थ के गम्भीर चिन्तन के लिये (संयजन्ते) एकत्र होते हैं, (अह अत्र त्वं वेद्याभिः वि जहुः) तब निश्चय से वे विद्वान् उस वेदार्थ चिन्तन में बुद्धिहीन अज्ञ को छोड़ देते हैं (अह त्वे ओह ब्रह्माणः उ त्वः विचरन्ति) और दूसरे तर्क से वेद ज्ञान को उपलब्ध करने वाले विद्वान् परस्पर विचार विमर्श करके ज्ञान प्राप्त करते है।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याꣳशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु।

यजुर्वेद. २६।२

इस मन्त्र में ईश्वर मनुष्यों को उपदेश दे रहा है कि (यथा इमां कल्याणीं वाचं) जिस प्रकार मैं इस कल्याणी वाणी को (ब्रह्म राजन्याभ्याम् च शूद्राय च अर्याय) ब्राह्मण, क्षत्री, शूद्र तथा वैश्य एवं (स्वाय च अरणाय च जनेभ्यः) अपनों तथा परायों, सभी के लिये अर्थात् अपने प्रिय लोगों के लिये और जो प्रिय नहीं हैं उनके लिये भी, (आवदानि) कहता हूँ, उपदेश करता हूँ, (उसी प्रकार तुम भी करो और यह प्रयास करो) कि मैं (इह) इस संसार में (देवानां दक्षिणायै दातुः प्रियः भूयासम्) देवताओं का, विद्वानों का तथा दक्षिणा अर्थात् सम्मान के साथ धन देने

वालों का प्रिय बनूँ। (अयं मे काम: समृध्यताम्) मेरी यह कामना समृद्ध हो, पूर्ण हो (अद: मा उपनमतु) तथा यह कामना पूर्ण होने का सुख मुझे प्राप्त हो।

उक्त मन्त्र के अनुसार हमें सभी लोगों को वेदवाणी का उपदेश करना चाहिये और यह प्रयास करना चाहिये कि इस संसार में हम उदारमना, दानशील श्रेष्ठ व्यक्तियों तथा देवों एवं विद्वानों की दक्षिणा अर्थात् उनके द्वारा किये जाने वाले सम्मान तथा सत्कार एवं उनके द्वारा दिये जाने वाले धन अथवा ज्ञान के दान के लिये उनके प्रिय बनें। हमें यह भी प्रयास करना चाहिये कि हमारी यह कामना अथवा उद्देश्य उत्तमता से समृद्धि को प्राप्त हो तथा हमें ऐसा करने से सुख एवं यश प्राप्त हो।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्।।

मनु.४।२३३

जल, अन्न, गौ, भूमि, तिल, सोना, घी आदि समस्त वस्तुओं के दानों से ब्रह्मदान अर्थात् वैदिक ज्ञान का दान श्रेष्ठ है।

वैदिक ज्ञान के प्रचार प्रसार के लिये त्यागी ब्राह्मणों को प्रेरित करने वाला कितना सुन्दर मन्त्र है यह! इस अत्यन्त महत्वपूर्ण मन्त्र में दो शिक्षायें दी गई हैं। मन्त्र के प्रथम भाग में भगवान् ने स्वयं यह स्पष्ट कर दिया है कि चारों वेदों की यह पवित्र कल्याणमयी वाणी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य सभी वर्गों के लिये समान रूप से है। इसका ज्ञान प्राप्त करने में, इसका अध्ययन करने में किसी के लिये किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। यदि कोई अल्पज्ञ, स्वार्थी अथवा अन्यायी व्यक्ति कोई प्रतिबन्ध लगाता है तो वह भगवान् के इस स्पष्ट निर्देश के सर्वथा प्रतिकूल होने के कारण मान्य नहीं हो सकता। मन्त्र के दूसरे भाग में विद्वानों को विशेषतया ब्राह्मणों को, जिन पर वैदिक ज्ञान के प्रचार प्रसार का गुरुतर दायित्व है, यह शिक्षा दी गई है कि वे सबको वेदवाणी का उपदेश दें और इस कार्य में उदारमना, दानी महापुरुषों तथा अन्य विद्वानों की सहायता एवं सहयोग प्राप्त करें। यही उनकी वास्तविक दक्षिणा है।

वैदिक ज्ञान का प्रचार प्रसार करके जगते का कल्याण करने वाले ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणों के जीवन की यही कामना होनी चाहिये और उन्हें भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिये कि उनकी यह कामना और भी बलवती हो तथा वह इसकी पूर्ति करके परम आनन्द का अनुभव प्राप्त कर सकें।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अनेक तथाकथित विद्वानों ने अपने पूर्वाग्रह के कारण जानबूझकर इस मन्त्र का भ्रामक एवं अशुद्ध अर्थ किया है ताकि यह न कहा जा सके कि वेद में शूद्रों तथा महिलाओं को वेद पढ़ने का अधिकार दिया गया है। अत: यह आवश्यक है कि ऐसे दुराग्रह पूर्ण अर्थों को अमान्य कर दिया जाय।

यह हास्यास्पद है कि ऐसे दुराग्रही लोगों को विदेशियों के वेद पढ़ने में आपत्ति नहीं है, किन्तु अपने भाई बहनों के वेद पढ़ने पर आपत्ति है।

तमिद् वोचेमा विदथेषु शंभुवं मन्त्रं देवा अनेहसम्।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद् वामा वो अश्नवत्।।

ऋग्. १।४०।६

(देवाः) हे विद्वानो! (विदथेषु) यज्ञों में तथा विद्या के पठन पाठन आदि कार्यों में (तं इत् शंभुवं अनेहसं मन्त्रं) इस कल्याणकारी, सुखदायी पवित्र मंत्र का ही (वोचेम) उच्चारण करो, (नरः) हे लोगो! (इमां वाचं प्रतिहर्यथ च) इस वेदवाणी का बार बार अध्ययन, मनन करने से, इस पर श्रद्धा करने से, (विश्वा इत् वामा वः अश्नवत्) तुम्हें सब प्रकार के सुख प्राप्त होंगे।

मधुमय जीवन

मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।।

ऋग्. १।९०।६, यजु.१३।२७

(मधुवाता ऋतायते) हमारे लिये वायु मधुर होकर बहे, वायु हमारे जीवन में माधुर्य लाये, (मधु क्षरन्ति सिन्धवः) नदियाँ हमारे लिये मधुर स्वास्थ्यकारी शुद्ध जल बहाकर लायें, हमारे जीवन को मधुर रस से परिपूर्ण कर दें। (माध्वीः नः सन्तु ओषधीः) ओषधियाँ हमारे लिये मधुर हों, पुष्टि कारक मधुर रस से परिपूर्ण हों।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता।।

ऋग्. १।९०।७, यजु.१३।२८

(मधु नक्तं उत उषसः) रात्रि एवं उषा हमारे लिये मधुमय हों, (मधुमत् पार्थिवं रजः) पृथिवी का कण कण हमारे लिये मधुर हो। (मधु द्यौः अस्तु नः पिता) पिता के समान पालन एवं रक्षा करने वाला द्युलोक हमारे लिये मधुमय हो, सुखमय हो।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः।।

ऋग्. १।९०।८, यजु.१३।२९

(मधुमान् नः वनस्पतिः) वनस्पतियाँ अर्थात् वृक्ष आदि हमारे लिये मधुमय हों, सुखकारी एवं मधुर रस से पूर्ण हों, (मधुमान् अस्तु सूर्यः) सूर्य हमारे लिये मधुमय हो, सूर्य का प्रकाश हमें सुख देने वाला हो। (माध्वीः गावः भवन्तु नः) सूर्य की किरणें तथा गौयें हमारे लिये मधुरिमा से पूर्ण हों, हमें स्वास्थ्यवर्धक दुग्ध देने वाली हों।

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलंकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायंसि।।

अथर्व.१।३४।२

(मे जिह्वाया अग्रे मधु) मेरी जिह्वा के अग्र भाग में मधुरता रहे, (जिह्वामूले) मेरी जिह्वा के मूल में मधुरता का बाहुल्य रहे। हे मधुरिमे! (मम क्रतौ) तुम मेरे कर्म में (इत् अह) निश्चय से (असः) रहो, जिससे मेरे कर्म मधुर हों, सबको सुख देने वाले हों (मम चित्तं) तथा तुम मेरे मन में,

मेरे चित्त एवं अन्तःकरण में (उप आयसि) आ जाओ, जिससे मेरे विचार, मेरी कामनायें मधुमय हों, सब के लिये सुखकारी हों। इस प्रकार मेरा मन, मेरी वाणी तथा मेरे कर्म सभी मधुर हों।

क्रतु कर्म नाम। (निघण्टु. २।१)

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः।।

अथर्व. १।३४।३

(मे निक्रमणं मधुमत्) मेरा निकट आना मधुर हो, (मे परायणम् मधुमत्) मेरा जाना मधुर हो, अथवा मेरा कार्य प्रारम्भ करना मधुर हो तथा पूर्ण करना मधुर हो। (वाचा वदामि मधुमत्) मैं मधुर वाणी बोलूँ (भूयासम् मधुसंदृशः) तथा मैं माधुर्य की मूर्ति बन जाऊँ।

मधुमतीरोषधीर्द्यावो आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान् नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम।।

ऋग्. ४।५७।३

(ओषधीः नः मधुमतीः) ओषधियाँ तथा वनस्पतियाँ हमारे लिये मधुरता से भरपूर हों, (द्यावः आपः अन्तरिक्षं) द्युलोक, जल तथा अन्तरिक्ष (नः मधुमत् भवतु) हमारे लिये मधुर हों। (क्षेत्रस्य पतिः नः मधुमान् अस्तु) क्षेत्र के स्वामी सभी देव हमारे लिये मधुरता से युक्त हों। (अरिष्यन्तः) किसी तरह से हिंसित अथवा दुःख को प्राप्त न होते हुये हम (एनं अनु चरेम) उनका अनुरसण करें।

अग्निहोत्र

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्यं दाता।
वसोर्वसोर्वसुदानं एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम॥

अथर्व. १९।५५।३

(गृहपतिः अग्निः सायं सायं प्रातः प्रातः) गृह का रक्षक अग्नि प्रत्येक सायंकाल तथा प्रत्येक प्रातः काल (सौमनस्य दाता) हमें सौमनस्य अर्थात् (सु) सुख एवं शान्ति पूर्ण मन का देने वाला हो। तात्पर्य यह है कि प्रतिदिन प्रातः काल एवं सायंकाल के समय अग्निहोत्र करने से हमारा मन स्वस्थ, प्रसन्न, पवित्र एवं शिव संकल्प वाला बने। (वसोः वसोः) हे अग्ने! आप हमें (वसुदानः एधि) अभीष्ट वस्तुओं को देने वाले होइये। (त्वा इन्धानाः) तुम्हें आहुतियों से प्रदीप्त करते हुये (वयं तन्वं पुषेम) हम अपने शरीर को पुष्ट करें।

प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्यं दाता।
वसोर्वसोर्वसुदानं एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम॥

अथर्व. १९।५५।४

(गृहपतिः अग्निः) गृह का रक्षक अग्नि (प्रातः प्रातः सायं सायं) प्रत्येक प्रातः काल तथा प्रत्येक सायंकाल (नः सौमनसस्य दाता) हमें मन

की पवित्रता, सरलता एवं उदारता देने वाला हो। (वसोः वसोः) हे अग्ने! (वसुदानः एधि) आप हमें समस्त प्रकार के धन प्रचुर मात्रा में देने वाले होइये। (त्वा इन्धानाः) तुम्हें समिधाओं एवं आहुतियों से प्रदीप्त करते हुये हम (शतं हिमाः ऋधेम) सौ हेमन्त ऋतुओं अर्थात् सौ वर्षों तक समृद्धि को प्राप्त होते रहें।

श्रद्धायै होतव्यं।-ऐतरेय. पंचम पंचिका ५. ३

श्रद्धा से ही हवन करना चाहिये।

ईजानम् सुकृतां लोके धत्त। (अथर्व. १८।४।१)

हे अग्नि! यज्ञ करने वालों को श्रेष्ठ कर्म करने वालों के लोक में ले जाओ।

ईजानाः स्वर्गं लोकम् यन्ति। (अथर्व. १८।४।२)

यज्ञ करने वाले स्वर्ग लोक को प्राप्त करते हैं।

नौर्ह वा एषा स्वर्ग्या यदग्निहोत्रम्। (शतपथ. २।३।३।१५)

यह जो अग्निहोत्र है, वह स्वर्ग को ले जानी वाली नौका है।

अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः। (मै. उप. ६।२६)

स्वर्ग की कामना वाला अग्निहोत्र करे।

सत्यं हास्य वदतः सत्ये हुतं भवति य एवं विद्वानुदिते जुहोति। तस्माद् उदिते होतव्यम्।

ऐतरेय. पंचम पंचिका ५.६

जो सूर्योदय के पश्चात् अग्नि होत्र करता है, वह सत्य बोलता है। इसलिये सूर्योदय के पश्चात् ही अग्नि होत्र करना चाहिये।

ऐतरेय ब्राह्मण में गाथा सं. ३१ दी गयी है, जिसमें कहा गया है कि जो सूर्योदय से पूर्व अग्नि होत्र करते हैं (प्रातः प्रातरनृतं ते वदन्ति) वे सुबह सुबह ही झूठ बोलते हैं क्योंकि तब सूर्य तो होता ही नहीं, फिर भी 'सूर्यो ज्योतिः' का पाठ करते हैं।

अग्नये हूयते यस्मिन् तद् अग्निहोत्रम् ।

जिस कर्म में अग्नि के लिये होम किया जाता है, आहुति दी जाती है, उसे अग्निहोत्र कहते हैं।

श्रौत कर्मों में सबसे सूक्ष्म अग्निहोत्र है, जिसे यावज्जीवन नित्य प्रति करने का विधान है।

यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति। शतपथ ब्राह्मण. १२।४।१।१

पुरुष को अपने जीवन काल में स्वस्थ रहते हुये नित्यप्रति अग्निहोत्र करना चाहिये।

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ।
सर्वथा वर्तते यज्ञं इतीयं वैदिकी श्रुतिः।।

मनु. २।१५

(उदिते) सूर्योदय के पश्चात् (अनुदिते) सूर्योदय के पूर्व किन्तु नक्षत्रों के रहते हुये, (समयाध्युषिते) नक्षत्रों के अस्त हो जाने के पश्चात् तथा सूर्योदय के पूर्व, इन तीन कालों में प्रातःकालीन अग्नि होत्र तथा सूर्यास्त के पश्चात् सायंकालीन अग्निहोत्र किया जाना वेदानुसार है।

नौर्हवा एषा स्वर्ग्या यदग्निहोत्रम् ।

शतपथ. १।३।३।१५

यह जो अग्निहोत्र है, वह संसार सागर से पार करवाकर स्वर्ग को ले जानी वाली नाव है।

इसीलिये निर्देष दिया गया है कि 'स्वर्ग कामी यजेत्।'
स्वर्ग की कामना करने वाला यज्ञ करे।

अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः।

मै. उप. ६।२६

स्वर्ग की कामना वाला अग्निहोत्र करे।

शथपथ ब्राह्मण. ११।३।१ में अग्निहोत्र के विषय में बताते हुये महर्षि याज्ञवल्क्य ने महाराज जनक से कहा कि दुग्ध की आहुति दी जानी चाहिये, यदि दुग्ध न हो तो व्रीहि (चावल) की आहुति दी जानी चाहिये, यदि वह भी न हो तो अन्य ओषधियों से आहुति दी जानी चाहिये, यदि ओषधियाँ न हों तो जंगल की ओषधियों से आहुति दी जानी चाहिये, यदि वह भी न हों तो वनस्पतियों अर्थात् वृक्षों के फलों से आहुति दी जानी चाहिये। जब महाराज जनक ने कहा कि यदि वह भी न हो, तब महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा कि सत्य का श्रद्धा में होम करे।

(तेज एव श्रद्धा सत्य आज्यम्) श्रद्धा तेज अथवा अग्नि है, सत्य घृत है।

श्रद्धा में सत्य की आहुति दिया जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सत्य के बिना श्रद्धा केवल निरर्थक अन्धभक्ति हो जाती है।

सूर्य

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे। वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति।।

ऋग्वेद, ५।८१।२ यजुर्वेद, १२।३

(कविः) मेधा शक्ति को बढ़ाने वाला सविता अर्थात् सूर्य (विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते) समस्त पदार्थों के वास्तविक स्वरूपों तथा संसार की वास्तविक स्थितियों को प्रकट करता है, दिखाता है (द्विपदे चतुष्पदे भद्रं प्रासावीत्) तथा मनुष्यों, पशुओं एवं अन्य सभी प्राणियों के लिये कल्याण को उत्पन्न करता है, उनके लिये मङ्गलकारी एवं सुखद वातावरण तथा परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है। (वरेण्यः सविता नाकं व्यख्यत्) वरण करने योग्य, श्रेष्ठ सूर्य स्वर्ग अथवा द्युलोक को प्रकाशित करता है (उषसः प्रयाणम् अनु विराजति) तथा उषा के प्रयाण के पश्चात् सुशोभित होता है।

निरुक्त के भाष्यकार श्री चन्द्रमणि विद्यालंकार ने इसका अर्थ लिखा है कि उषा के प्रारम्भ के साथ प्रकाशित होता है अर्थात् जैसे ही उषा का प्रादुर्भाव होता है, वैसे ही सविता उदित होता है और फिर धीरे धीरे जैसे जैसे उषा विदा होती जाती है, वैसे ही सविता का प्रकाश बढ़ता जाता है और फिर उषा के प्रयाण के पश्चात् पूर्ण रूप से प्रकाशित हो जाता है। उस पूर्ण रूप से उदय हुये आदित्य को सूर्य कहा जाता है।

निरुक्त १२।१२।७ में 'रूपाणि' का अर्थ 'प्रज्ञानानि' किया गया है।

(निरुक्त १। १४) के अनुसार 'नाक' शब्द का अर्थ है ऐसा लोक जहाँ दुःख न हो। क=सुख, अक=असुख अर्थात् दुःख (न+अक)=नाक। अत: नाक का अर्थ है वह लोक जहाँ अत्यन्त सुख प्राप्त हो।

सविता शब्द आदित्य की उस स्थिति का वाचक है, जो पूर्ण सूर्योदय से पूर्व की होती है। इस समय अन्तरिक्ष में तो प्रकाश रहता है किन्तु भूमि पर थोड़ा थोड़ा अंधेरा रहता है। यह काल पुरुष की मेधा शक्ति को बढ़ाने वाला होता है। इसीलिये सविता को कवि: कहा गया है। सूर्योदय से पूर्व का यह समय मनुष्यों के लिये हर प्रकार से कल्याणकारी एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है, इसीलिये सविता को भद्रता अथवा कल्याण उत्पन्न करने वाला कहा गया है।

सविता के उपर्युक्त काल की पुष्टि करते हुये यास्काचार्य जी ने लिखा है–अधोराम: सवित्र:। अधोराम पक्षी को सवित्र कहा जाता है क्योंकि सवितृ काल में ऊपर प्रकाश होता है और नीचे पृथ्वी पर अन्धकार होता है। इसी के समान अधोराम पक्षी भी ऊपर से श्वेत तथा टाँगो से काला होता है। इसी प्रकार (कृकवाकु: सवित्रः)। 'कृक-कृक' करके बोलने वाला कृकुवाकु पक्षी, जिसे कुक्कुट अथवा मुर्गा कहते हैं, भी सवित्र कहलाता है क्योंकि यह सविता के काल में बोलता है।

उ दुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यं।।

यजु. ७।४१,८।४१,(पाठभेद) ३३।३१ ऋग्. १।५०।१,
साम. पूर्वा. १।३।११,क्र.सं. ३१, अथर्व. १३।२।१६,२०।४७।१३

(जातवेदसं) समस्त उत्पन्न प्राणियों एवं पदार्थों को जानने वाले तथा हमें जीवन, प्रकाश, ऊर्जा, प्रेरणा एवं ज्ञान देने वाले (त्यं देवं) उस सूर्य देव को (केतवः उत् वहन्ति) किरणें ऊपर उठाती हुयी प्रतीत होती हैं, (दृशे विश्वाय सूर्यम्) जिससे कि समस्त विश्व सूर्य का दर्शन कर सके।

यह आलंकारिक तथा काव्यात्मक वर्णन है। सूर्योदय के समय सूर्य की किरणें पहले दिखायी देती हैं, उसके पश्चात् सूर्य ऊपर उठता दिखायी देता है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उसकी किरणें सूर्य को ऊपर उठा रही हों ताकि संसार सूर्य का दर्शन कर सके।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।।

साम पूर्वा.६।५।३ क्रमां० ६२९, ऋग्. १।११५।१,
यजु. ७।४२ (पाठभेद) १३।४६, अथर्व. १३।२।३५ तथा २०।१०७।१४

मन्त्र का आधिदैविक अर्थ निम्न प्रकार है–

(देवानां अनीकं) देवों का मुख स्थानीय अर्थात् देवों में प्रमुख (चित्रं) यह अद्भुत देव अर्थात् सूर्य (उत् अगात्) उदय हुआ है। (मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः) यह मित्र, वरुण तथा अग्नि अर्थात् समस्त देवताओं एवं मनुष्यों के चक्षु के समान है क्योंकि इसके प्रकाश में ही सब कुछ स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होता है।

अथवा, (चित्रं देवानां अनीकं उदगात्) यह दर्शनीय रश्मि युञ्ज सूर्य उदित हुआ है, (मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः) यह प्राण, अपान तथा यज्ञाग्नि का चक्षु है अर्थात् सूर्योदय होने पर मनुष्य की प्राण तथा अपान वायुयें भली प्रकार गति करती हैं और इसी समय यज्ञाग्नि प्रदीप्त की जाती है। अतएव ऐतरेय ब्राह्मण में विधान है कि सूर्योदय होने पर ही हवन किया जाना चाहिये, इसके पहले नहीं।

जो सूर्योदय के पश्चात् अग्नि होत्र करता है, वह सत्य बोलता है।

तस्माद् उदिते होतव्यम्। ऐतरेय. ब्रा. २५।३

इसलिये सूर्योदय के पश्चात् ही अग्नि होत्र करना चाहिये।

ऐतरेय. २५।४

(द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं आ प्राः) उदय होकर इसने द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी को अपने प्रकाश से परिपूर्ण कर दिया है, पूर्ण रूप से आलोकित कर दिया है। (सूर्यः आत्मा जगतः तस्थुषः च) सूर्य जङ्गम तथा स्थावर अर्थात् इस समस्त चराचर जगत् का आत्मा है।

आध्यात्मिक अर्थ–

(मित्रस्य वरुणस्य अग्ने: चक्षु:) मित्र, वरुण एवं अग्नि आदि महान् देवों का चक्षुरूप अर्थात् समस्त जगत् का दृष्टा, प्रकाशक, पथ प्रदर्शक एवं नियामक (चित्रं देवानां अनीकं उद् आगात्) अद्भुत, देवों का भी देव, कान्तिमान रश्मिपुञ्ज अर्थात् अलौकिक प्रकाशस्वरूप परमात्मा विश्व में व्याप्त हुआ है। (द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं आ अप्रा:) उसने द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी को अपनी आभा से सब ओर से आलोकित कर रखा है। (सूर्य: आत्मा जगत: तस्थुष: च) समस्त प्राणियों को जीवन एवं प्रेरणा देने वला परमात्मा जङ्गम एवं स्थावर सभी का आत्मा है, आधार है।

देवों मे अग्रणी यह सूर्य संसार में समस्त प्राणिमात्र को उसी प्रकार जीवनी शक्ति प्रदान करता है जिस प्रकार शरीर में प्राण। इसीलिये इसे समष्टि प्राण भी कहा जाता है। प्रश्नोपनिषद् में इसका वर्णन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया गया है किन्तु यह स्पष्ट है कि सूर्य केवल उस सीमा तक ही जगत् को प्रेरणा, स्फूर्ति एवं जीवन दे सकता है, जितनी शक्ति उसे भगवान् ने प्रदान की है।

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्त्ररश्मि: शतधा वर्तमान: प्राण: प्रजानामुदयत्येष सूर्य:।।

प्रश्नोपनिषद्,१।८

व्याधियों एवं दु:खों को हरने वाला, समस्त रूपों को प्रकाशित करने वाला, समस्त उत्पन्न पदार्थों में व्याप्त होने के कारण उन्हें जानने वाला, सबु का आश्रय, उर्जा, प्रकाश एवं ज्ञान देने वाला एकमात्र अद्वितीय तेज पुञ्ज, असंख्य किरणों से युक्त, सैकड़ों प्रकार से जीवन को धारण पोषण करने वाला, तेजस्वी ज्योतिस्वरूप समस्त प्रजाओं का प्राण यह सूर्य उदय होता है।

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।।

ऋग्. १।३५।२, यजु. ३३।४३, ३४।३१

सब का प्रेरक एवं प्रकाशक (सविता देवः) सूर्य देव (कृष्णेन रजसा आवर्तमानः) पुनः पुनः आवर्तन करते हुये, घूमते हुये पृथिवी आदि प्रकाश रहित लोकों को प्रकाशित करते हुये तथा (निवेशयन् अमृतं मर्त्यं च) अमर देवों एवं मरणशील प्राणियों को अपने अपने कार्यों में लगाते हुये (भुवनानि पश्यन्) तथा समस्त लोकों को देखते हुये, उन्हें ऊर्जा देते हुये (हिरण्ययेन रथेन आयाति) अपने स्वर्णिम रथ से आते हैं।

सूर्य का यह अत्यन्त आलंकारिक एवं सुन्दर वर्णन है।

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य।
शोचिष्केशं विचक्षण।।

अथर्व. १३।२।२३, २०।४७।२०,(पाठभेद)
ऋग्. १।५०।८ (पाठभेद), साम. पूर्वा. ६।४।१४, क्र.सं. ६४०

(विचक्षण देव सूर्य) हे सर्वदृष्टा सूर्य देव! (शोचिष्केशं त्वा रथे) आपके रथ को पवित्र ज्वाला वाले बालों से युक्त, (सप्त हरितः) सब को प्रकाशित करने वाले सात अश्व (वहन्ति) वहन करते हैं। सूर्य की सात रंगों वाली, सब को पवित्र एवं प्रकाशित करने वाली किरणों को ही यहाँ आलंकारिक रूप से अश्व कहा गया है।

यह निम्नाङ्कित सात रंग इन्द्र धनुष में स्पष्ट रूप से दिखायी देते हैं। VIBGYOR= Violet, Indigo, Blue, Green, Yellow, Orange, Red

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः।।

साम. पूर्वा. ६।५।१३, क्र.सं. ६३९
अथर्व. १३।२।२४,२०।४७।२१ ऋग्. १।५०।९,

(सूरः सर्वस्य प्रेरकः) सब को प्रेरणा देने वाले सूर्य ने (सप्त शुन्ध्युवः) पवित्र करने वाली तथा (नप्त्यः) रथ को न गिराने वाली सात रंग की अपनी किरणों रूपी अश्वों को अपने रथ में (अयुक्त) जोड़ा हुआ है। (ताभिः याति स्वयुक्तिभिः) अपने आप रथ में जुड़ जाने वाले उन किरण रूपी अश्वों की सहायता से वह सर्वत्र जाता है, अपना प्रकाश फैलाता है।

किरण रूपी अश्व सूर्य के रथ में अपने आप जुड़ जाते हैं, उन्हें अलग से जोड़ना नहीं पड़ता अन्यथा अश्वों की प्रतीक्षा में रथ के चलने में विलम्ब भी हो सकता है। कैसी सुन्दर उपमा है, कैसा सुन्दर अलंकार है।

बण्महाँ२ असि सूर्य बडादित्य महाँ२ असि।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ२ असि।।

साम. पूर्वा. ३।४।४ क्रं.सं. २७६, साम. उत्त. ९।३।८क्र. सं. १७८८
अथर्व. १३।२।२९,२०।५८।३ यजु. ३३।३९ ऋग्. ८।१०१।८

(सूर्य) हे सूर्य ! (बट्) सत्य है कि (महान् असि) तुम निश्चय ही महान् हो, (बड् आदित्य महाँ असि) हे आदित्य! तुम निश्चय ही महान् हो,

(महः सतः ते महिमा पनस्यते) महान होने के कारण तुम्हारी महिमा का गान किया जाता है, तुम्हारी स्तुति की जाती है। (अद्धा) अतः (देव महाँ असि) हे सूर्य देव! तुम महान हो।

सूर्य की किरणों से रोग नाश तथा पवित्रता

सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः॥

अथर्व. ९।८।२२

(ते शीर्ष्णः कपालानि सं) तेरे शिर के कपालों के साथ (शीर्ष्णः रोगं) सिर के रोग को (हृदयस्य च यः विधुः) तथा हृदय की जो व्याधि है, (उद्यन् आदित्यः रश्मिभिः) उसे उदय होता हुआ सूर्य अपनी किरणों से (अनीनशः) नाश कर देता है और (अंगभेदं अशीशसः) अंगों की पीड़ा आदि को शान्त कर देता है।

सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि।।

यजु. १।३१

(सवितुः प्रसवे) सविता देव की इस सृष्टि में (त्वा) तुम सबको (अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः उत्पुनामि) छिद्र रहित अर्थात् पूर्ण रूप से निरन्तर पवित्र करने वाली सूर्य की किरणों से उत्कृष्टता से पवित्र करता हूँ। (सवितुर्वः प्रसव अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः उत्पुनामि) सविता देव की इस सृष्टि में छिद्र रहित अर्थात् पूर्ण रूप से निरन्तर पवित्र करने वाली सूर्य की किरणों से भली भाँति पवित्र करता हूँ। (तेजः असि) तुम तेजस्वी हो, (शुक्रं असि) पवित्र हो, वीर्यवान् हो, (अमृतं असि) अमृत स्वरूप हो, (धाम नाम असि) तुम ही दवताओं का पवित्र धाम तथा यज्ञ हो, (देवानां प्रियं अनाधृष्टं देव यजनं) तुम देवों के प्रिय, किसी से अभिभूत न होने वाले, यजन अर्थात् देव पूजन के साधन हो। तुम्हारा शरीर देवों का मन्दिर है।

सूर्योदय से पहले उठने का लाभ

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः।।

ऋग्. १।१२५।१

सूर्य (प्रातः प्रातः इत्वा) सबेरे सबेरे आकर लोगों को (रत्नं दधाति) रत्न देता है। (तं चिकित्वान्) बुद्धिमान् सुन्दर वीर पुरुष उसके महत्व को जानकर (प्रतिगृह्य नि धत्ते) उस धन को गृहण करके अपने पास सुरक्षित रख लेता है और (तेन आयुः प्रजां वर्धयमानः) उससे अपनी आयु तथा सन्तानों की वृद्धि करते हुये (रायः पोषेण सचते) धन और पुष्टि से अर्थात् ऐश्वर्य एवं स्वास्थ्य प्राप्त करता है।

उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः।।

ऋग्. १।१२५।४

(ईजानं च यक्ष्यमाणं च) इस समय यज्ञ करने वालों तथा जो भविष्य में यज्ञ करने वाले हैं, उनके लिये (मयोभुवः सिन्धवः क्षरन्ति) सुख देने वाली नदियाँ बहती हैं। (पृणन्तं पपुरिं च) सब को सुखी करने वाले तथा धन से तृप्त एवं सन्तुष्ट करने वाले को (श्रवस्यवः धेनवः) अन्न की इच्छा करती हुयी गायें (घृतस्य धारा उपयन्ति) सब ओर से घृत की धारायें उपलब्ध कराती हैं, दुग्ध, घृत आदि से सम्पन्न करती हैं।

दक्षिणा

नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति,
श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धव-,
स्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा।।

ऋग्. १।१२५।५

(श्रितः यः प्रणाति) जो अपने आश्रितों को धन धान्य से पूर्ण करता है, (नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति) वह स्वर्ग में जाकर वहाँ सुखी होकर रहता है, निवास करता है। (सह देवेषु गच्छति) वह देवों के साथ विराजमान होता है, देवत्व प्राप्त करता है। (सिन्धवः आपः तस्मै घृतं अर्षन्ति) नदियाँ तथा अन्य जल प्रवाह उसके लिये जल को प्रावहित करते हैं, (तस्मै इयं दक्षिणा सदा पिन्वते) तेज को बढ़ाने वाली यह दक्षिणा उसे सदा प्रसन्न तथा सुखी रखती है।

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तःप्र तिरन्त आयुः।।

ऋग्. १।१२५।६

(इमानि चित्रा) ये सुन्दर समृद्धियाँ (दक्षिणावतां) दक्षिणा देने वालों के लिये हैं, (दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः) दक्षिणा देने वालों के लिये यह सूर्य द्युलोक में प्रकाशित होता है, (दक्षिणावन्तः अमृतं भजन्ते) दक्षिणा देने वाले मोक्ष को प्राप्त करते हैं, (दक्षिणावन्तः आयुः प्र तिरन्त) दक्षिणा देने वाले अपनी आयु सुख पूर्वक व्यतीत करते हैं।

दैवी पूर्तिदक्षिणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणन्ति।
अथा नरः प्रयतदक्षिणासो ऽवद्यभिया बहवः पृणन्ति।।

ऋग्. १०।१०७।३

(देवयज्या दक्षिणा दैवी पूर्तिः) देवों के निमित्त किये गये यज्ञ में, विद्वानों को आदर सत्कार से दी जाने वाली दक्षिणा, पवित्र यज्ञ कर्म की पूर्ति करने वाली होती है। (न कव अरिभ्यः) यह दक्षिणा यज्ञ कर्म न करने वालों को प्राप्त नहीं होती क्योंकि (ते नहि पृणन्ति) वे देवों को प्रसन्न नहीं करते, (अथ बहवः प्रयत दक्षिणासः नरः अवद्यभिया पृणन्ति) और जो बहुत से लोग पवित्र दक्षिणा देने वाले तथा निन्दा एवं पाप से डरने वाले होते हैं, वे देवों को प्रसन्न करते हैं।

न भोजा मंह्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत् सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति।।

ऋग्. १०।१०७।८

(भोजाः न ममृः नि अर्थं न ईयुः) धन आदि का दान करने वाले उदार लोग कभी अकाल मृत्यु, निकृष्ट गति तथा दरिद्रता को प्राप्त नहीं होते। (न रिष्यन्ति भोजाः न व्यथन्ते) दान देने वालों का यश अमर होता है, वे हिंसा, कष्टों और दुःखों को प्राप्त नहीं होते, (इदं यत् विश्वं भुवनं स्वः च एतत् सर्वं दक्षिणा एभ्यः ददाति) यह जो समस्त जगत् का तथा स्वर्ग का सुख है, वह सुख उनको दक्षिणा प्राप्त कराती है।

दान

न वा उं देवाः क्षुधमिद्वधं,
ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्य-,
त्युतापृणन् मर्डितारं न विन्दते।।

ऋग्. १०।११७।१

(आशितः मृत्यवः उप गच्छन्ति) यद्यपि अन्न खाने वाले पुरुष की भी मृत्यु होती है किन्तु (देवाः क्षुधं न ददुः वधं इत्) देवों ने सब प्राणियों को

जो क्षुधा अर्थात् भूख दी है, वह क्षुधा नहीं अपितु मृत्यु ही है क्योंकि क्षुधा समाप्त न होने से अन्न के बिना प्राणी की निश्चय ही मृत्यु हो जाती है। (उतो पृणतः रयिः न उप दस्यति) दान देने वाले व्यक्ति का धन कभी नष्ट नहीं होता (उत अप्रणन् मर्डितारं न विन्दते) और दान न देने वाले को सुख देने वाला कोई नहीं मिलता, उसे किसी से भी सुख प्राप्त नहीं होता।

य आ॒ध्राय॑ चकमा॒नाय॑ पि॒त्वोऽन्न॑वान्त्सन् र॑फि॒तायोपज॒ग्मुषे॑।
स्थि॒रं मन॑ः कृणुते से॒वते॒ पुरोतो चि॒त् स मर्डि॒तार॒ं न वि॑न्दते॥

ऋग्. १०।११७।२

(यः अन्नवान् सन् आध्राय पित्वः चकमानाय) जो अन्नवान होता हुआ भी दुर्बल, को अन्न मांगने वाले बुभुक्षित याचक को, (रफिताय उपजग्मुषे मनः स्थिरं कृणुते) दरिद्र मनुष्य को तथा घर पर याचनार्थ आये व्यक्ति को देखकर हृदय को निष्ठुर कर लेता है, दान देने की इच्छा नहीं करता और (पुरा सेवते) उसके सामने ही स्वयं भोजन करता है, (सः मर्डितारं न विन्दते) उसे कोई सुख देने वाला प्राप्त नहीं होता, वह कभी सुखी नहीं हो सकता।

स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नंकामाय चरंते कृशायं।
अरंमस्मै भवति यामंहूता उतापरीषुं कृणुते सख्यांयम्।।

ऋग्. १०।११७।३

(सः इत् भोजः यः गृहवे अन्नकामाय चरते कृशाय ददाति) वही सच्चा दाता है, जो क्षुधा से व्याकुल, अन्न की इच्छा से भिक्षा मांगने वाले कृशकाय निर्बल व्यक्ति को अन्न देता है, (यामहूतौ अस्मै अरं भवति) उसे यज्ञ का पूर्ण फल प्राप्त होता है और (उत अपरीषु सख्यायं कृणुते) वह शत्रुओं में भी अपना मित्र बना लेता है।

न स सखा यो न ददांति सख्यें सचाभुव सचंमानाय पित्वः।
अपांस्मात् प्रेयान्न तदोकों अस्ति पृणन्तंमन्यमरंणं चिदिच्छेत्।।

ऋग्. १०।११७।४

(न सः सखा यः सचाभुवे सचमानाय सख्ये पित्वः न ददाति) वह

मित्र नहीं है जो साथ रहने वाले और सेवा करने वाले मित्र को अन्न नहीं देता। (अस्मात् अप प्रेयात्) ऐसे व्यक्ति को छोड़कर चला जाना ही उचित है, (तत् ओकः न अस्ति) उसका घर रहने योग्य नहीं होता। (पृणन्तं अन्यं अरणं चित् इच्छेत्) जो दूसरे को अन्न से तृप्त करता है, उसी धनवान् व्यक्ति को लोग चाहने लगते हैं।

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम्।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा ऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः॥

ऋग्. १०।११७।५

(तव्यान् नाधमानाय पृणीयादित्) सम्पन्न मनुष्य अवश्य ही याचना करने वाले को धन देकर प्रसन्न करे। (द्राघीयांसं पन्थां अनु पश्येत्) वह बहुत दूर तक का, स्वर्ग तक जाने का मार्ग देखे अर्थात् उसे पुण्य के फल स्वरूप स्वास्थ्य एवं उत्तम लोक प्राप्त होता है। (रथ्या चक्रा इव ओ हि रायः वर्तन्ते) ये धन सम्पत्ति आदि निरन्तर नीचे ऊपर घूमने वाले रथ के पहियों के समान घूमते रहते हैं और (अन्यं अन्यं अपतिष्ठन्त) एक दूसरे के पास आते जाते रहते हैं, किसी के पास स्थित होकर नहीं रहते।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह॥

अथर्ववेद. ३।२४।५

सौ हाथों से धन का संग्रह करो, हज़ार हाथों से दान करो। अपने कार्यक्षेत्र तथा कर्तव्य क्षेत्र का विस्तार करो।

यानीन्मान्युत्तमानीह वेदोक्तानि प्रशंससि।
तेषां श्रेष्ठतमं दानमिति मे नात्र संशयः॥

महाभारत, अध्याय, १२०।१७

महर्षि व्यास मैत्रेय से कहते हैं कि तुम जिन जिन वेदोक्त उत्तम कर्मों की यहाँ प्रशंसा कर रहे हो, उन सब में दान ही श्रेष्ठतम है, इस विषय में मुझे संशय नहीं है।

अन्न का दान

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी।।

ऋग्. १०।११७।६

(अप्रचेताः मोघं अन्नं विन्दते) दान न देने वाला मनुष्य व्यर्थ ही अन्न को प्राप्त करता है। (सत्यं ब्रवीमि) मैं सत्य कहता हूँ कि (तस्य सः वधः इत्) वह दान न दिया हुआ अन्न न देने वाले के लिये घातक होता है, मृत्यु के समान होता है। (अर्यमणं न पुष्यति नो सखायं) जो न तो देवों को हवि अर्पण करता है और न आश्रित को अर्थात् पालन पोषण करने योग्य मित्र को अन्न देता है और जो दूसरे को अन्न न देकर केवल स्वयं ही खाता है, (केवलादी केवलाघः भवति) ऐसा अकेले खाने वाला व्यक्ति केवल पाप का ही भागी होता है, पाप को ही खाने वाला होता है।

अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते।।

मनु. ३।११८

जो पुरुष अपने आश्रितों तथा भूखे व्यक्तियों को भोजन न देकर स्वयं अकेला ही भोजन करता है, वह अन्न को नहीं बल्कि केवल पाप को ही खाता है। यज्ञ से बचा हुआ अन्न ही सत्पुरुषों का भोजन कहा गया है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।। गीता. ३।१३

यज्ञ से शेष बचे हुये अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं, जो पापी लोग केवल अपने लिये ही भोजन पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।

(पृणन् अपिः अपृणन्तं अभि स्यात्) दाता मनुष्य अदाता से श्रेष्ठ होता है।

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम।
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि।।

साम. ६।३।१०।९, क्र.सं. ५९४

(अहं प्रथमजा ऋतस्य अस्मि) मैं सर्वप्रथम सत्य को उत्पन्न करने वाला, सत्य का प्रथम प्रवर्तक हूँ, (पूर्वं देवेभ्यः अमृतस्य नाम) समस्त देवों से पूर्व प्रकट होने वाला तथा अमृत नाम वाला हूँ, अमृत का केन्द्र हूँ। (अहं अन्नं) मैं अन्न हूँ, (यः मां ददाति) जो अन्न स्वरूप मुझे दूसरे भूखे प्राणी को देता है, (सः इत् एवं आवत) वह इस प्रकार देने से उसकी रक्षा करता है, (अन्नं अदन्तं अद्मि) किन्तु जो दूसरे को न देकर, स्वयं अकेले ही अन्न को खाता है, उसे मैं खा जाता हूँ, नष्ट कर देता हूँ।

वास्तव में भूखे प्राणी के लिये अन्न ही परमात्मा का स्वरूप है। अन्न एवं अन्न के दान के सम्बन्ध में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण मन्त्र है।

तैत्तिरीय उपनिषद् की समाप्ति 'अहम् अन्नम् अहम् अन्नम्' मन्त्र से ही हुयी है।

अन्न के महत्व को बताते हुये तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है-

अन्नं न निन्द्यात्। तद्व्रतम्। -तैत्ति. उप. ३।७

अन्न की निन्दा न करे, यह व्रत है।

निष्पाप जीवन

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।
मान्तः स्थुर्नो अरातयः।।

अथर्व. १३।१।५९, ऋग्. १०।५७।१

(इन्द्र) हे इन्द्र! हे परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर! (वयं पथः मा प्रगाम) हम श्रेष्ठ जीवन पथ से कभी न हटें, सन्मार्ग से विचलित न हों, (मा सोमिनः यज्ञात्) और न सोम सम्पन्न यज्ञ से दूर हों, (नः अन्तः अरातयः मा स्थुः) हमारे बीच में, हमारे समाज में हमारे शत्रु तथा दान विरोधी लालची दुष्ट लोग न रहें तथा हमारे अन्तःकरण में दान विरोधी और लोभ लालच आदि की निकृष्ट भावनायें उत्पन्न न हों।

स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये।
अप नः शोशुचदघम्।।

अथर्व.४।३३।८

(सः नः) वह आप (स्वस्तये अति पर्ष) हमारे कल्याण के लिये, हमें दुःखों, कष्टों तथा संकटों से उसी प्रकार पार कर दीजिये (नावा सिन्धुम् इव) जिस प्रकार नौका से समुद्र को पार किया जाता है। (नः अघम् अप शोशुचत्) आपकी कृपा से हमारे समस्त पाप नष्ट हो जायँ।

अपि॒ पन्था॑मगन्महि स्वस्ति॒गामने॒हस॑म्।
येन॒ विश्वाः॑ परि॒ द्विषो॑ वृ॒णक्ति॑ वि॒न्दते॒ वसु॑।।

ऋग्. ६।५१।१६

(स्वस्तिगां अनेहसं पन्थां अपि अगन्म) हम पापरहित कल्याणकारी मार्ग से जायें, (येन विश्वाः द्विषः परिवृणक्ति) जिससे समस्त शत्रु दूर होते हैं और (वसु विन्दते) धन प्राप्त होता है।

मुमु॒क्तम॒स्मान् दु॑रि॒तादव॒द्याज्जु॒षेथां॑ य॒ज्ञम॒मृत॑म॒स्मासु॑ धत्तम्।।

अथर्व. ५।६।८

हे प्रभो! (दुरितात् अवद्यात् अस्मान् मुमुक्तम्) हमें निन्दनीय पाप से छुड़ाइये, (यज्ञम् जुषेथाम्) हम यज्ञ का सेवन करें, हमारा जीवन यज्ञमय हो। (अस्मासु अमृतम् धत्तम्) हमारे अन्दर अमृत धारण कराइये, हम श्रेष्ठ कर्म करके अमरत्व प्राप्त करें।

यद् ग्रा॒मे यद॑र॒ण्ये यत्स॒भाया॒ यदि॑न्द्रि॒ये।
यच्छू॒द्रे यद॒र्ये यदे॑न॒श्चकृ॒मा व॒यं यदे॒कस्याधि॒ धर्म॑णि
तस्या॑व॒यज॑नमसि।।

यजु. २०।१७

(यत् ग्रामे, यत् अरण्ये, यत् सभायां, यत् इन्द्रिये) हे प्रभो! हमने जो पाप ग्राम में, जो वन में, जो सभा में, जो इन्द्रियों के विभिन्न कार्यों में तथा (यत् शूद्रे, यत् अर्ये, यत् एनः वयं चकृम्) जो शूद्रों के प्रति, जो वैश्यों के प्रति पाप किये हों और (यत् एकस्य अधिधर्मणि) जो पाप किसी अन्य

एक मनुष्य के सम्बन्ध में किये हों, (तस्य अवयजनं असि) आप उन सब पापों से हमें मुक्त करने वाले हैं।

सप्त मर्यादायें

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यंहुरो गात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ।।

अथर्व. ५।१।६

(कवयः सप्त मर्यादाः ततक्षुः) तत्वदर्शी ज्ञानियों ने सात मर्यादायें निश्चित की हैं, (तासां एकां इत् अभि) उनमें से यदि एक का भी उल्लंघन किया तो (अंहुरः गात्) मनुष्य पाप का भागी हो जाता है, पापी बन जाता है। जो सदाचारी श्रेष्ठ पुरुष इन मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करता अर्थात् जो ये सात दुष्कर्म नहीं करता, वह (आयोः स्कम्भः ह) आयु के, जीवन के आधार स्तम्भ के समान (उपमस्य नीडे) उपमा देने योग्य अथवा प्राप्त किये जाने योग्य परमात्मा के, (धरुणेषु तस्थौ) पुण्य कर्म करने वालों को धारण करने वाले, उस लोक को प्राप्त होता है, (पथां वि सर्गे) जहाँ पहुँचकर सभी मार्ग समाप्त हो जाते हैं अर्थात् जो सभी मार्गों के पहुँचने का अन्तिम गन्तव्य स्थान है।

उपरोक्त सात मर्यादायें अर्थात् सात दुष्कर्म जिन्हें नहीं करना चाहिये, निम्नाङ्कित हैं-

स्तेयम्, तल्पारोहणम्, ब्रह्महत्याम्, भ्रूणहत्याम्, सुरापानं, दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवाम्, पातकेऽनृतोद्यम्।

निरुक्त. ६।५।२७।१११

१. स्तेयम्- चोरी करना
२. तल्पारोहणम्- परस्त्री गमन करना
३. ब्रह्महत्या- वेदज्ञ ब्राह्मणों की हत्या
४. भ्रूण हत्या- गर्भस्थ बच्चे की हत्या अर्थात् गर्भपात
५. सुरापान- सुरा तथा अन्य मादक पदार्थों का सेवन
६. किसी बुरे कर्म को बार बार जान बूझकर करना
७ किये गये पाप कर्म को असत्य बोलकर छिपाना

अपवित्र लक्ष्मी को दूर हटाना

या मा॑ ल॒क्ष्मीः प॑तया॒लूर॑जु॒ष्टाऽभि च॒स्कन्द॒ वन्द॑नेव वृ॒क्षम्।
अ॒न्यत्रा॒स्मत्सं॑वि॒तस्मामि॒तो धा॒ हिर॑ण्यहस्तो॒ वसु॑ नो ररा॑णः॥

अथर्व. ७।२०।२

(सवितः) हे सविता देव! (पतयालुः) पतन की ओर ले जाने वाली, (अजुष्टा) सेवन करने अर्थात् श्रेष्ठ प्रकार से उपभोग करने के अयोग्य (या लक्ष्मीः) जो लक्ष्मी (मा अभिचस्कन्द) मेरे पास इस प्रकार आ गयी है, जैसे (वन्दना वृक्षं इव) लता वृक्ष के ऊपर लिपट जाती है, (तां इतः अन्यत्र अस्मत् धाः) उसे हमसे दूर कहीं और स्थापित कर दीजिये, हमारे पास से हटा दीजिये। (हिरण्यहस्तः) हे स्वर्णिम हाथों वाले प्रभो! (नः वसु रराणः) हमें श्रेष्ठ धन प्रदान कीजिये।

ऋण रहित होना

इहैव सन्तः प्रति दद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत्।
अपमित्यं धान्यं१ यज्जघसाहमिदं तदग्ने अनृणो भवामि।।

अथर्व. ६।११७।२

(इह इव सन्तः एनत् प्रति दद्म) यहाँ रहते हुये ही इस ऋण को चुका देते हैं, (जीवाः जीवेभ्यः एनत् नि हरामः) इस जीवन में अन्य जीवों के इस ऋण को हम निःशेष करते हैं, पूर्ण रूप से चुका देते हैं। (यत् धान्यं अपमित्य अहं जघस) जो धान्य अर्थात् अनाज आदि हमने उधार लेकर खाया है, (अग्ने) हे अग्ने! (इदं तत् अनृणः भवामि) मैं इस प्रकार उससे ऋण रहित होता हूँ।

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम।।

अथर्व. ६।११७।३

(अस्मिन् लोके अनृणाः) इस लोक में हम अनृण, ऋण रहित हों, (परस्मिन् अनृणाः) परलोक में ऋण रहित हों (तृतीये लोके अनृणाः स्याम) तथा तृतीय लोक में भी हम ऋण रहित हों। (ये देवयानाः पितृयाणाः च लोकाः) जो देवयान तथा पितृयान लोक हैं, (सर्वान् पथः अनृणाः आक्षियेम) उन सबके मार्ग में हम ऋण मुक्त होकर चलें।

मनुष्य को सब प्रकार के ऋणों से सर्वथा मुक्त रहना चाहिये। ऋणी रहकर मरना उचित नहीं है।

पराक्रम तेज एवं विजय

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददेऽध्वरकृतं देवेभ्य इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः।।

यजु. १।२४

सविता देव की इस सृष्टि में अश्वनि देवों की बाहुओं अर्थात् दूसरों की सहायता करने वाली, उन्हें निरोग तथा दुःखों से मुक्त करने वाली भुजाओं और पूषा के हाथों अर्थात् दूसरों का पालन पोषण करने वाले, परोपकार करने वाले हाथों वाले तुम्हें देवों के लिये, विद्वानों के लिये (अध्वर कृतं) हिंसा रहित कर्मों के लिये तथा कुटिलता रहित श्रेष्ठ कर्मों के लिये अर्थात् उनकी सब प्रकार से भलायी के लिये, उनके परोपकार के लिये (आददे) तुम्हें धारण करता हूँ, नियुक्त करता हूँ।

(इन्द्रस्य दक्षिणः बाहुः असि) तुम इन्द्र की दाहिनी भुजा हो, (सहस्र भृष्टिः) हज़ारों शत्रुओं का नाश करने वाले, (शततेजा) सैकड़ों प्रकार के तेजों से युक्त, (वायुरसि) वायु के समान तीव्र गति एवं बल से युक्त, (तिग्मतेजा) अत्यन्त तीक्ष्ण तेज, जिसके सामने शत्रु टिक न सके, से परिपूर्ण हो।

हमें देवों, विद्वानों तथा श्रेष्ठ जनों की सब प्रकार से सहायता करने वाले एवं सहस्रों शत्रुओं का नाश करने वाले बनना चाहिये। कर्म करते समय हमें यह विश्वास रखना चाहिये कि हम इन्द्र की दाहिनी भुजा हैं और तदनुसार श्रेष्ठता तथा वीरतापूर्ण कर्म के लिये ही परमात्मा ने हमें जन्म दिया है।

हमें कभी अपने को निर्बल तथा असहाय समझकर उद्देश्य एवं लक्ष्य विहीन जीवन व्यतीत नहीं करना चाहिये प्रत्युत सज्जनों की रक्षा तथा दुष्टों का नाश करने के लिये सतत् संघर्ष करना चाहिये।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित्।।

अथर्व. ७।५०।८

(कृतं मे दक्षिणे हस्ते) मेरे दाहिने हाथ में कर्म हो, प्रयास हो, पुरुषार्थ हो (जयः मे सव्य आहितः) तथा मेरे बायें हाथ में जय हो, विजय हो। (गोजित् अश्वजित् हिरण्यजित् धनंजयः भूयासम्) मैं गौवों, अश्वों, सुवर्ण एवं विविध प्रकार के धनों का विजेता बनूँ।

मनुष्य को सदा श्रेष्ठ कर्म करके विजयश्री, लक्ष्मी एवं ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहिये।

स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि।
सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते।।

यजु. २।२६

हे परमेश्वर! (स्वयम्भूः श्रेष्ठः रश्मिः असि) आप स्वयम्भू श्रेष्ठ तथा प्रकाशमान हैं, (वर्चोदा असि) आप तेज, ज्ञान एवं प्रकाश देने वाले हैं, (मे वर्चः देहि) मुझे तेज, ज्ञान तथा प्रकाश दीजिये, (सूर्यस्य आवृतं अन्वावर्ते) मैं चराचर जगत् के आत्मारूप सूर्य के नियमों को स्वीकार करता हूँ, उनका पालन करता हूँ।

सूर्य के नियमों का पालन करने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सूर्य जगत का कल्याण करने, प्राणिमात्र को जीवन देने तथा सभी ग्रहों को अपनी ओर आकर्षित कर उन्हें यथा स्थान रखने के अपने शाश्वत धर्म का पालन करता है, उसी प्रकार मैं भी जगत का कल्याण करने और यथा शक्ति सब को ज्ञान, सुख, प्रसन्नता एवं प्रेम देने का व्रत लेता हूँ।

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। समावर्ति पृथिवी समुषाः समुसूर्यः। समु विश्वमिदं जगत्। वैश्वानर ज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः स्वाहा।

यजु. २०।२३,३८।२५

हे प्रभो! आप (एधः असि) वृद्धि करने वाले हैं, (एधिषी महि) आपकी कृपा से हम वृद्धि को प्राप्त हों, (समित् असि) आप सम्यक् प्रदीप्त समिधाओं के समान हैं, (तेजः असि) आप तेज स्वरूप हैं (तेजः मयि धेहि) मुझमें तेज स्थापित कीजिये। (सम् आववर्ति पृथिवी) हे प्रभो! आपकी

शक्ति से पृथिवी सूर्य के चारों ओर तथा स्वयं अपनी धुरी पर निरन्तर चक्कर लगाती रहती है, (सम् उषाः) उषा निरन्तर आती जाती रहती है, (सूर्यः सम् आववर्ति) सूर्य नित्य उदय एवं अस्त होता है (सम् उ इदं विश्वम् जगत्) तथा यह समस्त जगत् गतिमान् रहता है, क्षण क्षण परिवर्तित होता रहता है और जीवन-मृत्यु तथा सृष्टि-प्रलय के चक्र में निरन्तर घूमता रहता है। (वैश्वानर ज्योतिः भूयासम्) आपकी कृपा से मैं समस्त समाज एवं प्राणिमात्र का हित करने वाली, उनका नेतृत्व एवं मार्ग दर्शन करने वाली प्रखर ज्योति के समान हो जाऊँ (विभून् कामान् व्यश्नवै) तथा व्यापक अर्थात् अनेक एवं महान् कामनाओं को प्राप्त करूँ (यहाँ संकुचित एवं क्षुद्र कामनाओं के लिये प्रार्थना नहीं की गयी है)। (भूः स्वाहा) भूः भुवनं सत्ता मात्रं ब्रह्म तस्मै स्वाहा सुहुतमस्तु। समस्त भुवन अथवा समस्त ब्रह्माण्ड की एक मात्र सत्ता रूप ब्रह्म के लिये यह आहुति मधुर वचनों के साथ समर्पित है, यह भली प्रकार आहुत हो।

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥

यजु. १८।४८

हमारे ब्राह्मणों में तेज तथा कान्ति की स्थापना कीजिये, हमारे क्षत्रियों में तेज तथा कान्ति स्थापित कीजिये, हमारे वैश्यों तथा शूद्रों में तेजस्विता स्थापित कीजिये तथा मुझमें प्रखर तेज से युक्त तेजस्विता स्थापित कीजिये।

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम्॥

अथर्व. १६।३।१

(अहं रयीणाम् मूर्धा) हे प्रभो! मैं समस्त प्रकार के धनों का स्वामी तथा (मूर्धा समानानाम् भूयासम्) अपने समान अर्थात् अपने समकक्ष पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ बनूँ।

मनुष्य को सदैव यह प्रार्थना एवं प्रयास करना चाहिये कि वह अधिक से अधिक ऐश्वर्य का स्वामी बने और अपने समकक्ष पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ बने।

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि।
स यथा त्वं भ्राजंता भ्राजोस्येवाहं भ्राजंता भ्राज्यासम्।।

अथर्व. १७।१।२०

हे प्रभो! (शुक्रः असि भ्राजः असि) आप वीर्यवान्, प्रकाशवान्, शुद्ध तथा तेजस्वी हैं। (स यथा त्वं भ्राजता भ्राजः असि) जैसे आप परम तेज से देदीप्यमान हैं, (एव अहम्) उसी प्रकार मैं (भ्राजता भ्राज्यासम्) तेज से तेजस्वी बनूँ, प्रकाशवान् बनूँ, मेरा जीवन ज्योतिर्मय हो।

वरुण के दूत

इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा। यजु 8। 37

इन्द्र संसार के सम्राट हैं और वरुण देव उनके अधीन कार्य करने वाले राजा हैं। वरुण के दूत हमारे सग कर्मों पर तीव्र दृष्टि रखते हैं। उनसे छिपाकर कोई कार्य नहीं किया जा सकता।

यस्तिष्ठंति चरंति यश्च वञ्चंति यो निलायं चरंति यः प्रतङ्कम्।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः।।

अथर्व. ४।१६।२

(यः तिष्ठति चरति) जो खड़ा रहता है, जो चलता है, (च यः वञ्चति) जो दूसरे को ठगता है, (यः निलायं चरति, यः प्रतंकं) जो गुप्त व्यवहार करता है, छिपकर दूसरे को कष्ट पहुँचाता है अथवा जो खुले रूप से व्यवहार करता है, (द्वौ संनिषद्य यत् मंत्रयेते) जो दो लोग साथ बैठकर विचार करते हैं, (तत् तृतीयः राजा वरुणः वेद) उस सब को राजा वरुण तीसरे पुरुष के रूप में इस प्रकार जानता है कि मानो वह तीसरे व्यक्ति रूप में उन दोनों के साथ उपस्थित रहा हो।

सहस्रंधार एव ते समंस्वरन्दिवो नाके मधुंजिह्वा असश्चतः।
तस्य स्पशो न नि मिंषन्ति भूर्णयः पदेपंदे पाशिनः सन्ति सेतंवे।।

अथर्व. ५।६।३

(दिवः सहस्रधार एव नाके) द्युलोक के सहस्रों धाराओं से युक्त स्वर्ग अथवा सुखपूर्ण स्थान में ही रहने वाले (ते मधुजिह्वः असश्चतः) वे आसक्तिरहित निश्चल शांत स्वभाव वाले और मधुर भाषी लोग (समस्वरन्) सब मिलकर एक स्वर से कहते हैं कि (तस्य भूर्णयः स्पशः न नि मिषन्ति) उस वरुण देव के पकड़ने वाले क्षिप्रगामी गुप्तचर कभी पलक नहीं झपकाते, आँख बन्द नहीं करते और (सेतवे पदे पदे पाशिनः सन्ति) बाँधने के लिये पग पग पर पाश लिये हुये खड़े रहते हैं।

दुष्टों का नाश

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम्।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम्॥

ऋग्. ७।१०४।२४, अथर्व. ८।४।२४

(इन्द्र) हे इन्द्र! (यातुधानम्) माया से, छल कपट से पीड़ा पहुँचाने, यातना देने वाले आततायी, (पुमांसम्) पुरुष को अथवा (मायया शाशदानां स्त्रियं) कपट से व्यवहार करने वाली स्त्री को (जहि) मार दो, नष्ट कर दो। (मूरदेवाः विग्रीवासः ऋदन्तु) हिंसा की पूजा करने वाले तथा निर्दोष लोगों को मारने वाले दुष्ट लोग ग्रीवा रहित होकर नष्ट हो जायँ, (ते उच्चरन्तं सूर्यं मा दृशन्) वे उदय होते हुये सूर्य को न देख सकें।

यहाँ इन्द्र का अर्थ राजा भी है।

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥

मनु. ८।३५०

चाहे गुरु, बालक,वृद्ध, ब्राह्मण अथवा बहुत विद्वान्, शास्त्रों का ज्ञाता, कोई भी अधर्म के मार्ग पर चलने वाला आततायी हो, उसे बिना विचारे ही मार देना चाहिये। तात्पर्य यह है कि आततायी को मारना आवश्यक है, इसमें कोई दोष नहीं है।

मारने के लिये हाथ में शस्त्र लिया हुआ, अग्नि से जलाने वाला, विष देने वाला, धन सम्पत्ति को लूटने वाला, धान्य तथा खेत पर बलपूर्वक अधिकार करने वाला तथा अपहरण करने वाला, ये छः प्रकार के दुष्ट आततायी कहलाते हैं।

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति।।

मनु. ८।३५१

(आततायि वधे) आततायी दुष्ट पुरुष को मारने में (हन्तुः कश्चनः दोषः न भवति) हन्ता को पाप नहीं होता, (प्रकाशं वा अप्रकाशं वा) चाहे दिन में (सबके सामने) मारे चाहे रात्रि में, एकान्त में मारे (मन्युः तं मन्युं ऋच्छति) क्योंकि ऐसा करने में क्रोध को क्रोध ही मारता है।

ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने।
ये कक्षेष्वघायवस्ताँस्ते दधामि जम्भयोः।।

यजु. ११।७९

(ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासः) मनुष्यों में जो मलिन अथवा नीच आचरण वाले तथा चोर हैं, जो (वनेः तस्कराः) वन प्रदेश में तस्कर तथा लुटेरे हैं, (ये कक्षेषु अघायवः) जो बन्द स्थानों, कमरों आदि में पाप करने वाले तथा मनुष्यों का प्राण हरण करने वाले हैं, (तान् ते जम्भयोः दधामि) उनको आपके दाढ़ों के अन्दर आपके द्वारा खाये जाने के लिये रखता हूँ।

यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः।
निन्दाद्यो अस्मान्धिप्साच्च सर्वं तं मस्मसा कुरु।।

यजु. ११।८०

(यः जनः अस्मभ्यं अरातीयात्) जो मनुष्य हमसे शत्रुता करे (च यः नः द्वेषते) और जो हमसे द्वेष करे, (यः निन्दात्) जो हमारी निन्दा करे तथा (च अस्मान् धिप्सात्) जो दम्भ पूर्वक हमको डराये, धमकाये, (सर्वं तं (मस्मसा कुरु) उन सबको मसल दो कुचल दो।

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥

साम. उत्त. क्र.सं. १५६३, ऋग्. १।७९।६

(राजन् तिग्मजम्भ अग्ने) हे प्रकाशमान तथा तीक्ष्ण मुख वाले अग्ने! (सः) वह प्रसिद्ध आप (क्षपः) शत्रुओं का नाश कीजिये। (वस्तः उत उषसः) दिन, रात्रि तथा उषाकाल में (उत त्मना रक्षसः प्रति दह) आप अकेले ही राक्षसों को भस्म कर दीजिये।

तिग्मजम्भ तीक्ष्णमुख, क्षपः क्षपय, त्मना आत्मना।

सायण भाष्य

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि॥

यजु. १।७

(रक्षः प्रत्युष्टम्) राक्षस दग्ध कर दिये गये हैं, (अरातयः प्रत्युष्टाः) दान न देने वाले, अपने पास ही सब पदार्थों को इकट्ठे करने वाले, समाज के शत्रु दग्ध हो गये हैं। (रक्षः निष्टप्तम्) राक्षसों को निरन्तर दग्ध करता हूँ, (अरातयः निष्टप्ताः) अनुदार हृदय लोगों को निरन्तर दग्ध करता हूँ। (उरु अन्तरिक्षं अन्वेमि) ऐसे राक्षसों तथा दुष्ट स्वभाव के लोगों को दग्ध करके मैं विस्तृत अन्तरिक्ष के समान सुख एवं समृद्धि प्राप्त करता हूँ।

राक्षसों को बार बार नष्ट करना पड़ता है क्योंकि वे पुनः पुनः उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर को हानि पहुँचाने वाले रोग भी शत्रु हैं, राक्षस हैं, उन्हें भी नष्ट करना आवश्यक है। राक्षसों को नष्ट करके ही समाज सुखी एवं समृद्ध हो सकता है।

धूर॑सि॒ धूर्व॑ धूर्वन्तं॒ धूर्व॒ तं-
यो॒ऽस्मान्धूर्व॑ति॒ तं धू॑र्व॒ यं व॒यं धूर्वा॑मः।
दे॒वाना॑मसि॒ वन्हि॑तम॒ꣳ-
सस्नि॑तम॒ं पप्रि॑तम॒ं जुष्ट॑तमं दे॒व॒हूत॑मम्॥
यजु. १।८

हे अग्ने! (धूः असि) आप नष्ट करने वाले हो, (धूर्वन्तं धूर्व) जो सबको नष्ट करना चाहता है, उसे नष्ट कीजिये। (तं धूर्व यः अस्मान् धूर्वति) जो हमको नष्ट करना चाहता है, उसे आप नष्ट कर दीजीये (तं धूर्व यं वयं धूर्वामः) तथा आप उस समाज विरोधी दुष्ट को नष्ट कर दीजिये, जिसे हम नष्ट करना चाहते हैं। (त्वं देवानामसि वन्हितमं) तुम देवताओं के महान वहन कर्ता हो, यज्ञ में दी हुयी आहुतियों को देवताओं के लिये ले जाने वाले हो, (सस्नितम्) उत्तम रूप से शुद्ध करने वाले हो, (पप्रितमं) सुख देने वाले, पूर्णता देने वाले, (जुष्टतमं) सेवनीय, सदा सेवा करने योग्य (देवहूतमम् असि) और देवों को यज्ञ में बुलाकर लाने वाले हो।

संसार में जितने वाहन हैं, वह अग्नि अर्थात् ऊर्जा से ही चलते हैं, अग्नि ही शरीर को चलाती है। यदि शरीर में अग्नि न हो तो शरीर जीवित नहीं रह सकता।

श्री स्वामी दयानन्द जी तथा श्री सातवलेकर जी ने अग्नि को परमात्मा तथा आत्मा के रूप में मानते हुये मन्त्र का आध्यात्मिक अर्थ किया है।

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात्।

यजु. २।३०

(ये असुराः सन्तः रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाः) जो असुर अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाते हुये (परापुराः निपुरः भरन्ति) अपने दुष्ट स्वभाव के अनुसार समाज विरोधी कार्यों को पूर्ण करने के उद्देश्य से छद्म आचरण करते हैं (स्वधया चरन्ति) तथा मनमाने ढ़ंग से इधर उधर घूमते हैं, (तान्) उन दुष्ट लोगों को (अग्निः) परमात्मा (अस्मात् लोकात्) इस लोक से, इस देश से (प्रणुदाति) दूर करे।

यह मन्त्र आज के आतंकवादी तथा समाज विरोधी तत्वों के लिये कितना सटीक है। हमें ऐसे दुष्टों को नष्ट करने का सतत् प्रयास करना चाहिये।

यजुर्वेद 5 । 26 में कहा गया है

रक्षसां ग्रीवा अपिकृन्तामि।। राक्षसों की गर्दन काटता हूँ

रक्षसां भागोऽसि निरस्तꣳ रक्षोऽवदमहꣳ रक्षोऽभितिष्ठामीदमहꣳ रक्षोऽवबाधऽवदमहꣳ रक्षोऽधमं तमो नयामि। घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वेः स्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृतेऽ-ऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ॥१६॥

यजुर्वेद 6। 16

राक्षसों का भाग हो, राक्षस! तुम यहाँ से चले जाओ। मैं इस राक्षस को दूर हटाता हूँ, इसे प्रतिबन्धित करता हूँ, और इसे नीचे अन्धकार में ले जाता हूँ ।

दीर्घ जीवन

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म ऽआपृण।।

यजु. ३।१७

(अग्ने) हे अग्ने! (तनूपा असि) आप शरीर की रक्षा करने वाले हैं, (तन्वं में पाहि) मेरे शरीर की रक्षा कीजिये, (अग्ने आयुर्दा असि आयुः मे देहि) हे अग्ने! आप आयु देने वाले हैं, मुझे आयु दीजिये, (वर्चोदा अग्ने असि वर्चः में देहि) हे अग्ने! आप तेजस्विता देने वाले हैं, मुझे तेजस्विता दीजिये। (अग्ने यत् मे तन्वा ऊनं) हे अग्ने! मेरे शरीर में जो न्यूनता हो, अस्वस्थता आदि हो, (तत् मे आ पृण) मेरी उस कमी को पूर्ण कीजिये।

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्।।

यजु. ३।६२

(जमदग्नेः त्र्यायुषं) हमारे चक्षु की दृष्टि शक्ति की तिगुनी आयु हो, (कश्यपस्य त्र्यायुषं) हमारी प्राणशक्ति की तिगुनी आयु हो, (यत् देवेषु त्र्यायुषं) देवों में जो तिगुनी आयु होती है, (तत् नः अस्तु त्र्यायुषं) वह तिगुनी आयु हमें प्राप्त हो।

चक्षुर्वै जमदग्निः ऋषिः। यजु. १३।५६

कश्यपो वै कूर्मः, कूर्मो वै प्राणः। कश्यप=प्राण - शतपथ.८।१।२।३६

यहाँ चक्षु ज्ञानेन्द्रियों के प्रतीक हैं। देवों का अर्थ इन्द्रियाँ भी होता है। इस प्रकार सभी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों की तिगुनी आयु तथा उनके दिव्य शक्तियों से सम्पन्न होने की प्रार्थना की गयी है।

आ नं एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे। ज्योक् च सूर्यं दृशे॥

ऋग्. १०।५७।४ (पाठभेद), यजु. ३।५४

(नः मनः) हमारा मन (क्रत्वे) सत्कर्म करने के लिये, (दक्षाय) बल के संवर्धन के लिये तथा (जीवसे) दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिये (पुनः आ एतु) पुनः पुनः प्रवृत्त हो (ज्योक् च) तथा हम दीर्घ काल तक (सूर्यं दृशे) सूर्य के दर्शन करें।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः।।

ऋग्. १।८९।९, यजु. २५।२२

(यत्र पुत्रासः पितरः भवन्ति) जिस आयु में हमारे पुत्र अपने पुत्रों के पिता बन जाते हैं, उस अवस्था तक (गन्तोः) पहुँचते हुये (नः आयुः मध्या मा रीरिषत्) हमारी आयु बीच में ही समाप्त न हो जाय। हे देवो! बृद्धावस्था तक हमारी आयु 100 वर्ष की हो।

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ।।

यजु. १४।१७

हे प्रभो! (आयुः मे पाहि) मेरी आयु की रक्षा कीजिये, (प्राणं मे पाहि) मेरे प्राणों की रक्षा कीजिये, (अपानं मे पाहि) मेरे अपान की रक्षा कीजिये, (व्यानं मे पाहि) मेरे व्यान की रक्षा कीजिये, (चक्षुः मे पाहि) मेरे चक्षुओं की रक्षा कीजिये, (श्रोत्रं मे पाहि) मेरे कानों की रक्षा कीजिये, (वाचं मे पिन्व) मेरी वाणी को प्रसन्नता पूर्ण तथा मधुर कीजिये, (मनः मे जिन्व) मेरे मन को प्रसन्नता से परि पूर्ण कीजिये, (आत्मानं मे पाहि) मेरे आत्मा की रक्षा कीजिये तथा (ज्योतिः मे यच्छ) मुझे तेज प्रदान कीजिये।

दृते दृꣳह मा ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते
सन्दृशि जीव्यासम्॥

यजु. ३६।१९

(दृते) दुष्टों एवं दुःखों का नाश करने वाले हे प्रभो! (दृं ह मा) मुझे दृढ़ कीजिये, शक्तिशाली बनाइये ताकि मैं (ते संदृशि) आपके संदर्शन में अर्थात् ज्ञान चक्षुओं से आपके दर्शन करता हुआ, आपकी स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना करता हुआ, (ज्योक्) चिरकाल तक (जीव्यासम्) जीवित रह सकूँ। (ज्योक् ते संदृशि जीव्यासम्) आदर एवं विनम्र प्रार्थना हेतु यह पुनर्वचन है।

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम्॥

अथर्व. १।३१।४

(नः मात्रे उत पित्रे) हमारी माता तथा हमारे पिता के लिये (स्वस्ति अस्तु) कल्याणकारी तथा सुखकारी स्थिति हो, (गोभ्यः) गौवों के लिये तथा (जगते पुरुषेभ्यः) संसार के समस्त पुरुषों एवं प्राणियों के लिये

कल्याणकारी परिस्थिति हो, (विश्वं सुभूतं सुविदत्रं) समस्त विश्व हमारे लिये उत्तम परिस्थितियाँ उत्पन्न करने वाला, उत्तम धन प्रदान करने वाला तथा रक्षा करने वाला हो (ज्योग् एव सूर्यम् दृशेम) और हम चिरकाल तक सूर्य का दर्शन करें।

अहिंसा सत्यवचनमक्रोधः क्षान्तिरार्जवम् ।
गुरूणां नित्यशुश्रूषा वृद्धानामपि पूजनम् ।।
शौचादकार्यसंत्यागः सदा पथ्यस्य भोजनम् ।
एवमादिगुणं वृत्तं नराणां दीर्घजीविनाम् ।।

महाभारत, अध्याय, १४५

अहिंसा, सत्य भाषण, अक्रोध, क्षमा, सरलता, गुरु जनों की नित्य सेवा, वृद्धों का आदर सत्कार, पवित्रता का ध्यान रखकर न करने योग्य कर्मों का त्याग, सुपथ्य तथा स्वास्थ्यप्रद भोजन करना आदि गुणों वाला आचरण दीर्घजीवी पुरुषों का होता है।

उषा

त्वं त्येभिरा गंहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः। अस्मे रयिं नि धारय॥

ऋग्. १।३०।२२

(दिवः दुहितः) हे द्युलोक की पुत्री! (त्येभिः वाजेभिः त्वा आगहि) उन बलों तथा अन्न आदि के साथ तुम आओ और (अस्मे रयिं नि धारय) हमें धन प्रदान करो।

उषस्तच्चित्रमा भरा ऽस्मभ्यं वाजिनीवति।
येन तो कं च तनयं च धामहे॥

ऋग्. १।९२।१३

(वाजिनी वति उषः) ऐश्वर्य एवं समृद्धि से युक्त उषा देवि! (अस्मभ्यं तत् चित्रम् आभर) हमारे लिये वह उत्तम धन तथा वैभव भरपूर दीजिये, (येन तोकं तनयं च धामहे) जिससे हम पुत्र तथा पौत्र के भरण पोषण में समर्थ हो जायँ।

एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात्।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात्।।

ऋग्. ५।८०।५

(स्नाती उर्ध्वा इव) स्नान करके जल में से ऊपर उठकर (तन्वा विदाना) अपने शरीर के अंगों को दिखाती हुयी, (एषा शुभ्रा न) गौरवर्ण वाली स्त्री के समान (उषाः) उषा (नः दृशये अस्थात्) हम सब के देखने के लिये ऊपर आकाश में स्थित हुयी है। (द्वेषां तमांसि अपबाधमाना) अन्धकार तथा द्वेष करने वाले शत्रुओं आदि को हटाती हुयी (दिवः दुहिता) द्युलोक की यह पुत्री (ज्योतिषा आगात्) अपने प्रकाश के साथ आ गयी है।

व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाऽविष्कृण्वाना महिमानमागात्।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमङ्गिरस्तमा पथ्या अजीगः।।

ऋग्. ७।७५।१

(उषाः दिविजाः वि आयः) उषा आकाश में प्रकट होकर विशेष रूप से प्रकाशित हो रही है, (ऋतेन महिमानं आविष्कृण्वाना आ अगात्) यह तेज से अपनी महिमा को प्रकट करते हुये आ रही है। (द्रुहः अजुष्टं तमः अप आवः) यह उषा शत्रुओं को तथा अप्रिय अन्धकार को दूर करती है और (अङ्गिरस्तमा पथ्याः अजीगः) चलने के मार्गों को प्रकाशित करती है।

महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यन्धि।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम्।।

ऋग्. ७।७५।२

(अद्य नः महे सुविताय बोध) आज हम बड़ा सुख प्राप्त करने के लिये जागें, (उषः) हे उषा देवि! (महे सौभगाय प्र यन्धि) हमें बड़ा सौभाग्य प्रदान कीजिये, (चित्रं रयिं यशसं अस्मे धेहि) हमें नाना प्रकार का श्रेष्ठ धन तथा यश दीजिये। (मानुषि देवि) हे मनुष्यों का हित करने वाली देवि! (मर्तेषु श्रवस्युम्) मनुष्यों को अन्न तथा यशस्वी पुत्र दीजिये।

कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषिं देवि देवमियक्षमाणम्।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती।।

ऋग्. १।१२३।१०

(तन्वा शाशदानां कन्या इव) जिस प्रकार अपने शरीर को स्पष्ट रूप से दिखाती हुयी कन्या (इयक्षमाणं देवं एषि) इच्छित सुख देने वाले पति के पास जाती है तथा (युवतिः संस्मयमाना) जिस प्रकार मुस्कराती हुयी युवती अपने पति के (पुरस्तात्) समक्ष (वक्षांसि आविः कृणुषे) अपने सुन्दर वक्षस्थलों को प्रकट करती है, दिखाती है, उसी प्रकार (एषि देवि विभाती) यह उषा देवी अपने शरीर की सुन्दरता दिखाती हुयी शोभायमान होती है।

आत्मिक यज्ञ

यद्देवा देवान्हविषाऽयंजन्तामर्त्यान्मनसामर्त्येन।
मदेम तत्र परमे व्योमन्पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य।।

अथर्व. ७।५।३

(देवाः यत् अमर्त्यान् देवान्) जब विद्वान् लोग अमर देवों का आत्मसमर्पण द्वारा (हविषा अमर्त्येन मनसा अयजन्त) अपने हवि रूपी अमर मन से यजन करते हैं अर्थात् ध्यान करते हैं, (तत्र परमे व्योमन् मदेम) तब वह परम व्योम में आनन्द का अनुभव करते हैं और (सूर्यस्य उदितौ तत् पश्येम) सूर्य के उदय होने पर ध्यान पूर्वक परमेश्वर का दर्शन करते हैं।

इसी के आधार पर गीता में ज्ञान यज्ञ को श्रेष्ठ बताया गया है-

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।

गीता. ४।३३

हव्य पदार्थों से किये जाने वाले यज्ञ से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ होता है।

पुरुष रूपी हवि से जो यज्ञ किया जाता है, उसमें सामान्य यज्ञों के समान आहुतियाँ नहीं दी जाती हैं, उसमें तो समस्त प्रकृति ही यज्ञ रूप होती है; वसन्त ऋतु उसमें आज्य होती है, ग्रीष्म ऋतु समिधा होती है तथा शरद ऋतु हवि होती है।

यज्ञ का अर्थ है देवपूजा, संगति कारण तथा दान की पवित्र प्रक्रिया। 'यज् देव पूजा संगति करण दानेषु'। देव पूजा, संगति करण तथा दान अर्थ वाली 'यज्' धातु से यज्ञ शब्द सिद्ध होता है।

यत्पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत।
अस्ति नु तस्मादोजीयो यद्धिहव्येनेजिरे।।

अथर्व. ७।५।४

(यत् देवाः) देवों ने जो (पुरुषेण हविषा यज्ञं अतन्वत) पुरुष रूपी हवि से यज्ञ किया तथा (यत् वि हव्येन ईजिरे) जो यज्ञ विशेष आत्मा रूपी अथवा ध्यान रूपी हवि से सम्पन्न किया जाता है। (तस्मात् ओजीयः नु अस्ति) उससे अधिक श्रेष्ठ और क्या हो सकता है?

यह मानस तथा आत्मिक यज्ञ का वर्णन है। अपने मन का परमात्मा के प्रति समर्पण करने से मानस यज्ञ तथा आत्मा का समर्पण करने से आत्म यज्ञ होता है, यही पुरुष रूपी हवि है।

यही पुरुषमेध यज्ञ है, पुरुष शरीर के अंगों से आहुति देना पुरुषमेध यज्ञ नहीं होता जैसा कि कुछ मूर्ख तथा दुष्ट लोग प्रचारित करते हैं।

ब्राह्मणों का राष्ट्र के प्रति कर्तव्य

वाजस्य प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु। ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा।।

यजु. ९।२३

(वाजस्य प्रसवः अग्रे) पूर्वकाल में अन्न को उत्पन्न करने वालों ने (ओषधीषु अप्सु इमं सोमं राजानं सुषुवे) जल की सहायता से उत्पन्न होने वाली जौ, चावल आदि ओषधियों के साथ ओषधियों के राजा इस दीप्तमान् सोम को उत्पन्न किया है। (ताः अस्मभ्यम् मधुमतीः भवन्तु) वे ओषधियाँ तथा सोम हमारे लिये मधुरता से युक्त हों। (पुरोहिताः वयं राष्ट्रे जागृयाम) हम लोग पुरोहित के रूप में, राष्ट्र में अग्रसर होकर, आगे बढ़कर सदा जागृत रहें तथा समाज का मार्ग दर्शन करें, (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति समर्पित है।

सꣳ शितं मे ब्रह्म सꣳ शितं वीर्यं बलम्।
सꣳ शितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः।।

यजु. ११।८१

(यस्य अहं पुरोहितः अस्मि) मैं जिस यजमान का, यज्ञ करने वाले का पुरोहित हूँ, उसका और (मे) मेरा (संशितं ब्रह्म) वेद का ज्ञान प्रशंसा के योग्य हो, (संशितं वीर्यं बलम्) उसका पराक्रम तथा बल प्रशंसा के योग्य हो। (संशितं क्षत्रं जिष्णु) मेरे यजमान का क्षात्रबल प्रशंसनीय तथा सदा विजय प्राप्त करने वाला हो।

उदेषां बाहू अतिरमुद्वर्चो अथो बलम्।
क्षिणोमि ब्रह्मणाऽमित्रानुन्नयामि स्वाँ२ अहम्।।

यजु. ११।८२

मैं (एषां) इन शत्रुओं के, इन दुष्टों के (बाहू उत् अतितरं) बाहुबल से अधिक बलशाली बनूँ (अथो वर्चः बलं उद् अतिरं) तथा इनके तेज, पराक्रम और सामर्थ्य से अधिक तेजस्वी और शक्तिशाली बनूँ। (ब्रह्मणा अमित्रान् क्षिणोमि) मैं अपने ज्ञान के बल से अपनी मन्त्र शक्ति से शत्रुओं का नाश करता हूँ और (अहं स्वान् उत् नयामि) अपने लोगों को ऊपर उठाता हूँ, उनकी उन्नति करता हूँ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान्यज्ञेन बोधय।
आयुः प्राणं प्रजां पशून्कीर्तिं यजमानं च वर्धय।।

अथर्व. १९।६३।१

(ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्मणस्पते! हे वेद विद्वान्! (उत्तिष्ठ) उठो, जागृत हो, (यज्ञेन देवान् बोधय) यज्ञ के द्वारा देवों एवं विद्वानों को उनके कर्तव्यों का बोध कराओ तथा (यजमानं) यजमान की (आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं) आयु, प्राण, प्रजा अर्थात् सन्तान, पशु तथा कीर्ति में (वर्धय) वृद्धि करो।

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत् विषादपि।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा॥

मनु. २।१६२

ब्राह्मण सम्मान से विष के समान नित्य उदासीनता रखे तथा अपमान की अमृत के समान आकाङ्क्षा रखे क्योंकि जो अपमान से डरता है और सदा सम्मान की इच्छा करता है, वह निकृष्ट एवं पतित आचरण करने वाले की भी प्रशंसा करेगा और असत्य एवं अधर्म को भी उचित बताने का प्रयास करेगा।

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥

मनु. २।१६८

जो द्विज वेद का अध्ययन न करके अन्यत्र श्रम करता है, वह अपने जीवन काल में ही पुत्र पौत्रादि सहित शीघ्र ही शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है। तात्पर्य यह है कि द्विजों को अन्य विद्याओं के साथ साथ वेद अवश्य पढ़ना चाहिये।

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम् ।
तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते।।

मनु. १२।१०४

तप तथा विद्या ब्राह्मण के परम कल्याण के लिये, मोक्ष के लिये श्रेष्ठ साधन हैं, वह तप से पापों को नष्ट करता है और ज्ञान अर्थात् ब्रह्मज्ञान से मोक्ष को प्राप्त करता है।

ब्राह्मणे दारुणं नास्ति मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।।

महाभारत, अध्याय. २७।१२

ब्राह्मण में क्रूरता नहीं होती, ब्राह्मण को सब के प्रति मैत्रीभाव रखने वाला कहा जाता है।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।

गीता. १८।४२

अन्तःकरण की पवित्रता, मन एवं इन्द्रियों का निग्रह, उन्हें बुरे विचारों एवं कार्यों से रोकना, धर्मपालन के लिये कष्ट सहना, शरीर, भोजन एवं धन की पवित्रता, क्षमा करना, स्वभाव की सरलता, किसी प्रकार की चालाकी आदि का अभाव, सांसारिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान, ईश्वर के प्रति श्रद्धा, भक्ति, ये सब ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च।।

मनु. १०।६५

शूद्र अपने ज्ञान, गुण तथा कर्म के आधार पर ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है और इनके विपरीत होने पर ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त करता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य के विषय में भी जानना चाहिये।

पर्जन्य नाथा पशवो राजानो मन्त्रिबान्धवाः ।
पतयो बान्धवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेद बान्धवाः।।

विदुरनीति. २।३८

मेघ पशुओं के रक्षक होते हैं, राजा मन्त्रियों की सहायता के कार्य करते हैं, पति स्त्रियों के रक्षक एवं सहायक होते हैं तथा ब्राह्मण वेद की रक्षा करने वाले, वेद के भाई होते हैं।

यश

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशः सोमो अजायत।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः।।

अथर्व. ६।५८।३,६।३९।३

हे प्रभो! जिस प्रकार (यशाः इन्द्रः) सूर्य यशस्वी होकर उत्पन्न हुआ है, (यशाः अग्निः) अग्नि यशस्वी होकर उत्पन्न हुआ है, (यशाः सोमः अजायत) चन्द्रमा यशस्वी होकर उत्पन्न हुआ है, उसी प्रकार (यशा विश्वस्य भूतस्य) समस्त यशस्वी प्राणियों में (अहम् अस्मि यशस्तमः) मैं सबसे अधिक यशस्वी बनूँ।

यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती।
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम्।
यशसाऽस्याः सꣳसदोऽहं प्रवदिता स्याम्।।

साम. पूर्वा. ६।३।१०, क्र.सं. ६११

(यशः मा द्यावा पृथिवी) द्युलोक तथा पृथिवी लोक मुझे यश प्राप्त करायें, यशस्वी बनायें, (यशः मा इन्द्र बृहस्पती) इन्द्र तथा बृहस्पति मुझे यश प्रदान करें। (यशः भगस्य विन्दतु) भग देवता का यश मुझे प्राप्त हो। (यशः मा प्रति मुच्यताम्) मैं यश से कभी वञ्चित न होऊँ, (यशसा अस्याः संसदः अहम् प्रवदिता स्याम) इस संसद के यश से युक्त होकर मैं इस सभा में प्रवक्ता बनूँ।

शिर में ज्ञान तथा यश

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपम्।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः।।

अथर्व. १०।८।९

(तिर्यग्बिलः ऊर्ध्व बुध्नः चमसः) नीचे की ओर मुँह वाला और ऊपर की ओर पेंदी वाला एक पात्र है (यहाँ मनुष्य के शिर का वर्णन पात्र के रूप में किया गया है।) (यस्मिन् विश्वरूपं यशः निहितं) उसमें नाना रूप वाला यश तथा ज्ञान रखा हुआ है। (तत् सप्त ऋषयः साकं आसते) वहाँ सात ऋषि साथ साथ स्थित हैं। (ये अस्य महतः गोपाः बभूवुः) जो इस महिमामय शिर तथा शरीर के रक्षक हैं।

यहाँ सात ऋषियों से तात्पर्य पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ आँख, कान, नाक, जिह्वा तथा त्वचा और मन एवं बुद्धि अथवा दो आँख, दो कान, दो नासिका छिद्र तथा जिह्वा से है।

तिर्यग्बिलः- तिरछे इन्द्रिय छिद्रों वाला।

चमसः- पात्र अर्थात् शिर।

ऊर्ध्वबुध्नः ऊर्ध्व बोधनो वा। (निरुक्त. १२।४)

शरीर के ऊपर स्थित ज्ञान प्राप्त करने वाला।

यशः- ज्ञान, प्रकाश तथा कीर्ति। ज्ञान से ही यश प्राप्त होता है, इसीलिये सरस्वती को यश की बहिन **'सरस्वत्यै यशो भगिन्यै स्वाहा'** (यजु. २।२०) कहा गया है। यश की भगिनी सरस्वती के लिये यह आहुति है।

अतिथि

यदभि वदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्रणयति।।

अथर्व.९।६।४

(यत् अभिवदति दीक्षां उपैति) जो अतिथि का अभिवादन करता है, वह मानो यज्ञ दीक्षा प्राप्त करता है। (यत् उदकं याचति) अतिथि जो जल मांगता है और (अपः प्र णयति) गृहस्थ उसे जल लाकर देता है, वह मानो यज्ञ के निमित्त जल लाता है।

ता एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः।।

अथर्व.९।६।५

(याः एव यज्ञे आपः प्रणीयन्ते) यज्ञ के निमित्त जो जल लाये जाते हैं, (ताः एव ताः) वे मानो यही जल हैं, जो अतिथि के लिये लाये जाते हैं।

अतिथि यज्ञ के समान पूजनीय है, यज्ञ स्वरूप है, उसकी सेवा सुश्रूषा करना यज्ञ करने के समान है। वैदिक संस्कृति का कैसा उच्च आदर्श है यह।

इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति।।

अथर्व.९।६।३१

(यः अतिथेः पूर्वं अश्नाति) जो अतिथि के पूर्व स्वयं भोजन करता है, (एष) वह (ग्रहाणां इष्टं च वै पूर्तं च अश्नाति) अपने घर के इष्ट और पूर्त को ही खा जाता है।

इष्टम्-

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते।।

पूर्तम्-

वापी कूपतडागादि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते।।

पयश्च॒ वा ए॒ष रसं च॑ गृ॒हाणा॑मश्नाति॒ यः पूर्वोऽति॑थेर॒श्नाति॑।।

अथर्व.९।६।३२

(यः अतिथेः पूर्वः अश्नाति) जो अतिथि के पूर्व स्वयं भोजन करता है, (एष) वह (वै ग्रहाणां पयः च रसं च अश्नाति) निश्चय ही अपने घर के दूध और रस को ही खा जाता है अर्थात् उसे नष्ट कर देता है।

ऊ॒र्जा च॒ वा ए॒ष स्फा॒तिं च॑ गृ॒हाणा॑मश्नाति॒ यः पूर्वोऽति॑थेर॒श्नाति॑।।

अथर्व.९।६।३३

(यः अतिथेः पूर्वः अश्नाति) जो अतिथि के पूर्व स्वयं भोजन करता है, (एष) वह (ग्रहाणां उर्जां च स्फातिं च अश्नाति) अपने घर के अन्न, ऊर्जा और समृद्धि को ही खा जाता है।

कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति।।

अथर्व.९।६।३५

(यः अतिथेः पूर्वः अश्नाति) जो अतिथि के पूर्व स्वयं भोजन करता है, (एष) वह (ग्रहाणां कीर्तिं च यशः च अश्नाति) अपने घर की कीर्ति और यश को ही खा जाता है।

श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति।।

अथर्व.९।६।३६

(यः अतिथेः पूर्वः अश्नाति) जो अतिथि के पूर्व स्वयं भोजन करता है, (एष) वह (ग्रहाणां श्रियं च संविदं च अश्नाति) अपने घर के श्री अर्थात् शोभा, लक्ष्मी और ज्ञान को ही खा जाता है।

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात्।।

अथर्व.९।६।३७

(एष वै अतिथिः यत् श्रोत्रियः) निश्चय ही जो अतिथि है, वह श्रोत्रिय है, वेद का विद्वान् है। (तस्मात् पूर्वः न अश्नीयात्) उससे पहले न खाये।

अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय
यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम्।।

अथर्व.९।६।३८

(यज्ञस्य सात्मत्वाय) अतिथि यज्ञ की सात्मकता के लिये, उसकी पूर्णता के लिये तथा (यज्ञस्य अविच्छेदाय) यज्ञ के अविच्छेद के लिये, भंग न होने के लिये (अतिथौ अशितावति अश्नीयात्) अतिथि के खा चुकने पर ही खाये, (तद् व्रतम्) यह व्रत है।

अतिथि- अतिथि रम्यतितो भवति।

निरुक्त. ४।१।५।५

यह गृहस्थियों के घरों में अभिगत होता है।

अभ्येति तिथिषु- यह शुभ तिथियों पर, मंगल अवसरों पर दूसरे के घरों में जाता है।

सोम

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः।।

यजु. २६।२५, साम. क्र.सं. ४६८, ऋग्. ९।१।१

(इन्द्राय पातवे) इन्द्र के पीने के लिये (सुतः) निचोड़कर निकाले गये (सोम) हे सोम! (स्वादिष्ठया मदिष्ठया) तुम स्वादयुक्त, हर्ष बढ़ाने वाली (धारया) धारा से (पवस्व) पवित्र होकर प्रवाहित हो।

दविद्युतस्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा।
सोमाः शुक्रा गवाशिरः।।

साम. क्र.सं. ६५४ ऋग्. ९।६४।२८

(शुक्राः सोमाः) शुद्ध किये गये सोमरस (दविद्युतस्या रुचा) तेजस्वी कान्ति से युक्त (परिष्टोभन्त्या कृपा) शब्द करने वाली धारा से (गवाशिरः) गौ के दूध के साथ मिलाये जाते हैं।

मन्त्र से स्पष्ट है कि सोमरस को गो दुग्ध के साथ मिलाकर पिया जाता है। जो मूर्ख लोग सोमरस को शराब बताकर हमारी संस्कृति को अपमानित करते हैं, उन्हें इस प्रकार के मन्त्र ध्यान से पढ़ने चाहिये।

यज्ञ से स्वर्ग प्राप्ति

देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम्॥

अथर्व. १८।४।२

(देवाः ऋतवः यज्ञं कल्पयति) देव तथा विद्वान् वसन्त आदि ऋतुओं के अनुसार नाना प्रकार के यज्ञों का सम्पादन करते हैं तथा इनके लिये (हविः पुरोडाशं) हवि, पुरोडाश एवं (स्रुचः) स्रुवा आदि (यज्ञायुधानि) यज्ञ के विभिन्न साधनों तथा उपकरणों की व्यवस्था करते हैं। (यैः देवयानैः पथिभिः) उन यज्ञों के फल स्वरूप जिन देवयान् मार्गों से (ईजानः) यज्ञ करने वाले (स्वर्गं लोकं यन्ति) स्वर्ग लोक को जाते हैं, (तोभिः) उन्हीं मार्गों से (याहि) तुम भी यज्ञ करके स्वर्ग लोक को जाना ।

यज्ञ ये उन्नति तथा कामनाओं की पूर्ति

उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत।
समेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहु कृधि।।

यजु. १७।५० (पाठभेद), अथर्व. ६।५।१

(घृतेन आहुत अग्ने) घृताहुतियों से तृप्त हे अग्ने! (एनं उत्तरं उन्नय) इस यजमान की, यज्ञकर्ता की बहुत उन्नति कराइये तथा इसे उत्कृष्ट बनाइये। (एनं वर्चसा) इसे तेज से सम्पन्न कीजिये (च) तथा (प्रजया बहुं कृधि) पुत्र पौत्र आदि से समृद्ध कीजिये।

इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद् वशी।
रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय।।

यजु. १७।५१ (पाठभेद), अथर्व. ६।५।२

(इन्द्र) हे इन्द्र! (इमं) इस यजमान को (प्रतरं कृधि) अत्यन्त समृद्ध कीजिये, (सजातानाम् वशी असत्) जिससे यह अपने सजातियों में, बन्धु बान्धवों में सबको अपने वश में रखने वाला हो। (रायस्पोषेण सं सृज) इसे धन, ऐश्वर्य एवं सब प्रकार की पुष्टि से संयुक्त कीजिये (जीवातवे जरसे नय) तथा दीर्घ जीवन के लिये इसे वृद्धावस्था तक सुखपूर्वक ले जाइये।

यस्यं कृण्मो हविर्गृहे तमंग्ने वर्धया त्वम्।
तस्मै सोमो अधिं ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिंः।।

यजु. १७।५२ (पाठभेद), अथर्व. ६।५।३

(यस्य गृहे) जिसके घर में (हविः कृण्मः) हम हवि अर्पण करते हैं, यज्ञ करते हैं, (अग्ने) हे अग्ने! (तम् वर्धय त्वम्) उसे आप सब प्रकार से समृद्ध कीजिये। (सोमः च ब्रह्मणस्पतिः तस्मै अधि ब्रवत्) सोम तथा ज्ञान के अधिष्ठाता ब्रह्मणस्पति उसे आशीर्वाद दें।

भद्रो नो अग्निराहुंतो भद्रा रातिः सुंभग भद्रो अंध्वरः।
भद्रा उत प्रशंस्तयः।।

साम. क्र.सं. १५५९, ऋग्. ८।१९।१९, यजु. १५।३८

(सुभग) हे सुन्दर ऐश्वर्य सम्पन्न अग्ने! (आहुतः अग्निः नः भद्रः) जिसमें भली प्रकार आहुतियाँ दी जा चुकी हैं, ऐसी यज्ञाग्नि हमारे लिये कल्याणकारी हो, (भद्रा रातिः) हमारे द्वारा दिये गये दान हमारे लिये कल्याणकारी हों, (भद्रः अध्वरः) यज्ञ हमारे लिये कल्याणकारी हो (भद्राः उत प्रशस्तयः) तथा हमारे द्वारा की गयी स्तुतियाँ हमारे लिये कल्याणकारी हों।

अंहोमुचे प्रभरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः।
इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः।।

अथर्व. १९।४२।३

(सुमतिं आवृणानः) सुमति की इच्छा करता हुआ मैं (अंहोमुचे) पापों से मुक्त करने वाले, (सुत्राव्णे) परम रक्षक इन्द्र के प्रति (मनीषाम् आ प्र भरे) अपने मन की भावनायें, कामनायें एवं प्रर्थनायें प्रस्तुत करता हूँ, समर्पित करता हूँ। (इन्द्र) हे इन्द्र! हे परम ऐश्वर्य सम्पन्न परमेश्वर! (इदं हव्यं) मेरे द्वारा समर्पित इस हवि को, अथवा भक्ति पूर्वक की गयी इस प्रार्थना को (प्रति गृभाय) स्वीकार कीजिये। (सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः) हे प्रभो यज्ञ करने वाले यजमान की समस्त कामनायें सत्य हों, पूर्ण हों।

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां-
प्रजापतिर्निधिपा देवो अग्निः।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳ रराणा
यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा।।

अथर्व. ७।१८।४, यजु.८।१७

(धाता रातिः) दान देने वाले धाता, (सविता) सब को उत्पन्न करने वाले सविता, (प्रजापतिः निधिपाः) समस्त निधियों का पालन करने वाले प्रजापति, (देवः अग्निः) देदीप्यमान अग्नि, (त्वष्टा विष्णुः) निर्माण करने वाले त्वष्टा तथा सर्वव्यापक विष्णु (इदं जुषन्तां) हमारी इस हवि को

स्वीकार करें, इसका प्रीति पूर्वक सेवन करें तथा (प्रजया संरराणाः) प्रजा के साथ, अपनी सन्तान के साथ रमण करते हुये, भली प्रकार सुख से रहते हुये, (यजमानाय द्रविणं दधात) यजमान के लिये धन प्रदान करें, (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति इन सब देवों को समर्पित है।

यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा।।

अथर्व. १९।५२।५

(काम) हे काम! (यत् कामयमानाः) जिस फल की कामना करते हुये (ते इदं हविः कृण्मसि) हम आपके लिये यह हवि अर्पण करते हैं (तत् नः सर्वं समृध्यतां) हमारी वह कामना सब प्रकार से पूर्ण हो, (अथ एतस्य हविषः वीहि) आप इस हवि को स्वीकार कीजिये। (स्वाहा) मधुर वचनों के साथ यह आहुति काम को समर्पित है।

यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे।
ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः।।

अथर्व. ९।२।२५

हे काम! (याः ते शिवाः भद्राः तन्वः) जो तेरे कल्याणकारी तथा हितकारी शरीर हैं, (याभिः) जिनसे तुम (यत् सत्यं भवति) जो सत्य होता है, उसे (वृणीषे) स्वीकार करते हो। (ताभिः त्वं अस्मान् अभि सं विशस्व) अपने उन स्वरूपों से तुम हम सब में प्रविष्ट हो और (पापीः धियः अन्यत्र अपवेशय) पापी बुद्धियों को अन्यत्र प्रविष्ट कराओ, हमसे दूर कर दो।

भगवान् हमारी सत्य पर आधारित कल्याणकारी कामनायें ही पूर्ण करते हैं। इसके लिये यह आवश्यक है कि हम असत्य तथा अहित्कारी और पाप बुद्धि से युक्त कामनाओं का त्याग कर दें और अपनी बुद्धि को पवित्र करें। क्योंकि बुद्धि के नाश से तो मनुष्य का ही नाश हो जाता है।

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। शतपथ ब्राह्मण,१।७।१।५

यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है।

यज्ञ का शाब्दिक अर्थ है, देवपूजन, सङ्गतिकरण तथा दान।

देवपूजन- भगवान् की अनन्य भक्ति पूर्वक उपासना तथा विद्वानों का सम्मान और उनके द्वारा बताये हुये श्रेष्ठ मार्ग पर चलना।

सङ्गतिकरण- श्रेष्ठ लोगों की सङ्गति जिससे मनुष्य का जीवन पवित्र, सुखी एवं सम्पन्न होता है।

दान- पात्र व्यक्तियों को दान देना, उनकी सब प्रकार से सहायता करना। भूखे को भोजन देना, पीड़ित प्राणी को अभय देना तथा विद्यार्थियों को विद्या, विशेष रूप से ब्रह्म विद्या की शिक्षा देना सर्वश्रेष्ठ दान माना गया है।

यज्ञ के फल का अत्यन्त सुन्दर एवं आलंकारिक वर्णन करते हुये

मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि यज्ञ में दी गई आहुतियाँ सत्कार करती हुयी, प्रियवाणी बोलती हुयी तथा 'आइये आइये' ऐसा कहते हुये ब्रह्मलोक को ले जाती हैं।

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः,
सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति।
प्रियां वाचमभिवन्दन्त्योऽर्चयन्त्य,
एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः।

मुण्डक. १।२।६

(एहि एहि इति) आओ आओ कहती हुयीं (सुवर्चसः आहुतयः) देदीप्यमान आहुतियाँ (प्रियाम् वाचम् अभिवदन्त्यः) प्रियवाणी बोलती हुयीं तथा (अर्चयन्त्यः) आदर सत्कार करती हुयीं (तम् यजमानम्) उस यजमान को (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की किरणों के साथ (वहन्ति) ले जाती हैं (और कहती हैं कि) (एषः वः) यह तुम्हारा (पुण्यः) पवित्र (सुकृतः) श्रेष्ठ कर्मों का फलरूप (ब्रह्मलोकः) ब्रह्मलोक है।

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।

गीता. १८।५

यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्याग करने के योग्य नहीं है, यह तो आवश्यक कर्म हैं। यज्ञ, दान और तप विद्वानों को पवित्र करने वाले हैं।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।

गीता. ३।१०

प्रजापति ने सृष्टि की आदि में यज्ञ के सहित प्रजाओं को उत्पन्न करके कहा कि तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हो, यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित भोग प्रदान करने वाला, तुम्हारी कामनाओं की पूर्ति करने वाला हो।

देवान्भावयतानेन ते देवाः भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।।

गीता.३।११

तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा देवताओं की उन्नति करो और वे देवता तुम लोगों की उन्नति करें। इस प्रकार निःस्वार्थ भाव से परस्पर एक दूसरे की उन्नति करते हुये तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त हो।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ।।

गीता. ३।१४

समस्त प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ वेद विहित कर्मों से उत्पन्न होने वाला है।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवं।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥ गीता. ३।१५

कर्म को वेद से उत्पन्न हुआ और वेद को अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ जानो। इसीलिये सर्वव्यापी परमात्मा सदा यज्ञ में प्रतिष्ठित रहता है।

सुरा मत्स्याः पशोर्मांसं द्विजातीनां बलिस्तथा।
धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे नैतद्वेदेषु कथ्यते॥

महाभारत शान्ति पर्व, २६५।९

मद्य, मत्स्य, पशु का मांस तथा द्विजातियों द्वारा बलि दिया जाना, इन बातों को धूर्तों ने ही यज्ञ में प्रवृत्त किया है, सम्मिलित किया है, वेद में इसका विधान नहीं है।

घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः॥

यजु. १२।४४

हे अग्नि देव! यज्ञ में दी हुयी घृत की आहुतियों से आप अपन शरार की वृद्धि कीजिये। यज्ञ करने वाले यजमान की कामनायें सत्य हों, पूर्ण हों।

अग्नि देव की स्तुति एवं प्रार्थना

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म ऽआपृण।।

यजु. ३।१७

(अग्ने) हे अग्ने! (तनूपा असि) आप शरीर की रक्षा करने वाले हैं, (तन्वं में पाहि) मेरे शरीर की रक्षा कीजिये, (अग्ने आयुर्दा असि आयुः मे देहि) हे अग्ने! आप आयु देने वाले हैं, मुझे आयु दीजिये, (वर्चोदा अग्ने असि वर्चः में देहि) हे अग्ने! आप तेजस्विता देने वाले हैं, मुझे तेजस्विता दीजिये। (अग्ने यत् मे तन्वा ऊनं) हे अग्ने! मेरे शरीर में जो न्यूनता हो, अस्वस्थता आदि हो, (तत् मे आ पृण) मेरी उस कमी को पूर्ण कीजिये।

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे। शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमे ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव।।

ऋग्. १।९४।१३

(अग्ने) हे अग्ने! (देवः देवानाम्) देवों में श्रेष्ठ देव तथा दिव्य गुणों से युक्त एवं प्रकाशमान आप (अद्भुतः मित्रः असि) अद्भुत मित्र हैं तथा (अध्वरे) यज्ञ में (चारुः) शोभायमान होने वाले आप (वसूनाम् वसुः असि) अष्ट वसुओं में श्रेष्ठ वसु हैं, (तव सप्रथस्तमे) आपके द्वारा प्रदान किये गये सर्वत्र विस्तृत (शर्मन्) सुख में अथवा सुख देने वाले गृह में (वयम् स्याम)

हम रहें अर्थात् आपके द्वारा प्रदान किये गये सुख का हम उपभोग करें तथा (तव सख्ये) आपकी मित्रता में रहकर (वयं मा रिषाम) हम किसी प्रकार की हिंसा, दुःख अथवा कष्ट को प्राप्त न हों।

अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, चन्द्रमा तथा नक्षत्र ये आठ वसु हैं, जिनके आधार पर प्राणि मात्र वसते हैं, जीवित रहते हैं।

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः।
यस्य त्वꣳ सख्यमाविथ॥

ऋग्. ८।१९।३० (पाठभेद), साम. पूर्वा. १।२।२, क्र.सं. १०८
साम. उत्त. २०।६।१, क्र.सं. १८२२

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (यस्य त्वं सख्यं आविथ) जिसकी मित्रता आप स्वीकार कर लेते हैं अर्थात् आप जिसके मित्र हो जाते हैं, (सः तव सुवीराभिः ऊतिभिः वाजकर्मभिः) वह आपकी अत्यन्त वीरतापूर्ण रक्षाओं तथा आपके बलशाली कर्मों से (प्रतरति) सभी दुःखों, कष्टों एवं संकटों से पार हो जाता है।

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देवेभिर्मानुषे जने॥

साम. पूर्वा. क्र.सं.२ तथा ४७४, ऋग्. ६।१६।१

हे अग्ने! (त्वम् यज्ञानां होता) तुम यज्ञों को सम्पन्न करवाने वाले तथा (देवेभिः) सूर्य, वायु आदि देवों के साथ (मानुषे जने विश्वेषां हितः) मनुष्यों में सभी का हित करने वाले हो।

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः॥

यजुर्वेद,११।३२, ऋग्वेद, ६।१६।१३
सामवेद पूर्वार्चिक १।१।९ क्रम सं.९

<u>आध्यात्मिक अर्थ</u>

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (मूर्ध्नः विश्वस्य) समस्त संसार के मूर्धारूप, शिरस्थानीय अर्थात् सर्वश्रेष्ठ तथा (वाघतः) मेधावी अथवा (वाघतः वोढारः) समस्त विश्व को वहन करने वाले (त्वाम्) आपको (अथर्वा) निश्चल, स्थिरचित्त ज्ञानी (पुष्कराद् अधि) अपने हृदयाकाश में, हृदय कमल में (निरमन्थत) ज्ञान द्वारा निरन्तर मंथन करके, मनन, ध्यान एवं चिन्तन करके प्राप्त करता है, आपका साक्षात्कार करता है।

यहाँ निरमन्थत शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार अरणियों के मंथन से अग्नि प्राप्त की जाती है, उसी प्रकार ज्ञानपूर्वक निरन्तर चिन्तन एवं ध्यान से प्रकाशस्वरुप परब्रह्म का साक्षात्कार हृदयाकाश में किया जाता है।

थर्व शब्द चलनात्मक है अत: अथर्वा का अर्थ है ऐसा योगी जिसका मन, बुद्धि तथा चित्त चंचलता से रहित होकर केवल ब्रह्म में स्थिर होता है।

१. पुष्करं अन्तरिक्षं, पोषति भूतानि। उदकं पुष्करं, पूजाकरं पूजयितव्यं वा। इदमपीतरत् पुष्करमेतस्मादेव, पुष्करं वपुष्करं वा। पुष्पं पुष्पते:। निरुक्त ५।१३

(क) 'पुष धारणे' धातु से सिद्ध करने पर अर्थ होगा धारण करने वाला, अन्तरिक्ष यह लोकों को धारण करता है।

(ख) यह पुष्ट करता है अत: पुष्कर है। पुष्ट करने वाली "पुष पुष्टौ" धातु से पुष्कर शब्द सिद्ध होता है अत: इसका अर्थ है पुष्ट करने वाला। व्योम में ही सभी पदार्थ पुष्ट होते हैं, बढ़ते हैं। अत: पुष्कर का अर्थ हुआ आकाश।

(ग) उदक, यह पूजा का साधन है अथवा (पूजयितव्य) आदरणीय है।

(घ) कमल पुष्प, यह भी पूजा का साधन तथा आदरणीय होता है। पुष्करं पुण्डरीकं पद्मं अर्थात् कमल।

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे। अन्याँस्ते
अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव॥

यजु. १७।११, ३६।२०

हे अग्ने! (ते हरसे शोचिषे नमः) पापों का हरण करने वाली तथा रसों का शोषण करने वाली आपकी पवित्र दीप्तिमान् ज्वाला को नमस्कार है, (ते अर्चिषे नमः अस्तु) आपके स्तुति योग्य तेज के लिये नमस्कार है। (ते हेतयः) आपकी ज्वालायें (अस्मत् अन्यान् तपन्तु) हमसे भिन्न अन्य लोगों को अर्थात् हमारे शत्रुओं को तपायें, भस्म करें। (अस्मभ्यं पावकः शिवः भव) हे अग्ने! आप हमारे लिये पवित्र करने वाले एवं कल्याणकारी होइये।

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे,
हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं,
विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे॥

साम. उत्त. १५।४।२, क्र.सं. १५६८, ऋग्. ६।१५।८

(अमृतं युगे युगे हव्यवाहं) अविनाशी तथा युग युग में अर्थात् सदैव हव्य का वहन करने वाले, (पायुं ईड्यं) रक्षा करने वाले तथा स्तुति के योग्य (अग्ने) हे अग्ने! (देवासः च मर्तासः च) देवों तथा मनुष्यों ने (त्वां दूतं दधिरे) आपको देवों को बुलाने के लिये दूत के रूप में धारण किया है, स्वीकार किया है। (जागृविं विभुं विश्पतिं) सदैव जागृत रहने वाले, सर्वत्र व्याप्त तथा प्रजाओं का पालन करने वाले हे अग्ने! (नमसा नि षेदिरे) हम आपकी नमन के द्वारा, नमस्कार पूर्ण वचनों द्वारा विनम्रता पूर्वक उपासना करते हैं।

यज्ञ परक अर्थ में अग्नि का अर्थ यज्ञाग्नि होता है जब कि आध्यात्मिक अर्थ में अग्नि का अर्थ परमात्मा होता है।

यज्ञाग्नि में आहुत द्रव्यों को अग्नि ही समस्त देवों तक पहुँचाता है। इसी प्रकार शरीर में भोजन किये गये समस्त पदार्थों को जठराग्नि ही पचाने के उपरान्त रक्त एवं प्राण वायु के संचार द्वारा समस्त देवों अर्थात् इन्द्रियों को पहुँचाती है।

सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम्।
हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः।।

अथर्व. ४।२३।४

(सुजातं) सुन्दर एवं शोभायमान स्वरूप में प्रकट होने वाले, (जातवेदसम्) संसार में उत्पन्न समस्त पदार्थों में व्याप्त रहने के कारण उन्हें जानने वाले, (वैश्वानरं) विश्व के समस्त प्राणियों के हितकारी, उन्हें जीवन, प्रेरणा, ऊर्जा एवं गति देने वाले, (विभुम्) सर्वव्यापक (हव्यवाहम्) अन्न आदि समस्त हव्य पदार्थों का वहन करने वाले तथा यज्ञ में आहुत हवि को विभिन्न देवों के लिये ले जाने वाले (अग्निं) अग्नि का हम (हवामहे) आह्वान करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि (सः नः) वह हमें (अंहसः मुञ्चन्तु) पाप से मुक्त करायें अर्थात् हमें पाप से दूर रखें तथा हमारे पापों को नष्ट करें।

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।।

यजु. ३।२५,१५।४८,२५।४७, (पाठभेद) ऋग्. ५।२४।१

(अग्ने) हे अग्ने! हे प्रभो! (त्वं नः अन्तमः) आप हमारे समीप रहकर अथवा अन्तर्यामी रूप से हमारे अन्दर विद्यमान रहकर (वरूथ्यः त्राता उत शिवः भव) स्तुति योग्य, हमारे रक्षक तथा हमारा कल्याण करने वाले होइये और हमें श्रेष्ठ गुण, स्वभाव तथा कर्मों से युक्त कीजिये।

उन्नति के लिये आशीर्वाद तथा मार्ग दर्शन

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः।
सूर्यस्ते तन्वेऽशं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः॥

अथर्व.८।१।५

(मातरिश्वा वातः तुभ्यं पवतां) अंतरिक्ष में संचरण करने वाला वायु तेरे लिये पवित्र होकर प्रवाहित हो, (आपः तुभ्यं अमृतानि वर्षन्तां) जल तेरे लिये अमृत की वर्षा करें, (सूर्यः ते तन्वेशं तपति) सूर्य तेरे शरीर के लिये सुखदायक होकर तपे, मृत्यु तेरे ऊपर दया करे। (मा प्र मेष्ठाः) तू किसी प्रकार की हिंसा अथवा मृत्यु को प्राप्त न हो।

मेष्ठाः, मीङ् हिंसायाम् लुङ्।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि॥

अथर्व.८।१।६

(पुरुष) हे पुरुष! (ते उद्यानं) तेरी गति उन्नति की ओर हो, उन्नति की ओर अग्रसर होने वाली हो, (न अवयानं) अवनति की ओर नहीं। (ते जीवातुं) तुम्हारे दीर्घ जीवन के लिये तुझे (दक्षताम्) दक्ष तथा बलशाली बनाता हूँ, (इमं अमृतं सुखं रथम्) इस अमृतमय अर्थात् मोक्ष की ओर ले जाने वाले सुखकारक शरीर रूपी रथ पर चढ़ और (अथ जिर्विः) वृद्ध होने पर (विदथं आवदासि) ज्ञान का उपदेश कर।

कठोपनिषद् में कहा गया है-

आत्मानः रथिनं विद्धि शरीरः रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥

कठोपनिषद्. १।३।३

जीवात्मा को रथ का स्वामी और शरीर को रथ समझो तथा बुद्धि को सारथि और मन को ही लगाम समझो, जिससे इन्द्रिय रूपी अश्वों को नियन्त्रण में रखा जाता है।

मा गतानामा दीधीथा ये नयंन्ति परावतम्।
आ रोह तमंसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे॥

अथर्व. ८।१।८

(गतानां मा आदीधीथा) चले जाने वालों के लिये विलाप न करो, (ये परावतां नयन्ति) जो कर्तव्य पथ से दूर ले जाते हैं। (आ इहि) यहाँ

आओ, (तमसः ज्योतिः आरोह) अन्धकार से ऊपर उठकर ज्योति पर, प्रकाश पर आरोहण करो, प्रकाश की ओर अग्रसर हो, (ते हस्तौ रभामहे) हम तुम्हारे दोनों हाथों को पकड़कर तुम्हें सहारा देते हैं।

चले जाने वालों के लिये विलाप करने से मनुष्य अपने कर्तव्यों से विमुख हो जाता है, इसीलिये यहाँ यह शिक्षा दी गयी है।

ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम्॥

अथर्व. ५।३०।१०

बोध अर्थात् ज्ञान और प्रतिबोध अर्थात् जागृत रहना, ये दो ऋषि हैं, (अस्वपनः यः च जागृविः) एक निद्रा रहित है और दूसरा जागता है। (तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ) वे दोनों तुम्हारे प्राणों के रक्षक हैं, (दिवा नक्तं च जागृतां) वे तुम्हारे अन्दर दिन रात जागते रहें।

उन्नति के लिये जहाँ सब प्रकार का ज्ञान आवश्यक है, वहीं जीवन में प्रतिबोध अर्थात् आलस्य रहित होकर सावधान रहना, अपनी बुराइयों तथा संभावित आपत्तियों आदि से अपनी रक्षा करने के लिये सदा जागृत रहना, सतर्क रहना भी आवश्यक है।

बोधश्चं त्वा प्रतीबोधश्चं रक्षतामस्वप्नश्चं त्वानवद्राणश्चं रक्षताम्।
गोपायंश्चं त्वा जागृविश्च रक्षताम्।। अथर्व. ८।१।१३

(बोधः च प्रती बोधः च त्वा रक्षतां) ज्ञान और विज्ञान तथा जागरुकता तेरी रक्षा करें। (अस्वप्नः च अनवद्राणः च त्वा रक्षतां) न सोने वाला तथा आलस्यरहित होकर सदा सतर्क रहने वाला स्वभाव तेरी रक्षा करे। (गोपायन् च जागृविः च त्वा रक्षतां) आत्मरक्षा करना और सदा जागृत रहना तेरी रक्षा करे। कुछ विद्वानों के अनुसार प्रतिबोध का अर्थ है सत्य ज्ञान अथवा आध्यात्मिक ज्ञान।

मा त्वां क्रव्यादभि मंस्तारात् संकंसुकाच्चर। रक्षंतु त्वा द्यौ रक्षंतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षंतां चन्द्रमाश्च। अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः।।

अथर्व. ८।१।१२

(क्रव्याद् त्वा) कच्चा मांस खाने वाले जानवर तथा राक्षस तुम्हारी हिंसा न करें, (संकसुकात् आरात् चर) दुष्टों से अलग रहो, (द्यौः त्वा रक्षतु) द्युलोक तुम्हारी रक्षा करे, (पृथिवी रक्षतु) पृथिवी तुम्हारी रक्षा करे, (सूर्यः च चन्द्रमाः च त्वा रक्षताम्) सूर्य तथा चन्द्रमा तुम्हारी रक्षा करें। (अन्तरिक्षम् रक्षतु देवहेत्याः) दैवी आघात से अन्तरिक्ष तुम्हारी रक्षा करे।

इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न,
ऋते श्रान्तस्य सख्यायं देवाः।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि,
तृतीयें अस्मिन् त्सवंने दधात॥

ऋग्. ४।३३।११

(श्रान्तस्य ऋते देवाः सख्याय न भवन्ति) कठिन परिश्रम के बिना देवता किसी से मित्रता नहीं करते, किसी की सहायता नहीं करते। (ऋभवो) हे ऋभवः! (इदा अह्नः) दिन के इस भाग में (वः) आपको (पीतिं मदं धुः) श्रेष्ठ पेय पदार्थ तथा आनन्द प्रदान किया है। (अस्मिन् तृतीये सवने) इस तृतीय सवन में (अस्मे वसूनि नूनं दधात्) हमें धन अवश्य दीजिये।

जीवन में सफलता एवं धन की प्राप्ति के लिये बुद्धिमत्ता एवं दक्षता से, कठिन परिश्रम तथा देवों की सहायता अत्यन्त आवश्यक है।

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्। अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे द्यावा पृथिवीभ्यां गोपीथाय।। अथर्व. ५।९।७

(सूर्यः मे चक्षुः) सूर्य मेरा चक्षु है, (वातः प्राणो) वायु प्राण है, (आत्मा अन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष आत्मा है तथा (पृथिवी शरीरम्) पृथिवी मेरा शरीर है। (अस्तृतः नामः अयं अहं अस्मि) यह मैं अमर नाम वाला हूँ (आत्मा अजर अमर है) कोई भी शक्ति इसका नाश नहीं कर सकती। (सः आत्मानं) वह मैं अपने आत्मा को (द्यावा पृथिवीभ्यां गोपीथाय) द्युलोक तथा पृथिवी लोक अर्थात् तीनो लोकों द्वारा सुरक्षित होने के लिये निधि के रूप में देता हूँ, समर्पित करता हूँ। तीनों लोकों की शक्तियों से बने हुये इस शरीर को, इस जीवन को उसी के साथ संयुक्त करता हूँ।

अस्तृतः= अ+ स्तृणाति वधकर्मा। निघण्टु. २।१९

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

गीता. २।२३

इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल गीला कर सकता है और न वायु सुखा सकती है।

बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ।
सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम्।
सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा ॥

अथर्व. ५।१०।८

(बृहता मन उपह्वये) बृहद् मन का अपने समीप आह्वान करता हूँ। मेरा मन संकुचित न हो बल्कि सब का कल्याण करने वाला तथा उदार हो। (मातरिश्वना प्राणापानौ) वायु से प्राण तथा अपान, (सूर्यात् चक्षुः) सूर्य से चक्षु, (अन्तरिक्षात् श्रोत्रम्) अन्तरिक्ष से कान, (पृथिव्याः शरीरम्) पृथिवी से शरीर तथा (मनोयुजा सरस्वत्या वाचं) मनन युक्त विद्या और ज्ञान से सम्पन्न वाणी को (उपह्वयामहे) अपने समीप बुलाता हूँ, उसका आह्वान करता हूँ।

स्वस्थ शरीर एवं इन्द्रियों तथा विशाल एवं उदार मन के साथ और विद्या तथा ज्ञान से युक्त वाणी ही मनुष्य की उन्नति का आधार है।

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये।।

अथर्व. १९।६२।१

(देवेषु) देवों में, विद्वानों में, ब्राह्मणों में (मा) मुझे (प्रियं कृणु) प्रिय कीजिये, (राजसु) राजाओं तथा क्षत्रियों में (मा) मुझे (प्रियं कृणु) प्रिय कीजिये (उत) और (शूद्रे) शूद्रों में (उत आर्ये) तथा श्रेष्ठ आचरण वाले वैश्यों में मुझे प्रिय कीजिये। (पश्यतः सर्वस्य) सभी देखने वाले अर्थात् सभी प्राणियों में मुझे (प्रियम्) प्रिय कीजिये।

सब का प्रिय बनना, सब की भलायी करना सफलता का मूल मंत्र है।

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै।।

अथर्व. ६।४२।१

(धन्वनः इव ज्याम् अव) धनुष से प्रत्यञ्चा उतारने के समान (ते हृदः मन्युम् अव तनोमि) तेरे हृदय से क्रोध को हटाता हूँ। (यथा संमनसौ भूत्वा सखायौ इव सचावहै) जिससे हम एक मन वाले होकर मित्र के समान परस्पर मिलकर रहें।

स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।
महिमा ते ऽन्येन न सन्नशे।।

यजु. २३।१५

(वाजिन्) हे बलवान्! (तन्वं स्वयं कल्पयस्व) अपने शरीर को स्वयं समर्थ बनाओ, (स्वयं यजस्व) स्वयं यज्ञ करो, श्रेष्ठ कर्म करो, (स्वयं जुषस्व) स्वयं राष्ट्र तथा समाज की प्रेमपूर्वक सेवा करो। (ते महिमा न अन्येन सन्नशे) तुम्हारी महानता दूसरों पर निर्भर रहने से नष्ट न हो जाय।

मनुष्य को स्वयं उन्नति करने का प्रयास करना चाहिये, दूसरों पर निर्भर नहीं रहना चाहिये, श्रेष्ठ कल्याणकारी मार्ग पर अकेला चलने का साहस रखना चाहिये।

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने।
विक्रमार्जितराज्यस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता।।

सुभाषित

जंगल में शेर का न तो कोई संस्कार करता है और न राजतिलक। वह तो वन के राज्य का स्वामित्व तथा पशुओं के राजा होने का अधिकार स्वयं अपने पराक्रम से अर्जित करता है।

रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्ततुरगाः,
निरालम्बो मार्गश्चरणरहितः सारथिरपि।
रविर्गच्छत्यन्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः,
क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे।।

सुभाषित

सूर्य के रथ में केवल एक ही पहिया है, इसमें सर्प जैसी (कमज़ोर) रश्मियों से जुते हुये सात घोड़े हैं। आकाश में चलने वाले उनके रथ के मार्ग का कोई आधार भी नहीं है तथा सारथि केवल एक पैर वाला है, फिर भी सूर्य प्रतिदिन अपार आकाश को पार करता है। महान लोगों के कार्यों की सिद्धि उनके पराक्रम से होती है, साधनों से नहीं।

महायज्ञ

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतै: ।
महा यज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनु: ।।

मनुस्मृति, २।२८

स्वाध्याय, व्रत अर्थात् ब्रह्मचर्य आदि यम नियमों का पालन, अग्निहोत्र, वेदों का अध्ययन, दर्श पौर्णमास आदि यज्ञ, उत्तम सन्तान, महायज्ञ अर्थात् ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, बलि वैश्वदेव यज्ञ तथा नृयज्ञ अर्थात् अतिथि सत्कार आदि पुरुष के शरीर को ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्म को प्राप्त करने योग्य बनाते हैं।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञ: पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ।।

मनुस्मृति, ३।७०

वेद शास्त्रों का अध्ययन अध्यापन ब्रह्मयज्ञ है, माता पिता तथा अन्य वृद्ध जनों को भोजन तथा सेवा सुश्रूषा आदि से सन्तुष्ट रखना पितृ यज्ञ है, अग्निहोत्र तथा अग्नि में देवताओं के लिये आहुति देना देव यज्ञ है, बलि वैश्व देव अर्थात् निर्धनों, अपाहिजों, कुष्ठ आदि के रोगियों, गौवों, कुत्तों, पक्षियों एवं चीटियों आदि को भोजन देना भूतयज्ञ है तथा अतिथि सत्कार नृयज्ञ है।

दैवी संपदा

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।

गीता. १६।१

दैवी सम्पदा का वर्णन करते हुये भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! भय का सर्वथा अभाव, अन्तःकरण की पूर्ण निर्मलता, तत्व ज्ञान के लिये ध्यान, योग में निरन्तर दृढ़ स्थिति, सात्विक दान, मन का संयम तथा इन्द्रियों का दमन, यज्ञ, वेद शास्त्रों का पठन पाठन तथा जप।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।।

गीता. १६।२

मन, वाणी तथा शरीर से किसी को कष्ट न देना, प्राणिमात्र की हिंसा न करना, यथार्थ एवं प्रिय भाषण, अनावश्यक क्रोध न करना, त्याग, मन की शान्ति, प्राणियों के प्रति दया, परनिन्दा तथा झूठी चुगली न करना, सब प्रकार के लोभ एवं लालसा का त्याग, चित्त की कोमलता, लोक तथा शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा तथा व्यर्थ की चेष्टाओं एवं चपलता का अभाव।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ।।

गीता. १६।३

तेज, क्षमा, धैर्य, शरीर एवं मन तथा बुद्धि की पवित्रता, धर्म, समाज एवं देश के प्रति द्रोह न करना तथा अहंकार का अभाव, ये सब दैवी सम्पदा से सम्पन्न पुरुष के लक्षण हैं।

आसुरी संपदा

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्।।

गीता. १६।४

हे पार्थ ! दम्भ, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध, निष्ठुरता, क्रूरता एवं अज्ञान, ये सब आसुरी सम्पदा से युक्त पुरुष के लक्षण हैं।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।।

गीता. १६।१०

दम्भ, अहंकार और मद से युक्त हुये लोग कभी न पूर्ण होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर मोहवश मिथ्या सिद्धान्तों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों से युक्त होकर संसार में व्यवहार करते हैं।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्।।

गीता. १६।१२

सैकड़ों प्रकार की आशाओं के पाश से बँधे हुये, काम और क्रोध से ग्रस्त मनुष्य कामवासनाओं के भोग के लिये अन्याय पूर्ण ढंग से धन का सञ्चय करने की चेष्टा करते हैं।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।।

गीता. १६।१६

अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले, मोह रूप जाल में फंसे हुये तथा विषय भोगों में अत्यन्त आसक्त हुये, ऐसे लोग अत्यन्त अपवित्र नरक में गिरते हैं।

राष्ट्रीय जीवन

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।।

ऋग्वेद, १०।१९१।२

(सं गच्छध्वं) तुम सब संगठित होकर साथ साथ चलो, मिलकर रहो, (सं वदध्वं) परस्पर विरोध को त्यागकर प्रेमपूर्वक वार्तालाप करो, (सं वो मनांसि जानताम्) तुम लोगों का मन समान भाव से शांत होकर ज्ञान प्राप्त करे। (देवा भागं यथा पूर्वे) जिस प्रकार तुम्हारे विद्वान् पूर्वज अपने अपने भाग में आने वाली धन सम्पदा को परस्पर सहमति से ग्रहण किया करते थे, (संजानाना उपासते) उसी प्रकार तुम भी एकमत होकर अपना अपना अंश स्वीकार करते हुये ईश्वर की उपासना करो।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।

ऋग्. १०।१९१।३

(एषां मन्त्रः समानः समितिः समानी) इन सब राष्ट्र के निवासियों की प्रार्थना एवं विचार समान हों, इनकी सभा तथा आपस में मिलकर बैठने का स्थान एक समान हो। (मनः समानं एषा चित्तं सह) सबका मन एवं चित्त एक समान हो तथा साथ साथ मिलकर कर्म करने वाला हो। (वः समानं मन्त्रं अभि मन्त्रये) तुम्हें एक समान मन्त्र द्वारा अभिमंत्रित करता हूँ, ज्ञान देता हूँ, (वः समानेन हविषा जुहोमि) तुम्हें एक समान हवि द्वारा यज्ञ करने अर्थात् एक समान संस्कृति द्वारा जीवन रूपी यज्ञ का सम्पादन करने के लिये प्रेरित करता हूँ, सुसंस्कृत करता हूँ।

राष्ट्रीय प्रार्थना

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्युः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

यजु. २२।२२

हे (ब्रह्मन्) महान् शक्तिवाले परमेश्वर ! हमारे (राष्ट्रे ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मणः आ जायताम्) राष्ट्र में ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मण उत्पन्न हों, (शूरः इषव्यः अतिव्याधी महारथः राजन्यः आ जायताम्) शूर, बाण वेधन करने में कुशल, शत्रुओं को भली प्रकार परास्त करने वाले महारथी क्षत्रिय उत्पन्न हों, (अस्य यजमानस्य धेनुः दोग्ध्री) इस यजमान अर्थात् यज्ञ करने वाले पुरुष की गाय दूध देने वाली हो, (अनड्वान् वोढा) बैल वहनशील हों, (सप्तिः आशुः) घोड़ा शीघ्र गमन करने वाला हो, (योषा पुरन्धिः) स्त्री सर्वगुण सम्पन्न नगर का नेतृत्व करने वाली हो, (रथेष्ठाः) रथ में बैठकर युद्ध करने वाला (जिष्णुः वीरः) वीर विजेता हो, (युवा सभेयः आजायताम्) युवा होकार पराक्रम करने वाला तथा सभा के योग्य उत्तमवक्ता पुत्र उत्पन्न हो, (नः पर्जन्यः निकामे निकामे वर्षतु) हमारे राष्ट्र में समय समय पर आवश्यकतानुसार वृष्टि हो, (नः ओषधयः फलवत्यः पच्यन्ताम्) हमारी ओषधियाँ अर्थात् अन्न की फसलें फलवती होकर परिपक्वता को प्राप्त हों और (नः योगक्षेमः कल्पताम्) हमारा योगक्षेम उत्तम रीति से होता रहे।

अन्तिम सत्य

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद।।

ऋग्. १०।१२९।७

(इयं विसृष्टिर्यत् आबभूव) यह सृष्टि जिससे उत्पन्न हुयी (यदि वा दधे यदि वा न) और कौन इसे धारण करता है, कौन नहीं। (अंग) हे प्रिय! यो अस्य अध्यक्षः परमे व्योमन् स वेद) इसका जो अध्यक्ष अर्थात् परब्रह्म परम व्योम में स्थित है, वही इस तथ्य को जानता है, (यदि वा न वेद) उससे भिन्न अन्य कोई नहीं जानता।

—0—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव

यद्भद्रं तन्न आ सुव

यजुर्वेद ३०। ३

(सवितः देव) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले तथा उसका पालन पोषण करने वाले, उसे चेतना एवं प्रेरणा देने वाले सविता देव, हे परब्रह्म! (विश्वानि दुरितानि परा सुव) समस्त दुःखों तथा हमारे समस्त अवगुणों को हमसे दूर कर दीजिये। (यद् भद्रं तत् नः आसुव) और जा हमारे कल्याणकारी हो, उसे हमारे पास लाइये, हमें प्राप्त कराइये।

हमारा कल्याण किसमें है, यह भगवान् ही जानता है।

विधुशेखर त्रिवेदी I.A.S (अ.प्रा)

अध्यक्ष

पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ

सेक्टर 6B वृन्दावन

रायबरेली रोड, लखनऊ, 226029

मो. नं0 : 9453849042